[illegible]

'इस पुस्तक में होमर से लेकर प्रौस्ट तक ४९ साहित्यकारों की जीवन-गाथा, उनकी श्रेष्ठ रचना का कथा-भाग और उनकी रचनाओं का महत्त्व आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। केवल मूल तत्त्व का ही वर्णन है। एक कहानी-लेखक होने के कारण मैंने संक्षेप में सभी अंगों पर दृष्टिपात किया है। इन लेखकों का विस्तृत अध्ययन करने की रुचि उत्पन्न करना ही इस पुस्तक का लक्ष्य है।

'हिन्दी में अपने विषय की यह अकेली पुस्तक है। मैंने भाषा और विचार दोनों सरलतापूर्वक व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, जिसमें पाठक ऊब न उठें।'

ऊपर लिखी हुई पंक्तियों द्वारा लेखक ने पुस्तक का विषय 'अपनी बात' में स्पष्ट किया है।

पुस्तक को पढ़कर ही आप इसके महत्त्व का निर्णय कर सकेंगे।

योरोपीय साहित्यकार

लेखक

विनोदशङ्कर व्यास

प्रकाशक

चित्रकार

श्यामशङ्कर व्यास

प्रथम संस्करण

१९५२ ई०

मूल्य पाँच रुपये

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

अपनी बात

*

जब हम संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के साहित्य का अध्ययन कर अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी के आधुनिक साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तब हमारा मन उस मयूर की भाँति शिथिल हो जाता है जो जंगल में नाचते हुए अपने पैरों की ओर देखता है। इस पर भी जब कहीं सुनाई पड़ता है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य में है ही क्या, तब अपमान और लज्जा से हमारा मस्तक नत हो जाता है।

हिन्दी में कुछ नहीं है, इसका कारण क्या है? इस सम्बन्ध में विचार करने पर नीचे लिखी बातें सम्मुख आती हैं—हिन्दी के लेखकों की दलबन्दी, आपस की फूट, पक्षपात और व्यक्तिगत स्वार्थ। पुस्तक-प्रकाशकों की रुचि और लेखकों को कुछ न देने की उनकी मनोवृत्ति। सरकारी संरक्षण और सुविधाएँ न प्राप्त होना।

लेखक वर्षों के घोर परिश्रम और अध्ययन के पश्चात् जब कोई महत्त्वपूर्ण रचना प्रस्तुत करता है तब प्रकाशक यह कहकर टाल देता है कि 'ऐसी पुस्तक के पढ़नेवाले कुछ इने-गिने लोग ही होंगे, इसका बिकना कठिन होगा।' फिर ठोस और उच्च साहित्य का निर्माण कैसे हो?

उधर दलबन्दी के कारण एक दल दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। सर्वत्र व्यक्तिगत स्वार्थ ही चल रहा है। राष्ट्र और भाषा दोनों के प्रति पक्षपात एवं स्वार्थरहित मनोवृत्ति का दर्शन दुर्लभ हो गया है। ऐसी स्थिति में जो युगों से साहित्य की सेवा करते चले आ रहे हैं, उनके लिए मार्ग अवरुद्ध है। फिर नवीन लेखकों की कठिनाई का प्रश्न ही क्या?

साहित्य की सेवा एक पवित्र साधना और कठोर तपस्या है। साहित्यकार विकट परिस्थितियों में भी कभी अपने कर्तव्य और लक्ष्य से विचलित नहीं होता। सभी देशों और कालों में साहित्यकारों ने ही मानव को मानवता और दिव्य जीवन का पाठ पढ़ाया है। अतएव ऐसे महारथियों की जीवन-गाथा सदैव उपयोगी ही प्रमाणित होगी।

हिन्दी में जीवनी-साहित्य का विशेष अभाव है। इस सम्बन्ध में पूज्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने एक आकर्षक शैली का निर्देशन किया था। स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा इस कला के आचार्य थे। अब जीवित लेखकों में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और भाई शिवपूजनसहाय अग्रगण्य हैं।

योरोपीय साहित्यकारों में होमर से लेकर प्रौस्ट तक ४९ प्रमुख साहित्यकारों की जीवन-गाथा, उनकी श्रेष्ठ रचनाओं के कथाभाग और उनकी रचनाओं के महत्त्व आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। केवल मूल तत्त्व का ही वर्णन है। एक कहानी-लेखक होने के कारण मैंने संक्षेप में सभी अंगों पर दृष्टिपात किया है। इन लेखकों की कृतियों का विस्तृत अध्ययन करने की रुचि उत्पन्न करना ही इस पुस्तक का लक्ष्य है।

हिन्दी में यह अपने विषय की अकेली पुस्तक है। मैंने भाषा और विचार दोनों ही सरलतापूर्वक व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, जिसमें पाठक

ऊब न उठें। आरम्भिक अंग यूनानी काल तक कुछ गहन है, इसके बाद के सभी लेखों को कहानी की भाँति आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है। पाठकों को जिस स्थान से रुचिकर प्रतीत हो वहीं से वे पुस्तक पढ़ना आरम्भ कर सकते हैं। इस पुस्तक के सभी लेख मौलिक और स्वतन्त्र रूप से लिखे गये हैं। संसार की किसी भी भाषा में यह पुस्तक अनूदित हो सकती है। अभी तक मैंने जो कुछ विश्व-साहित्य का अध्ययन किया है, उसमें मुझे इस तरह की पुस्तक—जिसमें सब अंग सम्मिलित हों—अप्राप्य ही रही है। इस पुस्तक के केवल दो लेख पत्र में प्रकाशित हुए थे, शेष ४७ लेख अप्रकाशित हैं। पुस्तक का आकर्षण शिथिल न हो, इसलिए ये लेख मासिक पत्रों में प्रकाशित न होकर प्रथम बार इस पुस्तक में ही प्रकाशित हो रहे हैं।

३२ वर्ष निरन्तर हिन्दी-साहित्य की सेवा करने के कारण मेरे सहृदय पाठक इसी भाँति की पुष्ट रचनाओं की मुझसे आशा करते हैं, अतएव मैंने भी अपनी शक्ति और अपने अल्प ज्ञानानुसार इसे पूर्ण किया है। मुझे अपने परिश्रम पर सन्तोष है। 'योरोपीय साहित्यकार' को प्रस्तुत करने में लगभग ७-८ सौ अंग्रेजी पुस्तकों का मुझे अध्ययन करना पड़ा है।

मैंने अपनी पुस्तक में विचार-स्वातन्त्र्य पर पूर्ण ध्यान रखा है। किसी भी लेखक के साथ मैंने पक्षपात अथवा विरोध की भावना नहीं व्यक्त की है। मेरे लिए नित्जे, टाल्सटाय, कार्ल मार्क्स, गोर्की, प्रौस्ट और डौस्टोएईव्स्की सभी समान महत्त्व रखते हैं। रूसी लेखकों के सम्बन्ध में मैंने विशेष रूप से अध्ययन किया है, क्योंकि अंग्रेजी साहित्य में सोवियत रूस के प्रति उदार नीति नहीं है।

मेरे मँझले पुत्र चि० श्यामशंकर व्यास ने इस पुस्तक के सभी शीर्षक, लेखकों के चित्र और कवर आदि प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य लेखकों की

फोटो देखकर सभी चित्र तूलिका से अंकित किये गये हैं। ये सभी चित्र मौलिक हैं और प्रथम बार इस पुस्तक में प्रकाशित हो रहे हैं। लेखकों की फोटो प्राप्त करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी सम्पूर्ण लेखकों के चित्र नहीं प्राप्त हो सके। पुश्किन का चित्र तो एक स्टाम्प टिकट से सहयोग लेकर बना है। अगले संस्करण में अन्य लेखकों के चित्रों को देने का प्रयत्न किया जायगा। मेरे छोटे पुत्र चि० हेमशंकर व्यास ने पांडुलिपि को टाइप कर मेरे कार्य को बहुत हलका कर दिया।

मेरे शेष जीवन का एकमात्र ध्येय हिन्दी-साहित्य की सेवा ही है। दलबन्दी, सभा, सोसाइटी और संस्थाओं से सदैव अलग रहकर मैं अपनी लगन में तत्पर हूँ। मेरी अगली पुस्तक 'योरोपीय साहित्य' शीघ्र ही प्रकाशित होगी, जिसमें योरोपीय साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास है।

विनोदशंकर व्यास

सूचना

'योरोपीय साहित्यकार' पुस्तक का सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित है। अतएव इस पुस्तक के किसी भी लेख अथवा चित्र का, लेखक की स्वीकृति लिये विना, उपयोग करना उचित न होगा। अन्य भाषाओं में अनवाद के लिए भी अनुमति लेना आवश्यक है।

तालिका

होमर

(लगभग ८८४ ईसा पूर्व)

होमर के जीवन तथा रचनाओं के सम्बन्ध में अनेक तर्क और विवाद-ग्रस्त प्रश्न उठते हैं। कोई कहता है कि अनेक कवियों के समूह का नाम ही होमर से सम्बोधित हुआ है, किन्तु अधिकांश लोगों का मत है कि होमर नाम का एक ही कवि था।

आज तक होमर के जन्म और रचना-काल के सम्बन्ध में भी मतभेद है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक उसके सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है।

हम उन जिज्ञासुओं की पंक्ति में हैं जो यूनान के इतिहासकार हेरोडेटस के मत का समर्थन करते हैं।

हेरोडेटस यूनान का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है। साधारण पाठक उसकी रचना पढ़कर आश्चर्य और भ्रम में पड़ सकता है; किन्तु अध्ययनशील व्यक्ति जब सावधानी से उसका अर्थ निकालेगा तो उसे अत्यन्त विश्वसनीय समझेगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि वह ऐतिहासिक घटनाक्रम और रचना-निरूपण के सम्बन्ध में तीन प्रकार से अपना विचार उपस्थित करता है—(१) जिसको उसने विशेष छानबीन द्वारा सत्य समझा है, (२) जिसके सम्बन्ध में लोगों का ऐसा मत है, (३) जिसको दूसरों से सुनकर उसने वैसा ही लिख दिया है और उस सम्बन्ध में उसका अपना व्यक्तिगत कोई मत नहीं है।

हेरोडेटस एक विश्वसनीय रिपोर्टर था। उसका यह लिखना—वे ऐसा कहते हैं अथवा मैंने सुना है, इन शब्दों में और मेरी सम्मति में बड़ा

अन्तर है और इन दोनों के अतिरिक्त घोर अन्तर है जब वह लिखता है—मैं जानता हूँ, यह सत्य है।

होमर के सम्बन्ध में वह लिखता है—पिछले समय में ईश्वर का आकार, रूप और नाम आदि अज्ञात थे। मेरे मत मे होमर मेरे काल से चार सौ वर्ष पूर्व था। इससे अधिक नहीं। उसने यूनानी देवताओं का नामकरण किया और उनका आकार और सम्मान उपस्थित किया। कुछ कवियों का कहना है कि यह सब होमर के पहले था; किन्तु मेरी सम्मति में यह उसके बाद ही हुआ।

हेरोडेटस का जन्म ई० पू० ४८४ में हुआ था। इस तरह वह होमर को ८८४ ई० पूर्व मानता था।

होमर अन्धा था। वह गायक और कवि के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाता था। प्राचीन यूनान में एजियन समुद्र के किनारे सभ्य नगरों में होमर का विशेष सम्मान होता था और बड़े आदर से लोग उसकी कविता का आनन्द लेते थे। उस समय तक पायिरस (एक प्रकार का कागज) की उत्पत्ति हो चुकी थी। उसपर लिखित उसकी कविताओं की प्रतियाँ भी प्राप्त हो जाती थीं। धनी और बड़े लोगों के यहाँ वे बड़े आदर से पढ़ी जाती थीं।

यह होमर के साथ चलनेवाले उस दल के लिए, जो उसकी कविताओं की प्रति प्रस्तुत करता था, एक विशेष आय का साधन था।

वह अन्धा महाकवि गायक चलती-फिरती नाट्य-मंडली की भाँति अपने दल के साथ एक नगर से दूसरे नगर में भ्रमण करता था। इसी लिए होमर के बाद एजियन के किनारे के सात नगरों ने अपने अपने नगर को होमर का जन्मस्थान घोषित किया। किस स्थान पर उसका जन्म हुआ यह निश्चित न हो सका और 'सात नगर' ही उसके जन्मस्थान कहे जाते हैं।

होमर ने 'इलियड' और 'ओडेसी' नाम के दो महाकाव्य लिखे थे। इनमें से किसी के एक सर्ग को जनता के सम्मुख पढ़कर वह सुनाता था। होमर के बाद उसके कितने ही अनुगामी उसकी शैली का अनुकरण और उसके काव्य की समस्त कथा कंठस्थ करते गये और यही उन लोगों की जीविका का एकमात्र सहारा था। यह एक सम्प्रदाय के रूप में चलता रहा, ठीक उसी भाँति जैसे भारतीय संगीत की परम्परा अनुगामियों और शिष्यों द्वारा सुरक्षित रही।

मध्य युग के अन्तिम काल में केवल पवित्र भाव के ध्यान से अथवा कौतूहल के कारण कुछ पुजारियों ने यूनानी भाषा के प्राचीन ग्रन्थों की नकल करके उसे छिपाकर सुरक्षित रखा था। वे आपत्ति-काल में सम्भवतः अपने लाभ की लालसा में उनकी प्रतिलिपि करते रहे, जिन्हें वे स्वयं भी न समझ पाते थे, क्योंकि उस समय तक यूनानी भाषा सर्वसाधारण से लुप्त हो गई थी और लैटिन भाषा ही रोम के चर्च की भाषा होने के कारण प्रचलित थी।

यूनानी भाषा के साथ होमर भी अस्त हो गये थे। विश्व-साहित्य-संसार में होमर के फिर से उदय होने की एक मनोरंजक घटना है।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में लिओनटियूस पिलाट्स नाम का एक अत्यन्त आवारा शराबी और धूर्त आदमी था। वह अपनी चालाकी से पैसा पैदा करता और पुलिस को सदैव भ्रम में डालता रहा। इस मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह यूनानी और रोमन भाषा का पूर्ण ज्ञाता था। उसने एथेन्स नगर में विशेष शिक्षा प्राप्त की थी। संयोग से एक दिन विख्यात कहानी-लेखक बोकेचियो से उसकी भेंट हो गई।

बोकेचियो के आग्रह पर पिलाट्स वेनिस से फ्लोरेन्स नगर आया। उसने बोकेचियो को बतलाया कि वह तुरन्त होमर का लैटिन में अनुवाद कर सकता है। इस पर बोकेचियो अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसके कार्य में सहयोग देने लगा। बोकेचियो के पास थोड़ी पूँजी थी और अपना एक मकान था। उस समय तक वह इटालियन भाषा में अमर कहानियाँ लिख चुका था। इटालियन ही सर्वसाधारण की भाषा थी।

बोकेचियो पेटरार्क का बड़ा सम्मान करता था। पेटरार्क लैटिन भाषा का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसकी धारणा थी कि यूनानी भाषा का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि संसार में जो अशान्ति और संकट घिरा हुआ है उसकी कुंजी यूनानी भाषा में ही है। वह बोकेचियो को इटालियन भाषा में लिखने के कारण लज्जित भी करता था। इसी पेटरार्क के लिए,—जो लैटिन में होमर को पढ़ना चाहता था—बोकेचियो ने पिलाट्स से उसका अनुवाद तीन वर्षों में पूर्ण कराया।

उस समय समस्त फ्लोरेन्स नगर में केवल पाँच मनुष्य ही होमर को जानते थे, जिनमें एक बोकेचियो भी था।

होमर को संसार के सम्मुख उपस्थित करने का एकमात्र श्रेय बोकेचियो ही को है। ग्रीक के लैटिन अनुवाद का पहला संस्करण १४८८ ई० में

हुआ। १५०४ ई० और १५१७ ई० में जो संस्करण प्रकाशित हुए उस समय तक होमर प्रसिद्ध हो चुका था और उस पर विद्वानों ने अन्वेषण आरम्भ कर दिया था।

साहित्य का इतिहास मानव के काल्पनिक विचार का इतिहास है। फिर भी इसके अध्ययन में कुछ वाह्य तथ्यों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। इलियड और ओडेसी में प्राचीन गाथाओं का संग्रह है। इनमें पूर्व की अपेक्षाकृत ऊँची और सौन्दर्य्यानुप्राणित सभ्यता और पश्चिम की अशक्त पर अपेक्षाकृत कट्टर और सुसज्जित सभ्यता के बीच के संघर्ष की झलक मिलती है।

यूनान और ट्राय वालों के संघर्ष का वास्तविक कारण क्या है? सम्भवतः यह कहना कठिन होगा। क्या सचमुच रूढ़िवादी यूनानियों को यह असह्य था कि पूर्व का कोई अति सुन्दर राजकुमार किसी यूनानी सुन्दरी को उठा ले जाय? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन होगा। पर इतना स्मरण रखना चाहिए कि इलियड मात्र से यूनान और ट्राय की गाथाएँ समाप्त नहीं हो जातीं। यूनानी, हेल्लेनी, सिकन्दरी, एशियाई और लैटिनी व्याख्या और मीमांसा उपलब्ध हों तो एक बहुत विशाल साहित्य तैयार हो जाय।

यदि इलियड और ओडेसी को भूमध्यसागर की सम्पूर्ण यूनानी और रोमन सभ्यता का बाइबिल समझ लिया जाय तो पूरा विषय बिलकुल स्पष्ट हो जाय। इस प्रकार होमर की रचनाओं को लघुतर और बृहत्तर यूनान, यहाँ तक कि यूनान और रोम से प्रभावित संसार की दूसरी सभ्यताओं का, धार्मिक ग्रंथ समझना चाहिए। होमर की रचनाओं में एक साथ धर्म, नैतिकता, स्वास्थ्य, घरेलू धंधे, वेदान्त और वीरता का उल्लेख है। इनमें आदिम और अविशृंखलित भूमध्यसागरीय मानव-जगत् के लिए आवश्यक और वांछनीय सभी विषयों का समावेश है।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि होमर की रचनाओं ने राजधानी और अधीन देशों के जीवन को समान रूप से प्रभावित किया। हाँ, इनमें अवश्य ही दूसरी काल्पनिक गाथाएँ और व्याख्याएँ जोड़ दी गईं जिनका जन-जीवन से सम्बन्ध नहीं था।

एशियाई वक्ताओं और व्याख्याताओं का उल्लेख करते हुए हेरोडेटस कहता है कि हेलन की कहानी नितान्त असंगत है। क्या यह सम्भव था कि यूनानी संघ एक स्त्री के लिए युद्ध छेड़ देता जब कि उसी काल में

प्रतिदिन आठ सौ कुमारियाँ बाजार में सस्ते दाम पर बिकती थीं? इस प्रकार वह युद्ध बिलकुल निराधार बातों के लिए लड़ा गया।

होमर की रचनाओं ने जो सबसे बड़ा काम किया वह यह है कि उसने पूर्व के भूमध्यसागरीय धर्म की एक केन्द्रीय आधारशिला स्थापित की। यूनानी पुराणों को कोई अलग वस्तु नहीं समझना चाहिए।

होमर अपने भावों को पौराणिक अतीत काल से नहीं लाया, उसने जीवन के अपने अनुभव के आधार पर उनकी रचना की। होमर अपने देवताओं की पूजा करता है, पर वह यह नहीं चाहता कि उसके वे देव-पात्र एक दूसरे को गम्भीर दृष्टि से देखें, जैसा कि वह स्वयं इनमें से प्रत्येक को देखता है।

यूनानियों का मत है कि आपोलो अपने कवियों को पागल बना देता था, जिससे वे उससे सलाह लें और इस प्रकार उसका विचार मानवता की परीक्षा के लिए प्रकाशित हो सके। पर प्रत्येक कवि की अपनी प्रवृत्ति, अपनी कल्पना होती थी, इसलिए वे देवताओं द्वारा आरोपित पागलपन से उतना प्रभावित नहीं हो पाते थे।

इसी से ये देवता कभी-कभी इन लोगों को अपने उपदेशों से वंचित कर देते थे। उदाहरणतः हिब्रू ईश्वर ने अपने अधीनस्थ साउल को अपने उपदेशों से वंचित कर दिया। इसी तरह आपोलो ने भी अपने कवियों को अपने उपदेशों से वंचित कर दिया था।

महाकवि होमर ने अपने दोनों महाकाव्यों इलियड और ओडेसी में पहिले किसे लिखा इस सम्बन्ध में भी मतभेद है, लेकिन दोनों रचनाओं को पढ़ने के पश्चात् अनुमान होता है कि इलियड को ही उसने पहले लिखा होगा; क्योंकि इलियड के अनेक पात्रों का विकास ओडेसी में हुआ है।

इलियड की कथावस्तु बहुत सरल है। यूनान का सम्राट् आगामेनन, जिसे होमर एचिया कहता है, अपने भाई, स्पार्टा के मेनेलाउस के साथ अपने अधीन सभी राजकुमारों को ट्राय के राजा प्रियाम के विरुद्ध लड़ने के लिए भड़काता है, क्योंकि प्रियाम का एक बेटा, पेरिस, मेनेलाउस की स्त्री—आरगोस की सुन्दरी हेलन—को लेकर भाग जाता है। एचिया की सेनाएँ नौ वर्षों तक अपने जहाजों के आसपास ट्राय के समुद्री तटपर तम्बू गाड़े रहती हैं, लेकिन यह झगड़ा तय नहीं हो पाता। इस बीच में पेल्यूस के बेटे और मिरमिन्डस के राजकुमार एचिलीस के नेतृत्व में ट्राय के कई नगरों को लूट लेते हैं।

इन लूटों के फलस्वरूप एचिलिस और उसके सेनापति के बीच एक आपसी झगड़ा खड़ा हो जाता है। आगामेनन को पुरस्कार-स्वरूप क्राइसीइस नाम की युवती मिलती है और वह उसे उसके बाप को सिपुर्द करने से अस्वीकार करता है। उसका बाप आपोलो का एक स्थानीय पुजारी है, जो अपनी लड़की को छुड़ाने के लिए धन लेकर आता है; किन्तु निराश लौट जाता है। पुजारी अपने ईश्वर की प्रार्थना करता है और इसके फलस्वरूप महामारी फैल जाती है।

जनता आगामेनन को बाध्य करती है कि वह पुजारी की लड़की उसको वापस कर दे और आगामेनन को प्रायश्चित्त-स्वरूप ऐसा करना पड़ता है। पर वह एचिलीस को पुरस्कार में प्राप्त लड़कियों में से एक ब्रिसीइस नामक लड़की पर अधिकार कर अपने घाटे की पूर्ति कर लेता है।

इचिलीस बड़ा क्रुद्ध हो जाता है और आगे लड़ने से इनकार कर देता है और रणक्षेत्र से अपनी मिरमिडन सेना हटा लेता है। एक क्षणिक विराम-सन्धि होती है, जिसमें मेनेलाउस और पेरिस को द्वन्द्व युद्ध करने का अवसर दिया जाता है। इसके बाद दोनों सेनाएं फिर रणक्षेत्र में जुट जाती हैं, पर एचिलीस की अनुपस्थिति के कारण एचिआ की सेनाएं, जो अबतक ट्राय की सेनाओं को नगर की दीवारों के अन्दर ही बने रहने के लिए बाध्य किये रहती है, केवल अपनी सुरक्षा भर कर पाती हैं। यहां तक कि इन लोगों को अपने जहाजों और तम्बुओं के आसपास खाइयाँ और दीवारें बनानी पड़ती हैं।

पर इनकी यह रक्षा-व्यवस्था ट्राय के सेनापति हेक्टर द्वारा ध्वस्त कर दी जाती है। वह एचिआ के जहाजों में से एक में आग लगा देता है।

अब तक एचिलीस सभी तरह की प्रार्थनाओं के बाद भी लड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं होता, फिर वह किसी तरह अपने मित्र पेट्रोक्लस को मिरमिडन सेनाओं का सेनापतित्व प्रदान करता है और उसे एचिअन सेनाओं की सहायता के लिए भेजता है। पेट्रोक्लस इस मिशन में सफल होता है, किन्तु वह इतना आगे बढ़ जाता है कि ट्राय की दीवारों के अन्दर हेक्टर द्वारा मारा जाता है।

इस दुर्घटना से एचिलीस जाग उठता है। वह हेक्टर पर क्रुद्ध हो जाता है और अपने मारे गये साथी के लिये बड़े शोक में पड़ जाता है। वह आगामेनन से समझौता कर लेता है और एक बार फिर मैदान में उतर पड़ता है। ट्राय की सेनाएं फिर एक बार अपने नगर की दीवारों के भीतर खदेड़ दी जाती हैं, और अन्त में वह हेक्टर को मार डालता है।

इतने ही से सन्तुष्ट न होकर वह अपने शत्रु के शव को अपमानित करता है।

हेक्टर के पिता राजा प्रियाम को देवता लोग, रात में एचिलीस के तम्बू में जाकर हेक्टर का शव लाने के लिए प्रेरित करते हैं (एचिआ वाले शव-संस्कार पर विशेष ध्यान देते थे)। एचिलीस आर्द्र हो जाता है और हेक्टर की शव-क्रिया के लिए छोटा-सा युद्ध-विराम होता है। यहीं इलियड की समाप्ति हो जाती है।

कथा दुःखान्त है; किन्तु शव-दाह के साथ-साथ खेल-कूद की योजना होती है और अनेक प्रकार की दौड़ और वीरता के प्रदर्शन के लिए पुरस्कार-वितरण होता है। भयानक विध्वंस के बाद भी मनोरंजन का वातावरण उपस्थित होता है। नवनिर्माण और नवचेतना का प्रादुर्भाव होता है। इससे प्रतीत होता है कि दुःखान्त का उद्देश्य विनष्ट वस्तुओं के लिए शोक मनाना नहीं, बल्कि कोई समाधान सुझाना है।

होमर ने मानव-जीवन और उसकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों का इतना सजीव विश्लेषण किया है कि तीन हजार वर्षों के बाद भी आज वे परिवर्तित नहीं हुई है। होमर ने लिखा है—युद्ध मनुष्य का व्यवसाय है।

आज भी हमारे युग में युद्ध पूँजीपतियों का व्यवसाय ही है, लेकिन उस समय के और आज के दृष्टिकोण में अन्तर है। उस युग में वीरता और पुरुषार्थ ही पुरुष का अस्त्र था। आज विश्वासघात और कूटनीति ही प्रमुख साधन बन गये हैं। बिना युद्ध के ही घर बैठे मानव का सर्वनाश करने के लिए ऐटम और हाइड्रोजन बमों का आविष्कार हो रहा है।

किन्तु उस समय रणक्षेत्र में प्रतिद्वन्द्वी को ललकारकर सावधान करना और प्रचलित नियमों के अनुकूल अस्त्रों का ही प्रयोग उचित समझा जाता था। सूर्यास्त तक युद्ध का निर्णय न होने पर दोनों पक्ष के योद्धा किस तरह प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्र में आपस में उपहारों का आदान-प्रदान कर वापस लौटते थे। (हेक्टर ने अयास को एक सुन्दर तलवार भेंट की और अयास ने हेक्टर को एक सुनहली बेल्ट दी—इलियड बुक ७)।

वीरों का रण-कौशल दिखलाते हुए होमर ने उनके हृदय में तनिक भी दया और क्षमा का भाव जाग्रत होने नहीं दिया था। अपने शत्रु की मुक्ति के लिए अनेक प्रलोभन मिलने पर भी तत्काल ही उसे मौत के घाट उतार दिया गया था। किसी भी स्थिति में उसे छोड़ा नहीं गया। दूसरी ओर कितने ही वीर योद्धा, रणक्षेत्र में अपने मित्रों के वीर-गति प्राप्त करने पर, सरल बालकों की भाँति बिलखते और अश्रुपात करते थे।

मनुष्य की क्रूरता चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब पराजित शत्रु के प्राण लेने पर भी उसकी प्रतिहिंसा शान्त नहीं होती। वह शव का हाथ और सिर काटकर अपने साथ ले जाता है और लोगों को दिखलाकर अपने को विजयी समझता है।

होमर लिखता है—मनुष्य सब चीजों से थक जाता है। अधिकता की सीमा पर पहुँचने पर वह प्रेम, निद्रा, संगीत और नृत्य से ऊब जाता है और लम्बे युद्ध को देखकर वह चिल्ला उठता है—'पर्याप्त', लेकिन ये ट्रायजन साधारण मनुष्य नहीं हैं, ये युद्धलोलुप हैं।

युद्ध में जाते समय हेक्टर अपने पुत्र को गोद में लेने के लिए हाथ फैलाता है। पर लड़का चिल्लाकर अपनी नर्स की छाती से चिपक जाता है। वह अपने पिता के काँसे के शिरस्त्राण को देखकर डर जाता है। इस पर हेक्टर और उसकी स्त्री हँस पड़ती है। हेक्टर अपना शिरस्त्राण भूमिपर रख देता है, फिर वह अपने बेटे को चूमता है, अपनी गोद में लेकर प्यार करता है और जिउस और दूसरे देवताओं से प्रार्थना करता है—हे देवताओ, आशीर्वाद दो कि मेरा यह लड़का मेरे जैसा ही ट्राय में सर्वप्रसिद्ध हो, मेरे ऐसा ही वीर और बलशाली हो और इलियड का शक्तिशाली राजा हो। जब यह युद्ध-क्षेत्र से लौटकर आवे तो सब लोग यही कहें—'यह एक ऐसा पुरुष है जो अपने पिता से भी श्रेष्ठ है'। यह घर पर अपने मारे हुए शत्रुओं के खून से रँगे कवच आदि लाने में समर्थ हो और इस प्रकार अपनी माता को अपनी विजय से प्रसन्न कर सके।

होमर भाग्यवादी था। उसका विश्वास था कि मनुष्य का शरीर धारण कर कोई भी कायर अथवा वीर भाग्य से दूर नहीं हो सकता।

वह लिखता है—मानव अपनी पीढ़ी में वृक्ष की पत्तियों की भाँति है। पवन चलता है और उस वर्ष की पत्तियाँ बिखर जाती हैं, लेकिन वृक्ष फिर नई कोंपलों को जन्म देता है और नवीन पत्तियाँ वर्षा में हरी-भरी हो जाती हैं। इसी तरह एक पीढ़ी का विकास होता है और दूसरी अपने अन्त के समीप पहुँचती है।

इलियड को जब हम भारतीय दृष्टि से पढ़ते हैं तब उसमें हमें भारतीय जीवन से बहुत समानता दिखाई पड़ती है; जैसे कोई पवित्र कार्य करने के पहले दोनों हाथ धो डालना, क्षमा माँगने के लिए नम्रतापूर्वक पैरों पर गिर पड़ना, युद्ध के समय स्त्रियों का घर में रहकर चर्खा चलाना और गृहस्थी का कार्य करना। मरने पर लकड़ी की चिता पर शव को जला

देना, मृत्यु के बाद दस दिन तक विलाप करना और बारहवें दिन भोज देकर निवृत्त होना, इत्यादि।

जिस तरह भारतीय ग्रामीण स्त्रियाँ पति की मृत्यु पर करुण क्रन्दन और विलाप करती हैं, ठीक उसी स्वर में हेक्टर की पत्नी का रुदन सुनाई पड़ता है।

भारत के दो महान् ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण और महाभारत का होमर पर निस्सन्देह प्रभाव पड़ा था। इन ग्रन्थों से होमर की रचनाओं की तुलना करने पर बहुत सी बातें समान प्रतीत होती हैं। भारतीय विद्वानों के लिए अभी यह विषय अनुसन्धान का है।

अब संक्षेप में होमर के दूसरे महाकाव्य ओडेसी की कथावस्तु दे देना उपयुक्त होगा।

यह कहानी ओलिम्पियन देवताओं के एक सम्मेलन से आरम्भ होती है। यह ट्राय के पतन के दस वर्ष बाद की घटना है। जिउस सम्मेलन का अध्यक्ष बनता है और वह आगामेनन के भाग्य का पर्यालोचन करता है। आगामेनन ट्राय की विजय से लौटते समय अपनी स्त्री, क्लाइहीमनेस्त्रा और उसके प्रेमी ईजीस्थूस द्वारा मार डाला जाता है।

होमर इस दुःखान्त कथा को प्रस्तुत करते हुए कलंकिनी क्लाइहीमनेस्त्रा और ओडेसीउस की पतिव्रत-धर्म-परायणा महिषी पेनेलोप की पारस्परिक तुलना करता है।

इसके बाद ओडेसीउस की चर्चा चलायी जाती है और यह विचार किया जाता है कि इस दुर्भाग्य-ग्रस्त पथ-भ्रष्ट राजा को फिर से उसकी राजधानी में प्रतिष्ठित किया जाय।

ओडेसीउस समुद्र के देवता पोसीडन के द्वेष के कारण दस वर्षों तक भटकता रहा और अपने निवास-स्थान इथाका न लौट सका। वह ओगी-जिया द्वीप में कालिप्सो नाम की परी द्वारा बंदी बना लिया जाता है, यह एक अपेक्षाकृत कम शक्तिशालिनी देवी है जो पिछले सात वर्षों से ओडेसीउस को अपने वश में करने का प्रयत्न करती रही है। अस्तु।

यह निश्चय किया जाता है कि देवताओं का दूत हरमिज ओडेसीउस की मुक्ति के लिए भेजा जाय। उधर एथिन नाम की देवी इथाका जाकर ओडेसीउस के पुत्र, हेलेमाकूस को प्रेरित करती है कि वह जाकर अपने बहुत दिनों से खोये हुए पिता की खोज करे और यदि वह न मिल सके तो उसकी अनुपस्थिति में जो अवाञ्छनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है उसको सम्हाले।

ओडेसीउस की अनुपस्थिति में इथाका के बहुत से राजकुमार और आस-पास के द्वीपों के दूसरे प्रमी लोग पेनेलोप को व्याहने के लिए उसके महल को घेरे रहते हैं। देवताओं के इस सम्मेलन में इन्हीं प्रेमियों के विनाश का उपाय ढूँढ़ा जाता है।

होमर बड़ा दूरदर्शी था। उसने नाटक-गृह बनने के पहले ही नाटकों की उत्पत्ति की थी। उसकी रचनाओं को पढ़कर विश्वास होता है कि वह एक महान् कथाकार था। इसमें संदेह नहीं कि वह साहित्य की खान था, जिसमें से अगणित रत्न विश्व में निकल चुके और निरन्तर निकलते रहेंगे।

यूनानी नाटककार

यूनानी रंगमंच अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचकर एक राज्य-संचालित संस्था बन गयी थी। वहाँ दासों और निम्न समाज के लोगों के लिए समान रूप से मनोरंजन का साधन प्रस्तुत होता था। यह इसका-ईलस, साफोक्लीज, यूरिपिडीज और ऐरिस्टोफिनीज आदि नाटककारों का युग था। प्रत्येक व्यक्ति नाटक के टिकट के लिए दो ओबोल (आठ आने के लगभग) देने में समर्थ होता था। यदि कोई असमर्थ होता तो वह नगर के खजांची से मिलकर प्रार्थना करता था कि उसका शुल्क माफ हो। यही एथेंस के नगर-राज्य का नियम था।

एथेंस का सबसे पहिला रंगमंच एक्रोपोलिस की ढाल पर डिओनिसस एल्यूथीरिउस वाला रंगमंच था। इसका अवशेष अब तक सुरक्षित है। सबसे पहली सीटें लकड़ी की बनी थीं और रंगमंच भी लकड़ी का ही बना था। डाक्टर पिर्लकिंगर के अनुसार सम्भवतः इसकाईलस, साफोक्लीज, यूरिपिडीज के दुःखान्त और ऐरिस्टोफिनीज के सुखान्त नाटकों को दर्शकों ने इन्हीं लकड़ी की सीटों पर बैठकर देखा होगा। एथेंस का रंगमंच सम्भवतः लिकरगस नाम के वित्त मंत्री के समय में बनकर तैयार हुआ था, जिसका कार्यकाल ३३८ से ३२६ ई. पू. तक था। इस बात का प्रमाण है कि एथेंस का प्राचीन रंगमंच बाजार की समतल भूमि पर था। इस कथा के अनुसार यह इमारत इसकाईलस, प्राटिनास और कीरिलस के बीच के एक संघर्ष

में टूट गया था और इसमें बहुत से लोग मर गये थे। इस पर यह निश्चय हुआ कि रंगमंच की सीटों के लिए कोई प्राकृतिक पहाड़ी जैसी जगह होनी चाहिए।

यह सम्भव है कि आरम्भ में यूनानी नाटक धार्मिक उत्सवों के अवसर पर खेले जाने के लिए रचे गये हों, पर वे तत्त्वतः कभी धार्मिक न रहे। नाटक सर्वथा धर्म-निरपेक्ष होता था और धार्मिक भावना के ठीक विपरीत पड़ता था। ये नाटक-प्रतियोगिताएं दिसम्बर या जनवरी के लिनीयन त्यौहार के अवसर पर और मार्च या अप्रैल में होनेवाले डायोनिमियन त्यौहार के अवसर पर वर्ष में दो बार होती थीं। ये धार्मिक पर्व हुआ करते थे। यहाँ धार्मिक का अभिप्राय धर्म से नहीं है। वास्तव में ये धार्मिक पर्व तब आरम्भ हुए जब यूनानियों ने धार्मिक मान्यताएँ ही छोड़ दी थीं। डायोनिसस के पर्व के अवसर पर उसकी प्रतिमा मन्दिर से उठाकर रंगमंच पर ले जाकर रखी जाती थी, जिसका अभिप्राय यह था कि उस अवसर पर वह अपने मन्दिर से छुट्टी लेकर जनता से मिलता था। इस अवसर पर काम-धाम बन्द हो जाता था। दास अपने स्वामी से समता के आधार पर मिलता था, और सब एक दूसरे से मजाक करने में स्वतन्त्र थे और गाली देने की पूरी छूट होती थी। बिना ऊँच-नीच के भेद-भाव के, इस अवसर पर, हर एक को शराब पीने तथा खुलकर प्रेम करने की अनुमति होती थी।

इसकाईलस के काल में दुःखान्त नाटक पूर्वी भूमध्यसागर की एक कला हो चुकी थी। शताब्दियों से लोगों का यह विश्वास हो चुका था कि ऐतिहासिक या दुःखान्त घटनाएँ ही दर्शकों के सामने घटा करती थीं। रंगमंच पर केवल एक वक्ता होता था और उसकी वाणी और क्रियाओं को समझाने के लिए 'कोरस' हुआ करता था। इसकाईलस ने इस कला में नवीनता की उद्भावना की थी। इसकाईलस, साफोक्लीज और यूरिपिडीज ने ऐसी कला-कृतियाँ प्रस्तुत कीं जो उन परिस्थितियों में अनिवार्य होने के साथ ही उनकी मौलिक कृतियाँ थीं। उनसे पहले या बाद की कला को देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनकी कृतियाँ बेजोड़ हैं। उनमें त्रुटि नाममात्र के लिए भी नहीं दिखाई पड़ती है।

होमर की रचनाओं में भी त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती। पर उसकी वर्णनात्मक शैली अनिवार्यतः उसकी कथा-वस्तु का सूत्र अविच्छिन्न नहीं छोड़ पाती। इस दृष्टि से इनमें यूनानी दुःखान्तों की कथा-वस्तु की एकसूत्रता नहीं दिखाई पड़ती, तथापि इलियड, और कुछ हद तक ओडेसी में भी

तीनों दुःखान्त नाटककारों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया था। यदि उस घाटी में बन्धन में रखे गये प्रोमेथिउस के मौन की तुलना एचिलिज के मौन से करें, जब पेट्रोक्लस का शव उसके तम्बू में लाया जाता है, तो दोनों में एक बहुत बड़ा मेल दिखाई पड़ता है। इस प्रकार इलियड में विशेष अन्वेषण करने पर ऐसे बहुत से उदाहरण दिये जा सकेंगे।

होमर की रचनाएँ यूनानी बाइबिल समझी जाती थी, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानी नाटककार उसकी दोनों रचनाओं से ही अपनी कथा-वस्तु चुना करते थे। महाकाव्य वाली शैली प्रत्येक जाति के इतिहास में किसी न किसी समय आवश्यक होती है। किन्तु जब वह एक बार पूर्ण विकास को प्राप्त कर लेती है तो दूसरी शैलियों का विकास अनिवार्य हो जाता है। महाकाव्य एक ही स्वर में इतिहास विशेष को गाता है। यदि इसको उपमा देकर समझाना चाहें तो यह कह सकते हैं कि जब मनुष्य एक समूह में किसी यात्रा के लिए निकल पड़ता है, तब मार्ग में विविध गानों और सामूहिक गानों से उसका मनोरंजन हो पाता है; किन्तु जब वह किसी नगर में बस जाता है, तब उसे किसी स्थायी मनोरंजन के साधन की आवश्यकता पड़ती है। ई० पू० १००० से ई० पू० ५०० तक भूमध्य-सागर के पूर्वी तटों और द्वीपों में यही बात हुई। पहले तो होमर की शैली के गीत थे जिन्हें एक ही पात्र गाता था। बाद में, बीच-बीच में, सामूहिक गान सम्मिलित किये जाने लगे।

यूनानी नाटकों की उस अवस्था में इलियड और ओडेसी जैसी कथाओं को नाटक का रूप देना असम्भव था। धीरे-धीरे नृत्य और अपेक्षाकृत विकसित 'कोरस' आदि जोड़ने से यूनानी नाटक विकसित होते गये। इसकाईलस से पहिले यूनानी नाटक धार्मिक पर्वों के अवसर पर की जाने-वाली एक पूजा के रूप में था। उस समय के उच्च वर्ग वाले इन नाटकों के द्वारा श्रमिक वर्ग में यह धारणा बनाना चाहते थे कि उनको (श्रमिकों को) उच्च वर्गों की सेवा—अनुशासन और आज्ञाकारिता के साथ—करनी चाहिये, क्योंकि वे ओलिम्पस के देवताओं के अंश हैं।

यूनानी दुःखान्त और सुखान्त नाटकों में सभी विषयों, यथा नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, या फिर साधारण बातचीत का भी समावेश रहता था। एथेंस के यूनानी लोग अपने इतिहास के एक बहुत बड़े समय तक, बड़े विवादप्रिय और बकवादी लोग थे। इसका कारण उनका प्रजा-तान्त्रिक और साम्यवादी संघटन था जहाँ प्रत्येक नागरिक को अपने

समय का कुछ भाग अगोरा या असेम्बली की बहस में लगाना पड़ता था। दास प्रथा होने के कारण भी प्रत्येक व्यक्ति को कुछ अवकाश के क्षण प्राप्त हो जाते थे। इसके अतिरिक्त, उचित शिक्षा-व्यवस्था के कारण उनके मस्तिष्क और बुद्धि का अच्छा विकास हो गया था। पुरुषों को गार्हस्थ्य कार्यों से मुक्ति मिली हुई थी, क्योंकि यह कार्य सर्वथा स्त्रियों का उत्तरदायित्व समझा जाता था।

यद्यपि समय-समय पर युद्ध होता रहता था और राजनीतिक प्रश्न कभी कभी सर्वाधिक महत्त्व के प्रश्न हो जाते थे; किन्तु बीच-बीच में इन बातों से अवकाश मिल जाया करता था। ऐसे समय में जीवन, जगत् की प्रकृति, लेउस के परिवार के भाग्य या वंश-परम्परा पर बहस हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त, इस पर विचार किया जाता था कि इसका-ईलस शराबी है या नहीं। इसी प्रकार दूसरे नागरिकों के गुण-अवगुण की चर्चा हुआ करती थी।

यूनानी नाटकों में सबसे उल्लेखनीय नाटककारों की स्वतंत्रता है। केवल स्वतंत्रता ही नहीं, अपितु स्वच्छन्दता भी है। वे साधारण मानहानि तक ही नहीं रुकते थे। उदाहरणतः ऐरिस्टोफिनीज को राज्य के अधिनायक आल्सिबियाडीज और क्लिअन की कड़े से कड़े शब्दों में आलोचना करने में कोई झिझक नहीं होती थी। इसका कारण यह था कि सभी राजनीतिक, सामाजिक या व्यक्तिगत विषयों में जनमत का बड़ा महत्त्व था। यूनानी नैतिकता की आधार-शिला यह प्रश्न था कि जनता क्या समझेगी? जनमत का महत्त्व इतना था कि ऐसे तार्किक शिक्षकों का एक सम्प्रदाय ही खड़ा हो गया जो सोफिस्ट नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका काम यह था कि ये जनता को जीवन का ढंग सिखावें, ठीक वैसे ही जैसे आजकल पश्चिमी देशों की व्यापारिक संस्थाएँ व्यापार-मनोविज्ञान की शिक्षा दिया करती हैं।

यूनान में, आरम्भ में, 'कोरस' ही नाटक का एक रूप था। कोरस में एक ही व्यक्ति अपनी भावनाओं को गीत के रूप में उपस्थित करता था। यह गीत दुःखान्त ही होता था। आनन्दातिरेक में ही एक अभाव की वेदना की पुकार छिपी रहती है। यूनानी पर्वों में मानव-प्रकृति भावुक और संवेदनशील होती हुई सी जान पड़ती है। नशे में चूर लोगों के ये गीत प्राचीन यूनान में अश्रुतपूर्व थे। डायोनिसस का संगीत विशेष रूप से भय और आतंक उत्पन्न करता था। जो संगीत आपोला-कला के नाम से ज्ञात था, वह स्वर-लहरी भर था जो बाद में एक व्यवस्थित रूप में आया।

आपोलो का संगीत जहाँ शिल्प से अधिक सम्बन्ध रखता था वहाँ डायोनिसस का संगीत मानव की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता था।

गीतिकार की प्रतिभा चित्रों और प्रतीकों के एक जगत् के प्रति जागरूक रहती है, यह उसकी आत्म-विस्मृति और एकता का परिणाम होता है। इस अवस्था मे एक अपूर्व रंग, एक अपूर्व घटना और तीव्रता होती है। यह दूसरे कलाकार और महाकवियों में नहीं मिलती। महाकवि अपने कथा-नायकों में ही रमे रहते है। इसके ठीक विपरीत, गीतिकारों के चित्र उनकी आत्मा के चित्र होते हैं। निस्सन्देह, इनमें और दूसरे जीवित प्राणियों में अन्तर होता है। इन कवियों का व्यक्तित्व आधारिक होता हैं। जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर के अनुसार गीति, गीतिकार की अपनी इच्छा होती है, कभी-कभी अतृप्त इच्छा जो भावुकता, आसक्ति या मन की एक विशेष प्रवृत्ति परिलक्षित कराती है। इसलिए गीतियों में गीतिकार की व्यक्तिगत इच्छा और उसके वातावरण के प्रभाव का एक अच्छा मिश्रण मिलता है। इस मेल के लिए भिन्न-भिन्न सम्बन्धों की कल्पना की जाती है। गीतिकार की इच्छा उसके वातावरण को अपने रंग में रँग लेती है, उसी प्रकार से वातावरण भी गीतिकार की इच्छा को अपने रंग में रँग लेता है। वास्तविक गीति इन्हीं दोनों तत्त्वों के सम्यक् मिश्रण की अभिव्यक्ति होती है।

यूनानी नाटकों में दुःखान्त का उपयोग कैसे हुआ ? इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कहानी है—राजा मिडास बहुत दिनों तक जंगलों में बुद्धिमान् सिलेनस को खोजता रहा जो डायोनिसस का साथी था। जब वह उसके अधिकार में आ गया तब राजा मिडास ने उससे पूछा कि मनुष्य के लिए सबसे उपयोगी वस्तु क्या है ?

स्थिर और मौन होकर उस किन्नर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

जब राजा ने हठ किया तो वह ठहाका मारकर हँसा और कहने लगा—अरे मरणशील मनुष्य-जाति, दुर्दैव और विपत्ति की सन्तान ! क्यों मुझसे ऐसे प्रश्न का उत्तर चाहते हो, जो तुम्हारे लिए न सुनना अधिक श्रेयस्कर होगा ! जो सबसे अच्छी वस्तु है वह तो सदैव तुम्हारे लिए अप्राप्य रहेगी। वह है, जन्म न लेना, अस्तित्व में न आना, 'कुछ नहीं' रहना। पर इसके बाद तुम्हारे लिए जो अच्छी वस्तु है, वह मृत्यु है। इस रहस्य को यूनानी दुःखान्त नाटकों की कुंजी समझना चाहिए। यूनानी लोग, जीवन अस्तित्व में आने के दुःख को जानते थे। यही तथ्य यूनानी दुःखान्तों के विभिन्न पात्रों से प्रकट होता है।

इसकाईलस

(५२५–४५६ ईसा पूर्व)

इसकाईलस यूनान का प्रथम नाटककार था। अपनी युवावस्था में उसने भिन्न-भिन्न प्रकार की कविताएँ लिखने का प्रयत्न किया था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में उसने दुःखान्त लिखने का प्रथम प्रयास किया था। अब उसके लिखे नाटक नहीं मिलते और उसके सम्बन्ध में भी विशेष पता नहीं लगता। इतना ज्ञात है कि अपने नाटक के प्रदर्शन में इसकाईलस स्वयं उसमें एक पात्र बना था। इसके बाद इसकाईलस मराठन के युद्ध में एक सैनिक के रूप में आता है। वह अपने को एक नाटककार की अपेक्षा सैनिक अधिक मानता था। मराठन के युद्ध के दस वर्ष बाद उसने सलामिस के युद्ध में भाग लिया था और उसके पश्चात् प्लैटिया में एथेंस की सेना में भर्ती हुआ था। दोनों युद्धों के बीच और उनके बाद वह व्यंग्य नाटक और दुःखान्त नाटक लिखता रहा। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं कि इन व्यंग्य नाट्यों की वास्तविक रूपरेखा क्या थी। पर इतना मालूम है कि कुछ ऐसे दृश्य थे, जिनमें शब्द और संगीत होते थे। इसके पात्र बकरे की खाल के से कपड़े पहनते थे, नकाब और पूँछ लगाते थे।

व्यंग्य नाटकों और दुःखान्तों में मुख्य अन्तर यह था कि दुःखान्तों के चरित्र अधिक परिष्कृत होते थे। ठीक वैसे ही जैसे व्यंग्य नाटक 'कोमस' नाट्यों से अधिक परिष्कृत थे।

४७२ ई० पू० में डायोनिसस के उत्सव के अवसर पर इसकाईलस को उसके नाट्य-चातुर्य के लिए एक पुरस्कार मिला था। उस समय की रचनाओं में केवल 'परसी' अब तक उपलब्ध है। यदि अरस्तू को प्रमाण मानें तो यह मानना पड़ेगा कि अपनी इस रचना के समय तक इसकाईलस ने दुःखान्त नाटकों में क्रान्ति उपस्थित कर दी थी। उसने न केवल एक पात्र से अधिक वाले नाटक लिखे, अपितु नाटक की कथा-वस्तु समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं से ली थी। यह अभूतपूर्व प्रयत्न था। इसकाईलस ने सालामिस के युद्ध में भाग लिया था, जिसमें फारस के आक्रामकों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी थी और कुछ समय के लिए एथेंस की प्रमुखता स्थापित हो गयी थी। इसकाईलस के नाटक का आरम्भिक दृश्य फारस के राजा

जरक्सस के दरबार में उद्घाटित हुआ था। उसमें पूर्व की सारी सजधज दिखाई गई, दारियस की प्रेतात्मा का आवाहन किया और वीरोचित वैशिष्ट्य के साथ पूर्व और यूनान के बीच का संघर्ष दिखाया गया था।

इसकाईलस के व्यक्तिगत जीवन की कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी है, यद्यपि उसकी असहिष्णुता का उल्लेख प्राचीन पुस्तकों में मिल जाता है। कहा जाता है कि उसकी सभी रचनाएं शराब के नशे में लिखी गई हैं। जो भी हो, उसकी उच्च धारणाओं में कुछ नशा अवश्य मिलता है, चाहे वह शराब का हो या किसी अन्य वस्तु का। लेकिन यह प्रचलित धारणा अतिरञ्जित जान पड़ती है कि इसकाईलस नशे में चूर रहता था और उसे मालूम नहीं होता था कि वह क्या लिख रहा है। नाटककार साफोक्लीज उसके सम्बन्ध में कहता था—इसकाईलस उचित काम कर जाता है, यद्यपि वह यह नहीं जानता कि ऐसा क्यों करता है।

इसकाईलस का प्रोमिथीउस बाउण्ड यद्यपि एक गम्भीर दुःखान्त नाटक है, तथापि वह नास्तिकवादी ढंग से जीउस के अत्याचार और मानव की उच्चता की घोषणा करता है।

इसकाईलस ने अपने जीवन में सत्तर दुःखान्त नाटकों की रचना की थी। उनमें से अधिकांश रचनाएं लुप्त हो गई हैं। केवल सात पुस्तकें प्राप्य हैं, जिनमें 'ओरेस्टिया' नाम की एक ट्रायलाजी भी है। ट्रायलाजी उसे कहते हैं, जिसमें एक कथा-वस्तु के सूत्र से तीन नाटकों को आबद्ध किया जाय।

इसकाईलस की मृत्यु उनहत्तर वर्ष की अवस्था में हुई थी।
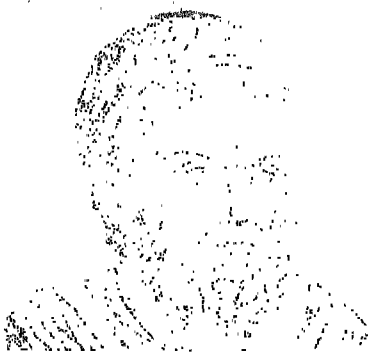
साफोक्लीज

(४९५–४०५ ईसा पूर्व)

साफोक्लीज का जन्म ऐथेंस से एक मील दूर के एक गाँव में हुआ था। उसका पिता धनी था। वह शस्त्रों के कारखाने का मालिक था। युवावस्था में साफोक्लीज अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि जब सालामिस के युद्ध में विजय प्राप्त हुई तो वह विजयोत्सव में सम्मिलित होनेवाले युवकों का नेता बनाया गया था। उसने अपने समय की सबसे ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। साफोक्लीज ने पच्चीस वर्ष की अवस्था में अपना प्रथम नाटक प्रस्तुत किया था। यह उस समय की बात है, जब साइमन ने जीसिउस के अवशेषों को साइरोस से एथेंस लाने का आदेश दिया था।

यह युवक नाटककार प्रसिद्ध और वृद्ध नाटककार इसकाईलस की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा हुआ था। इस प्रतियोगिता में पुरस्कार साफोक्लीज को ही मिला। कहा जाता है कि इस पुरस्कार-वितरण में अन्याय हुआ था। साधारणतया दर्शकों के मतानुसार पुरस्कार देने की प्रथा थी; लेकिन उस अवसर पर साइमन और उसके नौ जनरल जजों ने ही पुरस्कार-वितरण के सम्बन्ध में निश्चय कर लिया था। इसलिए लोगों को सन्देह था। यदि इसकाईलस और साफोक्लीज के वे नाटक आज उपलब्ध होते जो उन लोगों ने उक्त प्रतियोगिता में प्रस्तुत किये थे तो पता चल सकता था कि पुरस्कार-वितरण में वस्तुतः न्याय हुआ था या अन्याय।

इस विजय ने साफोक्लीज को एक सफल नाटककार के रूप में आगे बढ़ाया। वह तिरसठ वर्षों तक रंगमंच के लिए लिखता रहा। उन्नीस बार

उसे प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। द्वितीय पुरस्कार तो उसे प्रायः मिल जाया करता था, तृतीय पुरस्कार उसे मिलने का कभी अवसर ही नहीं आया था। साफोक्लीज नाटकों के अतिरिक्त, अपने हथियारों के कारखाने को भी देखता था। सत्तावन वर्ष की अवस्था में सामोस के विरुद्ध छेड़े गये युद्ध में उसे जनरल का पद दिया गया था। वृद्धावस्था में वह वीर आलोन के मन्दिर का पुजारी नियुक्त हुआ था। उसके जीवन-काल में यूनान अत्यन्त शान्त और सम्पन्न था। वह एक सम्पन्न, धार्मिक और प्रिय नागरिक के रूप में आदृत था।

उसके जीवन के अन्तिम दिनों में कुछ घटनाएँ हुईं, जिनसे उसको बड़ी चिन्ता हुई। पेलोपोनेशियन युद्ध के बाद ही गृहयुद्ध छिड़ गया था और एथेंस में अशान्ति और अव्यवस्था फैल गई थी। इसके अतिरिक्त, साफोक्लीज का गृह-जीवन कलहपूर्ण हो गया था। कुछ समय से थेओरिस नामक एक स्त्री के प्रति उसकी सहानुभूति हुई। उसको वह आर्थिक सहायता देने लगा। इसका परिणाम उसकी शान्ति में बाधक हुआ। उसके पुत्र आयोफोन ने उस पर मुकदमा चलाकर यह सिद्ध करना चाहा कि वह उन्मादग्रस्त है और अपनी धन-सम्पत्ति की सुव्यवस्था नहीं कर सकता। उसे इस बात की आशंका थी कि उसके पिता की सम्पत्ति थेओरिस के हाथ लग जायगी। वृद्ध साफोक्लीज ने अपने नवीन नाटक का कुछ रोचक स्थल न्यायाधीश के सम्मुख पढ़कर सुनाया, जिससे उसका उन्मादग्रस्त होना सिद्ध न हो। इस प्रकार उस मुकदमे का अन्त हुआ।

साफोक्लीज की मृत्यु उस समय हुई जब लासोडिमोनिया के लोग एथेंस पर आक्रमण कर रहे थे। एथेंस के सुख के दिन बीत चले थे और वहाँ के बुद्धिजीवियों में नये विचार जन्म ले रहे थे।

साफोक्लीज की एक ट्रायलाजी—जिसमें तीन नाटक किङ्ग ओडियस, ओडियस एट कोलोन्यूस और एन्टिगोन है—मैंने पढ़ा है। ये नाटक इतने रोचक हैं कि उन्हें समाप्त करके ही उत्सुकता शान्त होती है। लेखक की वर्णन-शैली और घटनाओं का क्रम इतनी कुशलता से उपस्थित किया गया है कि पढ़कर आश्चर्य होता है। ऐसा विश्वास होता है कि २४,२५ सौ वर्षों के बाद भी आजकल के नाटक-लेखक साफोक्लीज की कला से आगे नहीं बढ़ पाये हैं।

'किङ्ग ओडियस' के अन्त में 'कोरस' में अन्तिम अंश यह है—यह स्मरण रखो कि मरणशील मनुष्य को सदैव अपने अन्त के विषय में सोचते रहना

चाहिए। जब तक मनुष्य अपने आनन्द को लेकर अपनी कब्र की शान्ति में मिल नहीं जाता, तब तक उसे सुखी नहीं कहा जा सकता।

'ओडियस एट कोलिन्यूस' में एक स्थान पर कोरस में कहा गया है––जब जीवन अधिक लम्बा हो जाता है तब दुःख बढ़ता जाता है, कहीं आनन्द नहीं रह जाता । अन्त में जब मृत्यु बिना संगीत, नृत्य या गीत के साथ आती है, तब शान्ति मिलती है। जीवन का अन्त जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा है।

लेखक के इन वाक्यों में मृत्यु का रहस्य प्राचीन सेलेन्यूस की कहानी के अनुसार ही माना जाता है।

'एन्टिगोन' की कथा-वस्तु पर विचार करें। एन्टिगोन और इस्मीन पोलिनिसीज की बहनें हैं। पोलिनिसीज राज्य के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व करते हुए मारा जाता है। थीनीज के राजा क्रिअन का आदेश होता है। कि उसकी लाश दफनायी न जाकर कुत्तों द्वारा नोची जाने के लिए छोड़ दी जाय, जिससे देशद्रोहियों को शिक्षा मिले । यूनानियों के विश्वास के अनुसार यदि किसी शव का उचित संस्कार नहीं हुआ तो वह न तो मृतकों के लोक में ही जा पाता है और न पुण्यवानों के लोक में ही उसे स्थान मिलता है। इसके विपरीत उसकी प्रेतात्मा वायु में मँडराती फिरती है

विशेष कर युद्ध में पूरी तरह से दफनाना सर्वथा सम्भव नहीं होता, इसलिए मरे हुए व्यक्ति के शव पर कुछ मिट्टी छिड़क दी जाती थी और प्रार्थना की जाती थी। आज भी ईसाइयों में यह प्रथा प्रचलित है।

एन्टिगोन अपने भाई को बहुत चाहती है, अतः वह अपनी बहन इस्मीन के सहयोग से राजा क्रिअन के आदेश की अवहेलना करने का निश्चय करती है। इस्मीन राजा के आदेश से भयभीत होती है। एन्टि-गोन रक्षकों की आँख बचाकर अपने भाई पोलिनिसीज के शव पर मिट्टी छिड़कती है और पकड़ी जाती है। साथ में उसकी बहन इस्मीन भी पकड़ी जाती है, यद्यपि वह उपर्युक्त शव-संस्कार में भाग नहीं लेती है। दोनों पर कानून की अवहेलना करने का अभियोग लगाया जाता है।

अभियुक्ता एन्टिगोन का भाषण यूनानी दुःखान्त नाटकों में सर्वश्रेष्ठ भाषण है। वह कानून की अवहेलना करने के बारह से अधिक कारण देती है। उसके सभी कारण उस समय की स्त्रियों और आज की स्त्रियों के लिए भी बड़े तर्कसंगत जान पड़ते हैं। एन्टिगोन की बहन इस्मीन का विवाह उक्त राजा के पुत्र हीमेन से होनेवाला था। हीमेन इस मामले में

दखल देता है। उधर राजा संकट में पड़ जाता है। इधर राजा का बेटा एक अभियुक्ता का भावी पति है। उधर दोनों युवतियाँ राजा की भतीजी भी हैं। अस्तु, वह एन्टिगोन को बिना अन्न-जल के एक तहखाने में बंद कर देने का आदेश देता है। राजा के पुत्र हीमेन अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना कर एन्टिगोन की मुक्ति के लिए आता है; किन्तु इससे पहले एन्टिगोन फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर लेती है। इस पर राजा का बेटा हीमेन भी आत्म-हत्या कर लेता है।

इन नाटकों में भाग्य और नियति का चक्र सर्वत्र दिखाई पड़ता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के पुरुषार्थ और पराक्रम से अधिक महत्त्व-शाली भाग्य के विधान को ही समझना चाहिए।

यूरिपिडीज

(४८०–४०६ ईसा पूर्व)

यूरिपिडीज, साफोक्लीज से पन्द्रह वर्ष छोटा था। वह उस पुराने युग के अन्त में प्रौढ़ हुआ। वह नवीन युग का शिशु था। उसका जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। यह सालामिस पर यूनान की विजय का समय था। सुखान्त नाटककार ऐरिस्टोफिनीज की धारणा थी कि यूरिपिडीज की माँ मांस तथा तरकारी बेचती थी। प्रोफेसर मूरे का कहना है कि वह मांस बेचनेवाली न होकर एक कुलीन परिवार की लड़की थी।

यूरिपिडीज की माँ जब एक सुन्दरी युवती थी तब राज्य के एक प्रमुख अधिकारी और जमींदार नेसारपिडीज ने उससे विवाह कर लिया था। कई शताब्दियों के बाद सिकन्दरिया के वैयाकरण और समालोचक, फिलोकोरस ने उसके सम्बन्ध में अन्वेषण किया तब इस धारणा ने बल प्राप्त किया कि वह एक कुलीन परिवार की लड़की थी, और प्रोफेसर मूरे ने इसे ही प्रामाणिक माना। प्रोफेसर मूरे के अनुसार वह अपने पुत्र को बहुत चाहती थी और उस पर उसका बहुत प्रभाव था। इसी लिए यूरिपिडीज के नाटकों में मातृ-प्रेम का तत्त्व दिखाई पड़ता है।

यूरिपिडीज जब प्रौढ़ होने लगा उस समय उसका पिता समृद्ध हो गया

था, क्योंकि उसका शिक्षक प्रोडिक्स था, जिसकी फीस बहुत अधिक हुआ करती थी। वह आनाक्सागोरस और प्रोटागोरस नाम के दार्शनिकों का भी शिष्य था। यूरिपिडीज के युवक मित्रों में सुकरात भी था। वह भी आनाक्सागोरस का शिष्य था। यद्यपि इसके लिए कोई आधिकारिक प्रमाण नहीं है, तथापि अरस्तू के ग्रन्थ में एक स्थल पर लिखा हुआ है कि सुकरात मूर्तिकार और दार्शनिक होने के साथ ही साहित्यकार भी था। उसने ही कथोपकथन को जन्म दिया, जिसे जेनोफोन और अफलातून ने विकसित किया था। इन लोगों ने इसके द्वारा लूसियन द्वारा चित्रित साधारण जीवन के दृश्यों को चित्रित किया।

अनुमान है कि पहले यूरिपिडीज ने पहलवान बनने का निश्चय किया था और सत्तरह वर्ष की अवस्था में इलूसिनियन और थीसिमन की प्रतियोगिताओं में वह विजयी हुआ था, किन्तु सत्ताईस वर्ष की अवस्था में उसने अपने व्यंग्य नाटक प्लाइआडीज के लिए वार्षिक नाट्य प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया था। यह नाटक अब उपलब्ध नहीं है, लेकिन अनुमान है कि उसमें युवावस्था की जोशीली उच्छृंखलता भरी रही होगी। यूरिपिडीज के जीवन की वृत्ति शेक्सपीयर से मिलती-जुलती है।

यह ध्यान देने की बात है कि उसके द्वारा प्रस्तुत प्रथम नाटक दुःखान्त न होकर व्यंग्य नाटक था। कुछ समालोचक जो यूरिपिडीज के नाटकों को नहीं समझ पाते हैं, उसका कारण यह है कि वे उन नाटकों को व्यंग्य नाटक न समझकर दुःखान्त नाटक समझते हैं। इसके अतिरिक्त वे यह समझते हैं कि यूनानी दुःखान्त नाटक आरम्भ से अन्त तक शोक और गाम्भीर्य से भरे रहते हैं। यह भ्रम यूरिपिडीज के 'मिडिया' और 'एलेक्त्रा' तथा साफोक्लीज के 'फिलोक्टेटीज' जैसे दुःखान्तों के कई स्थलों से दूर हो जाना चाहिए। ये स्थल दुःखान्त की गम्भीरता से मुक्ति के लिए हास्य के रूप में आते हैं।

जिस प्रकार ऐरिस्टोफिनीज को यह मालूम था कि किस प्रकार अपने नाटकों में हास्य का पुट देना चाहिए जिससे दर्शकों के हास्य से खेल में विघ्न न उत्पन्न हो, उसी प्रकार दुःखान्त नाटककार भी, उपसंहार से पहले, बीच में हास्य का पुट देकर दुःखान्त के गाम्भीर्य के आतिशय्य को हलका करते थे। आजकल के कुशल नाटककार जानते हैं कि हास्य का पुट दिये बिना तृतीय अंक तक आते-आते दुःखान्त नाटक स्वयं अपने उद्देश्य को नष्ट कर देते हैं, इससे दर्शक ऊब जाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी सुखान्त नाटक के प्रथम और द्वितीय

अंक में बहुत हास्य भर दिया जाता है तो वह तीसरे अंकमें आकर दर्शकों को निराश कर देता है।

यूरिपिडीज का व्यक्तिगत जीवन चिन्तापूर्ण था। उसने अपनी पहली स्त्री मेलिनों को दुराचार के कारण तलाक दे दिया था। उसकी दूसरी स्त्री भी दुर्भाग्यवश वैसी ही निकली और उसे भी उसने तलाक दे दिया था। उसकी इस व्यक्तिगत भावना का उसके नाटकों पर निश्चय ही प्रभाव पड़ा था। उसने अपने नाटक 'ओरिस्टीज' में हेलेन के नाम से अपनी पहली स्त्री का और आगामेनन के नाम से अपना ही चित्रण किया है। आगामेनन क्लाइटेमनेस्त्रा का पति है। क्लाइटेमनेस्त्रा अपने पति की अनुपस्थिति में दूसरे से प्रेम करती है और बाद में अपने प्रेमी से मिलकर अपने पति की हत्या कर देती है। यह ध्यान देने की बात है कि आगामेनन को वह आदर्श के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। यूरिपिडीज किसी को देवता के रूप में नहीं देखता। वह हेलेन के पति मेनेलाउस को एक मिलनसार, अदृढ़, अशक्त और कुछ हास्यास्पद व्यक्ति के रूप में चित्रित करता है। हेलेन एक बार अपने पति मेनेलाउस को मूर्ख बनाती है; किन्तु मेनेलाउस उसे फिर से रख लेता है और यह प्रकट कर देता है कि वह बार-बार हेलेन को अपने पास रखने को तैयार रहेगा।

यूरिपिडीज पहला नाटककार है, जिसने स्त्रियों की बुद्धि और उनकी भावनाओं तथा यौन सम्बन्ध के प्रति सूक्ष्मता से विचार किया है। 'ओरिस्टीज' में हेलेन और एलेक्त्रा के बीच एक विवाद का दृश्य दिखाया जाता है। हेलेन रात को चुपके से मेनेलाउस के महल में जाती है, यद्यपि वह इससे पहले पेरिस के साथ भाग गई थी। वह यह भली भाँति जानती है कि मेनेलाउस उसे फिर रख लेगा। वह प्रयत्न करती है कि स्पार्टा की स्त्रियाँ उसे मेनेलाउस के यहाँ लौटते न देख लें; क्योंकि उसे ज्ञात है कि वे स्त्रियाँ उसके सम्बन्ध में अच्छी सम्मति नहीं रखतीं। एलेक्त्रा नाम की एक स्त्री से उसकी भेंट हो जाती है जो स्वभाव से उजड्ड और बड़ी पवित्र होने का दम भरती है। वह हेलेन के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट कर देती है। दोनों में वाग्युद्ध होने लगता है। हेलेन उत्तर में कहती है कि तुझे भी तो एक पुरुष की आवश्यकता है। यदि तुझे अवसर मिलता तो तू स्वयं पेरिस के साथ भाग जाती, लेकिन तू कुरूपा है और तुझे कोई नहीं पूछता।

यह झगड़ा चलता रहता है। उधर पास के कमरे में एलेक्त्रा का भाई

ओरिस्टीज ठहरा रहता है। एलेक्ट्रा ने उसे भड़काया है कि वह अपनी व्यभिचारिणी माता की हत्या करे। हेलेन जानती है कि मेनेलाउस उसे फिर से रख लेगा, इसलिए वह जमकर एलेक्ट्रा को गाली देती है। उधर एलेक्ट्रा भी यह बात जानती है फिर भी वह हेलेन और अपनी माँ जैसी स्त्रियों के चरित्र की बड़े कड़े शब्दों में निन्दा करती है।

इस वर्णन से यह महत्वपूर्ण विषय स्पष्ट होता है कि अपनी दोनों स्त्रियों से प्राप्त अनुभव के आधार पर यूरिपिडीज स्त्री-प्रकृति को समझने में समर्थ हुआ। हेलेन के प्रति उसकी सहानुभूति है। हेलेन 'ओरिस्टीज' नाटक की नायिका है। वह शरारती, खूब सोचने-समझनेवाली, आत्मविश्वासी, कुटिला और स्वार्थी है। किन्तु वह सुन्दर, आकर्षक और मोहनेवाली भी है। वह जानकर किसी को कोई दुःख नहीं पहुँचाती है। यह दूसरी बात है कि उसकी अपने मन की करने की प्रकृति से यूनानी स्त्रियों को अगणित दुःख झेलने पड़ते हैं।

हेलेन और एलेक्ट्रा में स्त्रियों का सूक्ष्म विश्लेषण है। यूरि-पिडीज पुरुषों के चित्रण में भी समान रूप से सफल है। यूरिपिडीज की सर्जन-शक्ति के युग में साफोक्लीज के नाटक विद्यमान थे, जिनमें आदर्शमय जीवन का आलेखन मिलता था। उसको इससे बड़ा विरोध था। उसका विश्वास था कि जीवन का मिथ्या अंग मनुष्य को कलुषित बनाता है और वास्तविक यश और आत्मसमन्वय नष्ट हो जाता है। एथेंस की जनता वर्षों से इसकाईल्स और साफोक्लीज के नाटकों को देखने की अभ्यस्त हो गई थी। लोग नाटकों को देखते थे और अपने नगर की वास्तविक स्थिति को समझते थे। जिन युद्धों का इन नाटकों में बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन था, उनसे राजकीय कोष खाली हो गया था। अधिकांश लोग भिखमंगे बन गये थे। शासन में अव्यवस्था फैल गई थी। लोभी मनुष्य मीठी-मीठी बातों से जनता को लूट रहे थे। यह सब उन कवियों के कारण जो झूठे और भ्रामक वर्णनों से जनता को ठग रहे थे।

यूरिपिडीज ने न केवल सामाजिक, यौन और गार्हस्थ्य समस्याओं पर विचार करने की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की, अपितु उसने भ्रष्ट जनतन्त्र की कलुषित राजनीति, राजाओं और अधिनायकों के स्वार्थ, राज्य के अधिकारियों की मूर्खता और तथाकथित जननेताओं की कुटिलता पर प्रकाश डाला है।

नागरिकों की भ्रष्ट सभा उसको फँसाना चाहती थी। उस पर अधा-र्मिकता का अभियोग लगाया गया; लेकिन वह छोड़ दिया गया। क्रुद्ध

होकर वह एथेंस से आरचीलाउस चला गया। वहाँ उसके संगीतज्ञ, चित्र-कार, इतिहासकार और दूसरे मित्र विद्यमान थे। ये सब एथेंस के असह्य वातावरण से क्षुब्ध होकर वहाँ चले गये थे। इस घटना के बाद ही सम्भवतः उसने 'बाच्ची' की रचना की थी।

'बाच्ची' में केवल व्यंग्य भरा हुआ है। एक साथ उसमें पाँच-छः विषयों पर विचार किया गया है। फिर भी उसमें कोई नायक नहीं है। उसमें चित्रित सभी पात्रों पर व्यंग्य का प्रहार किया जाता है। यहाँ तक कि तिरिसियस और काडमस, जिनके प्रति कवियों और नाटककारों ने सदैव नम्रता दिखाई है, पर भी व्यंग्य किया गया है। नाटक के आराध्य देव डायोनिसस को भी नहीं छोड़ा गया है। मादक द्रव्यों का सेवन न करने की प्रतिज्ञा करनेवाला टेनेथिअस, जिसे कुछ लोग इस नाटक का नायक समझते हैं, अत्यन्त हीन कोटि का कपटी मनुष्य है। वह डायोनिसस के पीछे-पीछे जानेवाली स्त्रियों के विरुद्ध भड़का दिया जाता है। डायोनिसस मादक द्रव्यों के एशियाई यज्ञ में संलग्न दिखाया जाता है। काम-क्रीड़ाओं में व्यस्त स्त्रियों को देखकर उसे भी एक झाँकी ले लेने की इच्छा होती है।

पवित्र काडमस और अन्धा पैगम्बर तिरिसियस रंगमंच पर शराब के नशे में चूर दिखाये जाते हैं। उनके सफेद बालों में अंगूर के पत्ते और हाथों में थाईमस दिखाया जाता है, जो डायोनिसस के यज्ञ के लिए आव-श्यक होते हैं। दोनों उन स्त्रियों की मद्यपान-क्रिया में सम्मिलित होने के लिए व्यग्र हैं। काडमस तिरिसियस को मार्ग दिखलाता है। पेंथियस की माता स्वयं उन शराबी स्त्रियों के बीच दिखाई जाती है। पेंथियस एक वृक्ष पर चढ़कर उसकी डालियों में छिपकर इन स्त्रियों को देखता है। और उन स्त्रियों ने उसे जब देखा तो उस वृक्ष को उखाड़ दिया और पेंथियस को पकड़कर चीर दिया। पेंथियस की माँ अपने बेटे के धड़ से अलग हुए सिर को लेकर समझती है कि वह एक सिंह का सिर है।

अन्तिम दृश्य में यह शोकपूर्ण दृश्य दिखाया जाता है। पेंथियस की माँ अपने बेटे का सिर लेकर लड़खड़ाती जबान में कहती है कि उन लोगों ने एक सिंह मारा है। अन्त में डायोनिसस उसे हिलाकर होश में लाता है, तब वह समझ पाती है कि उसके हाथ में उसके बेटे का सिर है।

साफोक्लीज का कथन था—यूरिपिडीज मनुष्य के रूप का यथावत् चित्रण करता है, मैं उसका यथोचित चित्रण करता हूँ।

यूरिपिडीज 'एटिक' दुःखान्त नाटकों और इसकाईलस के समय से प्रच-

लित नैतिक नाटकों के विरुद्ध था। उस समय ऐसे सैकड़ों नाटक प्रचलित थे; किन्तु उनमें से केवल दो-चार नाटक आज उपलब्ध हो सकते हैं।

इसकाईलस से साफोक्लीज तक के दुःखान्त नाटकों का विकास ध्यान देने योग्य है। इसकाईलस में मनुष्य देवताओं को ही अपने दैव का विधान करनेवाला समझता है। साफोक्लीज तक आते-आते मनुष्य ही मनुष्य के दैव का निश्चय करता हुआ पाया जाता है। 'प्रोमिथिउस' और 'ओरिस्टीआ' में देवताओं के प्रकोप दिखाये जाते हैं; अर्थात् वे आदेश देते हैं और वे आदेश ही इन नाटकों में चित्रित चरित्र के भाग्य बन जाते हैं।

साफोक्लीज में आकर मनुष्य दुर्दैव का शिकार तो होता है, पर वह दुर्दैव दैवी शक्ति से प्रेरित न होकर जीवन की क्रूर घटनाओं से प्रेरित होता है। उदाहरणतः इडियस के दुर्भाग्य को देखें। वह बच्चे के रूप में परित्यक्त था। बाद में एक राजा ने उसे पाला और उसे बताया गया कि वही उसका पिता है। वह अपने वास्तविक पिता की हत्या करके अपनी माता को अपनी स्त्री बना लेता है और उससे चार बच्चे उत्पन्न होते हैं—एन्टिगोन, इस्मीन और उनके दो भाई।

साफोक्लीज में मानव और मानवता ही सर्वप्रधान है। देवताओं का हस्तक्षेप घटनावश होता है। उसके मानव पात्र अपने पैरों पर खड़े होते हैं और यद्यपि उनके भाग्य अत्यन्त विषम होते हैं तथापि वे हमारी सहानुभूति से वंचित नहीं हो सकते। वे अपने सामने की विपत्तियों को उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जैसे एक डूबते हुए जहाज का कोई यात्री उत्ताल तरंगों से तरंगित समुद्र में साहस के साथ तैरता जाता है। इसी प्रकार विपत्तियों के पहाड़ को पार करते-करते वे समाप्त हो जाते हैं, पर व्यर्थ का रोना नहीं रोते।

अरस्तू के अनुसार साफोक्लीज ने यूनानी नाटकों में कोई नई उद्भावना नहीं की, सिवा इसके कि उसने रंगमंच के पृष्ठभाग की यवनिका का प्रयोग आरम्भ कराया। इसकाईलस वास्तविक प्रतिभावान् रहा और उसे दुःखान्त नाटकों का जनक कहा जाता था। उसने एक वक्ता पात्र और सामूहिक गान (कोरस) से दो वक्ता पात्रों का विधान किया और इस प्रकार नाटक केवल किसी एक व्यक्ति का पाठ और संगीत मात्र न रहकर क्रिया से युक्त होने लगा। साफोक्लीज ने इस कला को सुविकसित किया।

यूरिपिडीज ने नवीन उद्भावनाएँ दीं। उसके नाटक अधिक जीवन्त, यथार्थ और रंगमंच के लिए क्रान्तिकारी हुए और आगाथन, मेनान्डर और

दूसरे नाटककारों ने उसका अनुकरण किया। उसने रंगमंच में यथार्थता का समावेश किया और साफोक्लीज की काल्पनिकता फिर लौट न सकी।

यूरिपिडीज तक आते-आते यूनानी दुःखान्त नाटक और मानव की ओर उतरता हुआ दिखाई पड़ता है। साफोक्लीज में जो दैवी हस्तक्षेप दिखाई पड़ता था, वह वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो गया था। उसकी कहानियों के पात्र मार्ग में मिल सकते हैं। उसका प्रत्येक पात्र या तो स्वभाव से भावुक है या हृदय-हीन या फिर भावुकता और हृदय-हीनता, दोनों से युक्त। इसके अतिरिक्त यूरिपिडीज की विचार-धारा किसी भी भाषा में अनूदित की जा सकती है; क्योंकि उसने जो भी विचार प्रकट किये हैं वे समसामयिक जगत् के प्रत्येक वर्ग के लोगों के लिए आज भी सत्य हैं। समाज के इस यथार्थ चित्रण और देवताओं के प्रति अश्रद्धा के कारण निर्णायकों को भय था कि उसकी रचनाएँ कहीं क्रान्ति न उपस्थित कर दें। इसी लिए दुःखान्त नाटकों की प्रतियोगिता में उसे केवल पाँच ही बार पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

यूरिपिडीज का अन्तिम जीवन मकदूनिया में ही व्यतीत हुआ था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह कोमल, मधुर और प्रिय हो गया था। वहीं रहकर उसने अपने रोमेंटिक और विवादरहित नाटक हेलना और आंड्रोमेडा की रचना की थी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि एथेंस के दुःखान्त, आधुनिक नाटक से नहीं बल्कि नाट्य-संगीत से मिलते-जुलते हैं। लेखक को स्वयं नाटक और उसका संगीत तैयार करना पड़ता था। प्रायः नाटककार ही नाटक का प्रमुख पात्र बनता था। इस प्रकार इसकाईलस ने 'प्रोमोथिउस बाउंड' में प्रोथिउस का काम किया था। साफोक्लीज और यूरिपिडीज ने अपनी युवावस्था और मध्य अवस्था में अपने लिखे हुए नाटकों में अभिनेता के रूप में कार्य किया था।

यूरिपिडीज सम्पूर्ण यूनान में बहुत प्रसिद्ध था। जनता उस पर विशेष श्रद्धा करती थी। यही कारण था कि यूनानी सेनाओं ने दो बार एथेंस पर आक्रमण किया था। यूरिपिडीज की मृत्यु के बाद उसका शव मकदूनिया से एथेंस लाया गया और उस समय जनता ने यह जोरदार माँग की कि अन्तिम बार के लिए नाटक-प्रतियोगिता का उस वर्ष का पुरस्कार उसे दिया जाय। यह सम्भवतः एथेंस की जनता की स्वतन्त्रता का अन्तिम संघर्ष था।

कहा जाता है कि साफोक्लीज ने १२३ नाटक लिखे, यूरिपिडीज ने ९२, इसकाईलस ने सौ से अधिक और मेनान्डर ने १०९ नाटक लिखे थे।

एथेंस के पुरस्कृत नाटककारों में एरिटिआस, थेओडेक्टास, एचीअस, आके-रियस, यूटीज, नोथिप्पस, पोलू फासमन, क्रेटिनस और कारसिनस थे।

ई० पू० ४८६ का वर्ष यूनानी साहित्य में महत्वपूर्ण वर्ष समझा जाता है ; क्योंकि इसी वर्ष सुखान्त नाटक को सरकारी मान्यता मिली और उसके लिए पुरस्कार का विधान किया गया। यह ऐरिस्टोफिनीज के जन्म से तीस वर्ष पूर्व की बात है।

पहले के दुःखान्तों में एक ही विषय पर चार नाटक होते थे। प्रथम तीन दुःखान्त और अन्तिम व्यंग्यात्मक या हास्यात्मक। इसी से उन दुःखान्तों का नाम 'टेट्रालाजी' पड़ा। इसके साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने यूनान के चार महत्वपूर्ण लेखकों की भी रचना की थी। आगे चलकर यूनान के इन महान् चार नाटककारों ने योरोपीय नाट्य-साहित्य का पथ-प्रदर्शन किया।

लिनीयन पर्व के अवसर पर हास्य-नाटक वर्जित थे और दुःखान्त प्रच-लित थे। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त पर्व डायोनिसस के पर्व से अधिक गम्भीर होता था। लीनस, बाचस के अनेक नामों में से एक है। डायोनिसस भी ऐसा ही नाम है, पर अधिक सम्भव यह है कि लीनस १२०० ई० पू० के एक कवि और गायक 'लिनस' का बिगड़ा हुआ रूप है, जिसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उसे कुछ दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया था। होमर के अनुसार अंगूर के चयन करनेवाले लोग लिनस के एक गीत को शोक-गीत के रूप में गाया करते थे। वह कोई वेदना-युक्त संगीत रहा होगा। गाथाओं में लिनस का वर्णन एक सुन्दर युवक के रूप में मिलता है, जिसे कुत्तों ने फाड़ डाला था। जैसा कि गाथाओं में परस्पर विरोधी बातें मिला करती हैं, लिनस के सम्बन्ध में भी यह बात कही गई है कि इस कवि और संगीतज्ञ ने अपने शोकगीत और उसके गाने के ढंग को स्वयं ही निर्मित किया था। लिनस के ये शोकगीत वसन्त ऋतु के शोक में भी गाये जाते थे। होमर की रचना में, लिनस का यह शोकगीत एक लड़का वीणा पर गाता था और उसके साथ में अंगूर की टोकरी लिये स्त्रियाँ रहती थीं। इस गीत का अन्त इस चिल्लाहट के साथ होता था—ऐ! लिनिस!

ऐसा विश्वास होता है, और अरस्तू का भी यही मत है, कि इसका-ईलस के नाटकों में पाये जानेवाले 'डिथिरेम्ब' (बाचस की स्तुति में गाया जानेवाला एक गीत) लिनस के गीत का ही विकास है। इसको साफो-क्लीज और यूरिपिडीज ने एक सामूहिक गान की शैली में परिणत कर दिया था।

यह सब तो अनुमान ही है; क्योंकि दुःखान्त और हास्य नाटकों के संबंध में हमें विशेष बातें मालूम नहीं हैं। केवल अरस्तू ने कुछ कल्पनाएँ की है। कुछ विद्वानों का मत है कि हास्यनाटक का आविष्कार छठी शताब्दि ई० पू० में थेस्पिस ने किया था। एथेंस के एक गाँव 'इकारा' मे उनका जन्म हुआ था। उस समय तक बाचस के त्योहार में हँसी-मजाक और तरह-तरह के दूसरे हास्यात्मक खेल प्रचलित थे। लोग अनेक प्रकार की वेषभूषा पहनते थे और तरह-तरह के रूप बनाते थे। इनमें से बकरे की खाल वाली पोशाक सर्वाधिक प्रिय हुई। अनुमानतः पहले-पहल उन अवसरों के हास्य और गीत पहले से तैयार नहीं किये जाते थे। बाद में इन गाली-गलौज और हास्यगीतों ने एक व्यवस्थित रूप धारण किया और वे सामूहिक गान के रूप में गाये जाने लगे।

यह भी अनुमान किया जाता है कि थेस्पिस एक नट, संगीतज्ञ और नर्तक था और उसी ने उक्त हास्यगीतों और दूसरे मजाकों को एक खेल का रूप दिया था। उसने उसे खेलने के लिए लोगों को तैयार किया और स्वयं गीत लिखे। बीच-बीच में उसने अपने खेल में नृत्य और हास्य जोड़ दिया। फीनिक्स थेस्पिस का शिष्य और इसकाईलस का समसामयिक था। उसने थेस्पिस के इस खेल में सुधार कर उसे और गम्भीर बनाया जिसका आधार सम्भवतः डिथिरेम्ब था।

इस प्रकार यह सम्भव जान पड़ता है कि दुःखान्त और हास्य-नाटक का विकास साथ-साथ हुआ था।

ऐरिस्टोफिनीज

(४४८–३४७ ईसा पूर्व)

पुराने हास्यनाटकों का युग समाप्त हो चुका था। ऐरिस्टोफिनीज और उसके समसामयिक नाटककारों के नवीन नाटकों में उस युग की उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ हास्यनाटकों में प्रधान रूप से उपस्थित की जाती थीं। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि उक्त प्रवृत्तियों का अनिवार्य परिणाम असंख्य अविहित यौन सम्बन्ध था। इसका परिणाम यह हुआ कि अगणित नाजायज बच्चे उत्पन्न होते थे, जिससे गार्हस्थ्य-जीवन और उसकी आर्थिक स्थिति विषम बन जाती थी।

एरिस्टोफिनीज ने कभी दुःखान्त लिखने का प्रयत्न नहीं किया। उसने कुछ निम्न स्तर के हास्यनाटक भी लिखे जो केवल पुरुषों के लिए होते थे और पृथक् रंगमंच पर खेले जाते थे। यह उसके 'दी क्लाउड्स' (बादल) से मालूम होता है। 'दी क्लाउड्स' में दर्शकों को सम्बोधित कर नाटककार ने जो भाषण दिया, उससे पता चलता है कि उसने 'केवल पुरुषों के लिए' दो व्यंग्य नाटक लिखे थे, जिनका नाम 'दी यंग मैन' और 'दी देबोशे' (व्यभिचारिणी) है।

उस युग में नाटक-प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए लेखक की तीस वर्ष की अवस्था होना आवश्यक था; किन्तु ऐरिस्टोफिनीज ने उस अवस्था से पहले दूसरे नाम से हास्यनाटक प्रस्तुत किये थे। उसने स्वयं लिखा था कि तीस वर्ष की अवस्था होने के बाद जब उसने 'दी नाइट्स' लिखा तो न केवल अपने नाटक की शैली में सुधार कर लिया था, अपितु हास्य को प्रेरित करनेवाले दूसरे नाटककारों की प्रणालियों में भी उसने पर्याप्त सुधार कर लिया था।

वास्तव में ऐरिस्टोफिनीज ने हास्य के लिए निम्न प्रयोगों को नहीं अपनाया जो उसके समय के नाटककार अपनाते थे और आज के हास्य-नाटककार भी अपनाते हैं। उसका हास्य परिष्कृत है। उसका व्यंग्य अत्यन्त खरा होता था और उसका हास्य मानव-प्रकृति के गम्भीर अध्ययन पर आधृत होता था। साधारण परिवर्तन के बाद उसके नाटक आज भी दर्शकों में लोकप्रिय हो सकते हैं।

कुछ आलोचकों का कथन है कि ऐरिस्टोफिनीज सुकरात का शत्रु था और उसके कारण ही यूरिपिडीज को एथेंस छोड़ना पड़ा था। अपने लिखे नाटक 'दी क्लाउड्स' में ऐरिस्टोफिनीज ने सुकरात पर तीव्र व्यंग्य किया था; किन्तु इस सम्बन्ध में यह भी विवरण मिलता है कि जब वह नाटक प्रथम बार खेला गया था तो स्वयं सुकरात ने उसे अन्त तक देखा था और उसके व्यंग्य का आनन्द लिया था।

एथेंस के लोगों की मुकदमेबाजी की प्रकृति पर व्यंग्य करते हुए ऐरि-स्टोफिनीज ने 'दी वास्प्स' (बर्रे) की रचना की थी। युद्ध की मनोवृत्ति पर आक्रमण करते हुए उसने 'दी पीस' (शान्ति) और 'लिसिस्ट्रा' की रचना की थी। 'दी प्लूटस' और दूसरे दो व्यंग्य नाटकों में उसने उन बूढ़ों पर व्यंग्य किया है जो नई जवानी प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते थे। उसने 'दी बर्ड्स' में काल्पनिक हास्य और कविता का पुट दिया।

'थेसमो फोरिआ जुसो' में उसने स्त्रियों की मुक्ति और 'एक्के ज्याजूसे' में मताधिकार के लिए लड़नेवाली स्त्रियों का चित्रण किया है।

एरिस्टोफिनीज की मृत्यु वृद्धावस्था में ही हुई थी। अन्तिम समय में उसने अपने पुत्र पर दो नाटक पूरा करने का काम छोड़ा था; किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि उसके पुत्र ने उसे पूर्ण किया अथवा नहीं। उसके अन्तिम समय में एथेंस पराधीन हो चुका था और वहाँ की कला का भी अन्त हो चुका था।

यूनानी दार्शनिक

दर्शन की दृष्टि से योरोपीय साहित्य में यूनान ही सर्वप्रथम महत्त्व रखता है। यूनान में दर्शन का उल्लेखनीय आरम्भ ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी में हुआ था। केवल डेढ़ सौ वर्षों में वह चरम विकास की अवस्था में पहुँच गया। वह मानव बुद्धि की उच्चता और हीनता से उच्चतम शिखर पर पहुँचकर एकदम नीचे गिर गया। लेकर आकिया---जिसके प्रति योरोप और अमेरिका अपने धर्म का स्वरूप प्राप्त करने के लिए कृतज्ञ है---ने ही दर्शन के कोमल वृक्ष को उत्पन्न किया और उसे सींचा। यूनान के उस सुन्दर तट पर बसे उपनिवेशों ने अपनी मातृभूमि में अपने यहाँ उत्पन्न दर्शन को प्रेषित किया।

मिलेटस के थेलीज, मितिलेन के पिटकास, प्रियेन का बायास, लिन्डस के क्लिओबुलस और दूसरे विद्वान् उस युग के महान् बुद्धिमान् माने जाते थे। वे लोग न केवल अपने देशवासियों को उपदेश दिया करते थे, किन्तु उनके दुर्गुणों को न्याय द्वारा नियंत्रित करते थे। वे नैतिक शिक्षा से जनता के स्वभावों को परिवर्तित कर देते थे और महत्त्वपूर्ण तथा कठिन अन्वेषणों द्वारा उनका ज्ञान बढ़ाया करते थे।

धर्म-निरपेक्ष नैतिक दर्शन का प्रथम प्रयत्न ईसोप की कहानियों में दिखाई पड़ता है। मनुष्य के आरम्भिक समाज के लिए ये कथाएँ बहुत गम्भीर और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ समझी गई हैं। इतिहास का क्षेत्र सीमित था। मिथ्या विश्वास के कारण उत्पन्न भ्रष्टाचारों के चलते देवताओं के अनुकरण की बात हीनता समझी जाने लगी। मनुष्य, जो प्राकृतिक जीवन

की सादगी से बहुत सामीप्य रखता था, कुछ पशुओं की स्वाभाविक बुद्धिमत्ता देखकर उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कर सकता था, यही उन कथाओं का उद्देश्य था। आरम्भिक युग में यूनान, रोम और दूसरे ऐसे देशों में, जिनका लिखित इतिहास प्राप्त नहीं है, ऐसी कथाएँ कही जाती थीं। उन कथाओं पर जनता का विश्वास था। इसका कारण यह है कि समाज में मनुष्य शिशु होता है। इसके अतिरिक्त इन कथाओं मे वर्णित बातें उतनी काल्पनिक नहीं होतीं, जितनी कि हमारी धारणा के अनुसार ये आज्ञा करती हैं। रोमांटिक ढंग की कल्पना—जिसने जंगल और पवन को वाणी दी, वीरों को देवता के रूप में परिवर्तित किया और देवताओं को निर्बल मनुष्य के रूप में स्वीकार किया—तब पशुओं को भी बुद्धि और वाणी प्रदान कर सकती थी।

नैतिक विज्ञान का दूसरा पग अधिक परिष्कृत और अल्प रहा। उसमें युग का संकेत करनेवाले कवियों के वाक्य रहते थे। इन निष्पक्ष उपदेशों और कहावतों को सभी देशों में देख सकते हैं। ये किसी व्यवस्थित नैतिक विज्ञान के आविर्भाव से पहले दिखाई पड़ते हैं। यूनान में सात ज्ञानियों के अपने सूत्र थे, जिनको वे मन्दिर और मनोरंजन के स्थानों पर लिख दिया करते थे। यूनान के सप्त ऋषि के नाम से ये विख्यात हैं। ये दार्शनिक प्रायः एक दूसरे से मिला करते थे और शासन तथा व्यक्तिगत जीवन के आनन्द के लिए आवश्यक कलाओं पर भी चर्चा किया करते थे।

एक दिन सोलोन थेलीज से मिलने मिलेटोस गया। अपनी वार्ता के मध्य में सोलोन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा कि थेलीज अपना विवाह क्यों नहीं करना चाहता?

थेलीज ने उस समय कोई उत्तर नहीं दिया। एक दिन उसने एक चाल चली। यह प्रसिद्ध किया गया कि एथेंस से कोई व्यक्ति आया है। यह सुनकर सोलोन को अपनी जन्म-भूमि के सम्बन्धित समाचार जानने की स्वाभाविक उत्सुकता हुई। उसे ज्ञात हुआ कि एथेंस के एक प्रतिभाशाली युवक की मृत्यु से संपूर्ण नगर शोकाकुल है।

सोलोन ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—हाय, उसके पिता पर कितना बड़ा वज्रपात हुआ। फिर उसने मृत युवक का नाम पूछा। नवागन्तुक ने कहा—मुझे नाम बताया गया था, लेकिन मैं भूल गया। मुझे केवल इतना स्मरण है कि लोग उसके ज्ञान और न्याय-बुद्धि की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। सोलोन की चिन्ता बढ़ रही थी। उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा—क्या उसके पिता का नाम सोलोन था?

नवागन्तुक ने कहा—हाँ, बस यही नाम था।

यह सुनकर सोलोन अत्यन्त शोकमग्न हो गया। थेलीज यही अवसर खोज रहा था। उसने सोलोन का हाथ पकड़ते हुए कहा—धैर्य रखो मित्र, जो कुछ तुमसे कहा गया है सब कथा मात्र है। यह सब तुम्हारे उस प्रश्न का उत्तर है कि मैंने विवाह करने का विचार क्यों नहीं किया।

एक दिन कारिंथ के राजा परियनडर के दरबार में ये सातों दार्शनिक बैठे थे। वहाँ प्रश्न उठाया गया कि सबसे निर्दोष शासन कौन है?

बियास ने उत्तर दिया—वह, जिसमें कानून से श्रेष्ठ कोई वस्तु न हो। थेलीज ने कहा—जहाँ के लोग न बहुत धनी हैं न बहुत निर्धन। आनाकारसिस ने कहा—जहाँ गुणों की पूजा और अवगुणों का अनादर होता है। पिटाक्स ने कहा—जहाँ गुणियों को मान दिया जाता है, अवगुणियों को नहीं। क्लिओबुलस ने कहा—जहाँ के नागरिक दण्ड से अधिक अपयश से डरते हों। चिलो ने कहा—जहाँ वक्ताओं से अधिक कानून का मान होता है। इन सबमें सोलोन का विचार अधिक मान्य समझा गया। उसने कहा—जहाँ प्रजा के निकृष्टतम व्यक्ति पर किये गये अत्याचार को सम्पूर्ण विधान का अपमान समझा जाता हो।

सोलोन वक्तृत्व-कला, काव्य और शासन-सम्बन्धी विषयों का विशिष्ट विद्वान् समझा जाता था। एक बार वह आनाकारसिस से शासन-सम्बन्धी सुधारों के विषय में वार्तालाप कर रहा था। इस पर आनाकारसिस ने कहा—आपके सभी कानून मकड़ी के जाले की भाँति होंगे। इसमें केवल निर्बल लोग फँसेंगे और शक्तिशाली सदैव उसे तोड़कर निकल जाया करेंगे।

एक समय लिडिया के राजा क्रीसस से सोलोन की भेंट हुई। यह राजा एशिया माइनर में सर्वसम्पन्न समझा जाता था। उसने उस यूनानी दार्शनिक के सामने अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन किया। उसने सब प्रकार के आभूषणों को सोलोन के सम्मुख रखकर पूछा—क्या इतनी बड़ी सम्पत्ति का स्वामी संसार का सबसे सुखी प्राणी नहीं है?

सोलोन ने उत्तर दिया—नहीं, मैं एक इससे सुखी पुरुष को जानता हूँ। वह यूनान का एक निर्धन किसान है। सम्पन्न और विपन्न अवस्थाओं में उसकी बहुत कम आवश्यकताएँ होती हैं और उसने उन आवश्यकताओं को अपने श्रम के द्वारा पूरा करना सीख लिया है।

इस उत्तर से उस राजा को प्रसन्नता नहीं हुई। वह तो एक ऐसे उत्तर की प्रतीक्षा में था, जिससे उसके मिथ्याभिमान की सन्तुष्टि हो। अतएव

उसने फिर पूछा—क्या वह उसे सुखी नहीं समझता ? सोलोन ने उत्तर दिया—मृत्यु से पहले किसको सुखी कहा जाय ? सोलोन का बुद्धिमत्ता-पूर्ण उत्तर बाद की घटना से सत्य सिद्ध हुआ।

साइरस ने लिंडिया के साम्राज्य पर आक्रमण किया, साम्राज्य ध्वस्त हो गया और क्रीसस बन्दी बना लिया गया। जब वह मृत्यु-दण्ड के लिए ले जाया जा रहा था, तब उसे सोलोन की वह बात स्मरण आयी। बध-स्तम्भ से वह सोलोन का नाम लेकर विलाप करने लगा। साइरस ने यह सुना और उसका रहस्य जानने के लिए उत्सुक हुआ। जब क्रीसस ने उसे उस दार्शनिक का वह वाक्य सुनाया तब साइरस स्वयं अपनी भावी दशा के लिए चिन्तित होने लगा। उसने क्रीसस को क्षमादान दे दिया। उसे अपना मित्र बना लिया। इस प्रकार सोलोन को एक राजा का प्राण बचाने और दूसरे को सुधारने का श्रेय प्राप्त हुआ।

यूनान के उन सप्त ऋषियों में से थेलीज ने आइओनिक सम्प्रदाय को चलाया। उसके सम्प्रदाय में, बाद में, आनाक्सिसेण्डर और आनाक्सिमेनीज सम्मिलित हुए। इन दोनों के पश्चात् पेरिक्लीज का शिक्षक आनाक्सा-गोरास और आरकेलाउस हुआ, जिसको प्राचीन लेखक सुकरात के गुरु मानते हैं। थेलीज के लगभग ५० वर्ष बाद, उसकी कल्पना को उसके अनुयायियों ने आगे बढ़ाया।

थेलीज और उसके अनुगामियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का अन्वेषण किया जो सदैव मानव की उत्सुकता को जगाते रहेंगे। उनके सिद्धान्त अमान्य भी हुआ करते थे। वे किसी भी तत्त्व को प्रकृति का प्रथम तत्त्व मानकर चलते थे। सब एक स्वर से बुद्धि के विभ्रम और मिथ्याविश्वास की अनावश्यकता को स्वीकार करते थे। तथापि संसार के उद्भव और लय के इनके सिद्धान्तों, विभिन्न ग्रहों के स्थान और उनके विस्तार के विषय में इनकी कल्पनाओं को अन्वेषणशील पुरुषों के स्वप्न ही समझना चाहिए। इनमें से प्रमुख ल्यूसिप्पस के सिद्धान्त थे, जिनको डेमोक्रिटस ने विकसित किया था। बाद में एपिक्यूरस ने भी उसे स्वीकार किया और उसके दर्शन को ल्यूक्रिटियस ने पर्याप्त विशद रूप से समझाया है।

आनाक्सागोरास ने एक और विशेषता प्रकट की। उसने धर्महीन जगत् को सर्वप्रथम एक निरपेक्ष और पूर्ण मन के अस्तित्व की घोषणा की, जो उसके अनुसार इस भौतिक जगत् का कर्ता और करण है। थेलीज, पिथागोरास और उनके अनुगामियों ने इस जगत् के साथ आत्मा के अस्तित्व

को स्वीकार किया था। उन लोगों ने मन और भौतिक तत्त्वों को इस तरह से मिला दिया था कि वे एक अविभाज्य इकाई बन गये; आत्मा और शरीर को मनुष्य के अन्योन्याश्रित अंग समझा। दूसरी ओर आनाक्सागोरास के अनुसार, सृष्टि और बाह्य ज्ञान को संसार की आत्मा से पृथक् समझना चाहिए, जिसको वह केवल उस कर्ता की कृति के नियमों की काव्यमय अभिव्यक्ति समझता था।

सुकरात

(४६९–३९९ ईसा पूर्व)

सुकरात का जन्म पेलोपोनेसियन युद्ध के चालीस वर्ष पूर्व एथेंस नगर में हुआ था। उसके पिता का नाम सोफ्रोनिस्कस था। उसकी पैतृक सम्पत्ति बहुत साधारण थी। वह मूर्तिकार का काम करता था, इसलिए कुछ लेखकों ने उसके जन्म के विषय में प्रकाश नहीं पड़ने दिया है, परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि यूनानी जन-तन्त्रों में जन्म की उच्चता आदि का विचार बहुत कम हुआ करता था।

युवावस्था में उसने आरकेलाउस का पदार्थविज्ञान और थियोडोरस के रेखागणित का अध्ययन किया और दूसरे शिक्षकों से तत्कालीन सभी प्रचलित वादों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। परिणाम-स्वरूप वह सृष्टि-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न कल्पनाओं की हँसी उड़ाने लगा और उन पर व्यंग्य करता रहा। वह धर्म में विश्वास करनेवाले आनाक्सागोरास के अनुसार बुद्धि को प्रकृति और मानव जीवन को नियन्त्रित करनेवाली शक्ति मानता था। उसने निम्न बौद्धिक तत्त्वों को अस्वीकार नहीं किया जो उन दिनों जन-श्रद्धा के विषय थे। वह स्वप्न और भविष्यवाणियों में दैवी तत्त्व के अस्तित्व को मानता था और अपने देश के धार्मिक कृत्यों को स्वीकार करता था। यदि हम एथेंस के इन दार्शनिकों को साधारण जनता के स्तर से देखें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वे सर्वथा मिथ्या-विश्वासों से मुक्त नहीं थे। वे यह विश्वास करते थे कि वे दुष्ट बुद्धि या सुबुद्धि द्वारा नियन्त्रित थे, जिनके प्रभाव में आकर वे वासनाभिभूत हो जाते थे। ये बुद्धियाँ

उनके स्वभावों को प्रभावित करती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि इन दार्शनिकों पर विश्वास विशेष का प्रभाव रहा करता था।

यदि हम सुकरात जैसे दार्शनिक के सत्तर वर्ष के दोष-रहित जीवन को देखें, अपने देश के कानूनों का उसका विरोध देखें, उसकी तपस्या, गम्भीरता, सभी स्थितियों को प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेने की उसकी अतुल क्षमता देखें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ऐसे दार्शनिकों में दिखाई पड़नेवाला थोड़ा-बहुत विश्वास—या मिथ्याविश्वास ही कहें—इनके दोष नहीं गुण ही है।

सुकरात के व्यक्तिगत प्रभाव का चाहे जो भी क्षेत्र हो, पर वास्तव में उसका दर्शन अधिक पूर्ण और प्रसिद्ध तब हुआ जब नाट्य-कलाओं में नाटककारों ने उसके दार्शनिक सिद्धान्तों को सम्मिलित करना आरम्भ किया। इन कलाओं ने सभी देशों में, विशेष कर यूनान में, राष्ट्रीय विचारों और चरित्रों के गठन में अपूर्व कार्य किया था। यूनान में नाट्य-कला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु समझी जाती थी। विशेषतः इसी क्षेत्र में सुकरात के दार्शनिक सिद्धान्तों का अधिक समावेश हुआ, फलतः सुकरात के दर्शन ने जन-जीवन में प्रसार पाया और उसे बहुत प्रभावित किया।

जिन दिनों फारस में यूनान का यश गाया जा रहा था, उन दिनों एथेंस में उसका अपना यश क्षीण हो रहा था। गृह-संघर्ष के बाद कुछ शान्ति हुई किन्तु विद्वेष के बीज वर्त्तमान थे। सुकरात विद्वेष और जनता के पारस्परिक मतभेद का पहला शिकार हुआ। उसने सदैव नम्रता, साहस और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। उसने युद्ध में आलसिब्याडीज की प्राण-रक्षा की थी और छः जनरलों को दिये जानेवाले मृत्युदण्ड में उसने अपनी सम्मति देना अस्वीकार किया था। उसने उन तीस अत्याचारियों का सामना किया और खुलकर अन्याय का विरोध किया। मानवता के प्रति उसके हृदय में असीम प्रेम था। वह दूसरों के दुर्गुणों पर दया करता था। वह यूनानी जनतन्त्र का जनक था। उसका एकमात्र सुख यूनानी जनता का सुख था।

सुकरात ने विचार किया कि वृद्धों का सुधार करना कठिन है, इसलिए उसने युवकों को शिक्षा देना आरम्भ किया। उसका अपना कोई विद्यालय नहीं था। वह सभी स्थानों और अवसरों पर उपदेश दिया करता था। चलते-फिरते, भोजन के समय की बातचीत में, सेना में, जनता की सभा में, सभी जगह वह निर्भय होकर बोलता था। उसका व्यक्तित्व विशाल

था, फिर भी उसके विरोधियों का दल चिरकाल से उसकी हत्या का अवसर ढूँढ़ रहा था।

वह विरोधियों का व्यंग्य और अपशब्दों का प्रयोग बड़ी सरलता से सहन करता था। वह अपने युग का महान् दार्शनिक था।

एक बार हास्यनाटककार ऐरिस्टोफिनीज रंगमंच पर सुकरात की हँसी उड़ाने में व्यस्त था। उसने 'क्लाउड्स' नाम की एक रचना प्रस्तुत की, जिसमें एक दार्शनिक एक टोकरी में बैठकर अनर्गल वक्तव्य देता है। सुकरात भी वहाँ उपस्थित था, किन्तु अपनी हँसी उड़ायी जाती देखकर भी उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दर्शकों में से कुछ अनजान व्यक्ति व्यंग्य के वास्तविक पात्र को जानना चाहते थे, इसलिए सुकरात रंगमंच पर आकर स्वयं सबको अपना परिचय देने लगा। यह सुकरात पर पहला आक्रमण था। इसके बीस वर्ष बाद मेलिटस ने खुले रूप से उस पर अभियोग लगाया। उसके अभियोग में दो आरोप थे, पहला यह कि वह जनतन्त्र द्वारा स्वीकृत देवताओं को नहीं मानता और नये देवों की आराधना सिखाता है। दूसरा यह था कि वह एथेंस के युवकों को पथभ्रष्ट करता है। अन्त में निश्चित हुआ कि सुकरात को मृत्युदण्ड दिया जाय।

सुकरात एथेंस के मिथ्याविश्वासों और बहु देवों को हास्यास्पद समझता था। उसकी भिन्न-भिन्न वार्ताओं से यह ज्ञात होता है कि वह एक ईश्वर में विश्वास करता था। कुछ लोग उसके जीवन के उदाहरणों से उसे ईसाई दार्शनिकों की कोटि में रखते हैं। जब सुकरात के विरुद्ध किये गये षड्यन्त्र का पता चला तब उसके अनेक मित्रों ने उसके पक्ष से लड़ने की तैयारी की। सिलियास उस समय का सबसे समर्थ वक्ता था। उसने सुकरात को अपना तैयार किया हुआ भाषण दिया। उसमें उसने सुकरात के तर्कों और सिद्धान्तों को बड़े सबल ढंग से प्रस्तुत किया था। बीच-बीच में उसमें ऐसी भावुकता भरी हुई थी कि वह किसी को भी द्रवित करने की शक्ति रखता था, किन्तु यह भाषण केवल भाषण-कला से युक्त था। उसमें एक दार्शनिकोचित सबलता का अभाव था। इसी लिए सुकरात ने उसे पसन्द नहीं किया। लिसियास के पूछने पर कि फिर कैसे भाषण से उसको सन्तोष हो सकता है, सुकरात ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया कि कोई कुशल शिल्पी मेरे लिए उत्तम सोने से मढ़ा हुआ जूता लाकर दे सकता है, पर यह सम्भव है कि वह मेरे पैर के लिए ठीक न हो। उसने किसी भी ऐसे साधन का उपयोग नहीं किया, जिससे लोग उस पर दया

करें और उस पर लगाये गये अभियोग को पृथक् छोड़ दें। उसने न्याया-धीशों के सम्मुख किसी प्रकार की प्रार्थना अथवा ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया, जिससे उनका हृदय द्रवित हो। उसने व्यक्तिगत रूप से अपने अभि-योग के विरोध में अपनी सफाई दी। उसमें पुरुषोचित साहस के साथ दार्शनिकोचित साधुता और नम्रता, पर विचारों की स्वतन्त्रता, भी थी। उसके भाषण का आभूषण केवल सत्य था।

अफलातून भी उस समय वहाँ उपस्थित था। उसने सुकरात के भाषण को उसी के शब्दों में प्रस्तुत किया था, जिसका शीर्षक उसने सुकरात की क्षमा-याचना दिया। यह प्राचीन सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है।

सुकरात ने अभियोग का उत्तर देते हुए कहा था—मुझ पर यह आरोप लगाया गया है कि मैं युवकों को भ्रष्ट कर रहा हूँ, उनमें भयंकर विचारों का प्रसार कर रहा हूँ, लेकिन एथेंस के लोग जानते हैं कि मेरा व्यापार शिक्षा देना नहीं है। चाहे लोग मुझसे कितना भी द्वेष करें किन्तु वे मुझ पर अपना ज्ञान बेचने का आरोप नहीं लगा सकते। इसका स्पष्ट प्रमाण मेरी निर्धनता ही है।.......ऐ एथेंस के निवासियो, मुझे दण्ड दो। मैं अपना विचार और आचरण नहीं बदल सकता....मुझ पर भयभीत होने का आरोप किया गया है, लेकिन मैं युद्धभूमि में लड़ा, असेम्बली में अकेले ही मैंने उन छः कप्तानों को दिये गये मृत्युदण्ड का विरोध किया.......

सुकरात ने दृढ़ता से और अबाध स्वर में अपना यह भाषण दिया। उसकी आकृति, क्रिया आदि से अभियुक्त का कोई भी लक्षण प्रकट नहीं हो रहा था। अपनी आत्मा की उच्चता के कारण वह अपने न्यायाधीशों का स्वामी प्रतीत होता था। भाषण में आरम्भ से अन्त तक सुकरात ने दार्शनिकोचित नम्रता का प्रमाण दिया। लेकिन सुकरात का भाषण युक्ति-युक्त तर्कों के औचित्य से पूर्ण था। इस पर भी उसका विरोधी दल उसकी हत्या के लिए तुला हुआ था। सुकरात में हर समय और हर किसी के अत्याचार और अन्याय का विरोध करने की जो प्रवृत्ति थी, उससे बहुतों में उसके प्रति द्वेष और दुर्भावना जाग्रत हो गई थी।

सुकरात ने अत्यन्त शान्त रूप से अपने दण्ड की आज्ञा सुनी। उसका एक शिष्य आपोलोडोरस अत्यन्त क्रुद्ध होकर गाली देने लगा और वह रोकर कहने लगा—मेरा स्वामी 'निरपराध होकर भी' मृत्युदण्ड पा रहा है।

इस पर सुकरात ने कहा—क्या तुम अपराधी के रूप में मेरी हत्या होते देखना चाहते थे?

मृत्युदण्ड के पश्चात् भी सुकरात उसी दृढ़ता और विश्वास के साथ अत्याचारियों पर आतंक जमाये रहा। मृत्युदण्ड से पहिले एक महीने तक वह जेल में था। वहाँ भी उसके मित्र और अनुगामी उससे बराबर मिलते रहते थे।

सुकरात जब जेल में था, एक दिन कोई संगीतज्ञ वंशी की ध्वनि पर गीतात्मक कविता गा रहा था। उसने उसे सुनकर उससे अनुरोध किया कि वह उसे भी वह गीत सिखा दे, जिससे वह उस 'अनन्त-गान' में विलीन होने के पहले गा सके।

संगीतज्ञ ने उत्सुकता से पूछा—एक मरणशील व्यक्ति के लिए इसकी क्या आवश्यकता है?

सुकरात ने उत्तर दिया—इसलिए कि मैं सौन्दर्यमय ज्ञान को लेकर जीवन से विदा होऊँ।

मृत्यु के दिन सुकरात अपने मित्रों से बातचीत करता रहा। वार्ता का विषय आत्मा की अमरता था। अफलातून का कथनोपकथन 'फीडन' सुकरात की इस वार्ता का परिणाम है।

अफलातून

(४२७–३४७ ईसा पूर्व)

अफलातून सुकरात का सबसे प्रमुख शिष्य था। उसका जन्म उसी वर्ष हुआ जिस वर्ष पेलोपोनेसियन युद्ध छिड़ा था। वह एथेंस के एक प्रसिद्ध और सम्पन्न परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसकी शिक्षा उसके उच्च परिवार के अनुकूल ही हुई थी। काव्य और रेखागणित से उसका मस्तिष्क विकसित हुआ, उसे न्याय-बुद्धि और कल्पना मिली। बीस वर्ष की अवस्था में सुकरात से उसका परिचय हुआ। काव्यक्षेत्र को छोड़कर वह दर्शन की ओर आकृष्ट हुआ। आठ वर्ष तक वह सुकरात का अध्ययनशील श्रोता बना रहा। इसके पश्चात् कुछ समय तक वह 'मैगना ग्रेसिया' आदि नगरों में, ज्ञान की खोज में, भ्रमण करता रहा।

अफलातून एक बार अपने मित्र और शिष्य डीयन के आग्रह पर डायोनिसियस से मिलने गया। पहले ज्ञान की चर्चा होती रही, फिर न्याय का

विषय छिड़ा। अफलातून ने न्यायी की प्रसन्नता और अन्यायी की विकृत अवस्था पर प्रकाश डाला। डायोनिसियस स्तब्ध रह गया। इस सम्बन्ध में वह एक शब्द भी न बोल सका। अन्त में झुँझलाकर उसने अफलातून से पूछा कि यहाँ सिसली में आने का उसका क्या उद्देश्य है?

अफलातून ने उत्तर दिया––मैं यहाँ एक ईमानदार पुरुष की खोज में आया हूँ।

इस पर डायोनिसियस ने कहा—तब ऐसा प्रकट होता है कि तुम्हारा परिश्रम सार्थक नहीं हुआ।

डीयन ने समझा कि उसका क्रोध यहीं तक शांत हो जायगा; किन्तु जब अफलातून वहाँ से चला गया, तब डायोनिसियस ने पोलिस को बुलाकर आज्ञा दी। उसने कहा––इस दार्शनिक का सिद्धान्त है कि सच्चा आदमी किसी भी स्थिति में सुखी रहता है, इसलिए यूनान जाते समय मार्ग में ही उसकी हत्या कर देना अथवा दास के रूप में उसे बेच देना। आदेशानुसार पोलिस ने वैसा ही किया। उसने अफलातून को एजिना में बेच दिया। अफलातून उस स्थिति में भी कुछ समय तक सन्तुष्ट और प्रसन्न रहा।

अफलातून जब एथेंस लौटा, उस समय देश की स्थिति बदल गई थी। यूनानी जनता आलसी और निष्क्रिय हो गई थी। अब वह समय नहीं रह गया था कि कोई व्यक्ति अपने विचारों का प्रचार कर कोई क्रान्ति उपस्थित कर दे। इसलिए अफलातून ने एक बगीचा खरीदा और वहीं लोग आकर उससे शिक्षा लेने लगे। वह निरन्तर चालीस वर्षों तक वहाँ रहकर अपने शिष्यों को शिक्षा देता रहा। बीच में केवल उसने सिसिली की यात्रा की। वहाँ कुछ समय रहकर उसने 'डायलॉग' की रचना की, जिसके लिए प्राचीन और अर्वाचीन दार्शनिक उसके ऋणी थे और हैं।

अफलातून की इन रचनाओं के पढ़ने पर उसके और उसके गुरु सुकरात के सिद्धान्तों का परिचय मिलता है। अफलातून की रचनाएँ दार्शनिक दृष्टि से गूढ़ होते हुए भी आकर्षक हैं। उसकी रचना-शैली इतनी प्रभावशाली है कि पढ़ते समय उपन्यास जैसा रोचक प्रतीत होता है। उसका चरित्र-चित्रण और घटना-क्रम इतना सजीव है कि आँखों के सम्मुख वह सब दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि दार्शनिक विचारों के अतिरिक्त उसने साहित्य में भी उन्नत शैली और प्रणाली प्रस्तुत की थी। मेरा तो अनुमान है कि आगे के लेखकों को उपन्यास प्रस्तुत करने में अफलातून की रचनाओं से बहुत कुछ प्रेरणा मिली होगी।

अफलातून का दर्शन सम्पूर्ण विज्ञान से सम्बद्ध है। उसके पूर्व के विद्वान् कुछ ही विषयों पर विचार करते थे। अफलातून के विचार से विज्ञान, प्राकृतिक और नैतिक, दो भागों में विभक्त हो चुका था, जिसको वह दैवी और मानवी कहता था। तर्क का उदय हो चुका था। इसके आधार पर न केवल उसने नैतिक और राजनीतिक विचारों को परिवर्तित किया अपितु प्राचीन धर्मशास्त्रों को भी परिवर्तित कर दिया था।

अफलातून के 'डायलॉग' में इतने विषय आ चुके हैं कि संक्षेप में उनकी पूरी व्याख्या करना कठिन है। कहीं-कहीं तो उसके और उसके गुरु सुकरात के विचारों में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। प्रश्नकर्ताओं की संख्या इतनी अधिक है कि कुछ प्रश्नों और उनके उत्तरों को लेकर कुछ स्थिर करना कठिन हो जाता है। लेकिन जेनोफोन के ग्रन्थों से अफलातून के विचारों से सुकरात के विचारों को पृथक् करना सरल हो सकता है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि अफलातून का उद्देश्य प्राकृतिक और नैतिक शक्तियों का एक ऐसी सरकार के साथ समझौता करना था, जो स्वयं खड़ी हो और एक अपरिवर्तनीय उद्देश्य लिये हुए हो। अफलातून मानव मस्तिष्क का उद्भव और उसकी प्रकृति को समझना चाहता था। साथ ही वह मानव मस्तिष्क की विभिन्न शक्तियों—यथा, इच्छा और ज्ञान शक्ति—की व्याख्या करना चाहता था और इस प्रकार वह एक ऐसी नैतिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता था कि मनुष्य न केवल इस जीवन में पूर्णता और सुख प्राप्त करे अपितु वह भावी जीवन में भी सुखी रह सके।

अफलातून कहता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है, विनष्ट होती है, और फिर उसके स्थान पर दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। समय पर उसमें भी क्रान्ति होती है। एक वस्तु दूसरी को गतिमान् करती है, दूसरी तीसरी को, पर गति का प्रथम कारण इनमें से किसी एक में नहीं होता। नक्षत्रों की नियमित क्रिया, ऋतुओं का सुन्दर क्रम, स्थावर और जंगमों की प्रशंसनीय रचना, एक रचयिता का संकेत करती है। इस दिव्य-शक्ति का पता लगाना कठिन है और शब्दों से उसका वर्णन असम्भव है, लेकिन उसकी रचनाओं से उसकी शक्ति, ज्ञान और कृपालुता का प्रमाण प्रस्तुत होता है।

अपनी कृपालुता के कारण इस 'देव' ने सभी सम्भव जीवों की रचना की और सनातन काल के लिए यह एक अनियमित गति से नियन्त्रित रहेगी। इस सिद्धान्त को अफलातून ने संसार का असंगत दुर्गुण कहा है।

इसके प्रमाण-स्वरूप उसके सामने प्रकृति के भिन्न-भिन्न उलट-फेर वर्त्तमान थे। मनुष्य की वासनाओं, उसके शारीरिक और नैतिक दुर्गुणों, को वह प्रकृति का अनिवार्य तत्त्व समझता था और उसके अनुसार इनको सदा के लिए उन्मूलित करना असम्भव था।

अफलातून के काल्पनिक सिद्धान्त के अनुसार इन अपरिष्कृत तत्त्वों से ईश्वर ने चार तत्त्वों की सृष्टि की। उसने आकाश और पृथिवी का निर्माण किया। सभी वस्तुओं की सृष्टि कर ईश्वर ने बौद्धिक दुर्गुण भी उत्पन्न किया। सूर्य, चन्द्रमा और दूसरी दिव्य शक्तियों की रचना करने के बाद उसने अदृश्य देवों और दानवों की सृष्टि की। इन देव-दानवों की प्रकृति का वर्णन अफलातून बड़ी श्रद्धा के साथ करता है और इस वर्णन को अपने देश के लिए एक धर्म के रूप में वह स्वीकार कराना चाहता है। इसके बाद देवों के देव, ईश्वर ने तीन प्रकार के जीवों (जल, स्थल और नभ के जीवों) की सृष्टि की। मनुष्य का दुर्गुण, जगत् के बौद्धिक दुर्गुण से ईश्वर ने बनाया। पहले तो दुर्गुण दानवों के रूप में रहे और इन्हें सूक्ष्म शरीर प्राप्त थे। लेकिन ये अपने कर्त्तव्य से च्युत हुए और ईश्वर ने इन्हें दण्ड स्वरूप स्थूल शरीर दिये और इन्हें शाप दिया कि वे अपनी दैवी शक्ति का उपयोग न कर सकें। अफलातून का दर्शन काल्पनिक है।

आदर्श स्वरूपों और मानव-मस्तिष्क की आदिम अवस्था अफलातून के दर्शन के स्तम्भ हैं। अपने कर्त्तव्य-पालन से च्युत होने से पहले मनुष्य को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी और वह अपने 'कर्त्ता' के रूप का दर्शन कर सकता था, पर बाद में वह संसार की वस्तुओं से ठगा जाकर अपने कर्त्तव्य से च्युत हुआ और तभी से उसकी दिव्यता जाती रही। मनुष्य चाहे कितना भी गिर जाय, ईश्वर की दृष्टि से वह ओझल नहीं होता। ईश्वर अपनी उच्चतम और निम्नतम रचना पर दृष्टि रखता और उसे नियंत्रित करता है। अपना कर्त्तव्यपालन करके ही मनुष्य पुनः अपने 'कर्त्ता' की कृपा प्राप्त कर सकता है। यह भ्रान्त धारणा है कि ईश्वर बड़े-बड़े उपहारों से प्रसन्न होता है। धर्म कोई व्यापार की वस्तु नहीं। हम देवताओं को उनकी दी हुई वस्तुओं के अतिरिक्त क्या दे सकते हैं? उनकी दी हुई वस्तुओं को उनको लौटाने के लिए क्या वे हमें धन्यवाद देंगे?

अफलातून के दर्शन का रहस्य नीचे लिखे वाक्यों में प्रकट होता है—

हमारी स्मृति में जो वस्तुएँ एकत्र हैं, उन्हीं के बाह्य रूपों का ज्ञान हमारी इन्द्रियों के द्वारा हमें प्राप्त होता है। इस ज्ञान से भिन्न-भिन्न रूप

से कल्पना सम्बद्ध रहती है। पूर्वज्ञान का उदाहरण देते हुए अफलातून मैनों के दासों का उल्लेख करता है, जिन्होंने सुकरात के पूछने पर उनकी संख्या और आँकड़ों के अनेक तथ्य स्मरण करके बताये थे, यद्यपि उन्हें गणित या ज्यामिति विज्ञान की शिक्षा नहीं प्राप्त थी। इस प्रकार अफलातून के अनुसार सभी विज्ञान स्मृति—प्रकृति की आदिम स्मृति—पर निर्भर करते हैं। उसका कथन है कि मनुष्य को भौतिक जगत् से बौद्धिक जगत् की ओर जाना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति इसी के मेल की है। इसी उद्देश्य की पूर्ति उसके दर्शन का उद्देश्य था।

इनमें से एक प्रकार की वासनाओं का सम्बन्ध अभिमान और उपेक्षा से है। इनका स्थान मनुष्य का हृदय है। दूसरे प्रकार की वासनाएँ सुख प्राप्त करने की इच्छा से सम्बद्ध हैं। इनका स्थान शरीर का निम्नतम भाग, उदर है। ये दोनों ही घातक हैं। यदि इन पर उचित नियंत्रण न होगा तो मनुष्य-रूपी जन-तन्त्र अव्यवस्थित और दुःखपूर्ण हो जायगा।

अफलातून के अनुसार उक्त दोनों प्रकार की भावनाएँ, मनुष्य की शरीर-रचना के लिए, आवश्यक हैं। यदि इनको नियंत्रित कर लिया जाय तो ये अच्छी वस्तु बन सकती हैं। मनुष्य की प्रकृति में प्रतिकूल तत्त्व रहते हैं और वह जागरूक होकर दुःख और विपत्ति से बचता है। जब मनुष्य शरीर की आवश्यकता से अधिक इन्द्रिय-सुख में लीन हो गया तब तप आदि का प्रचलन हुआ है। न्याय का जन्म उस समय हुआ जब तर्क नियामक था और वासनाएँ नियन्त्रित थीं। शासन करने की शक्ति में बुद्धिमत्ता का गुण अन्तर्निहित था। बुद्धि और ज्ञान का प्रयोग करता हुआ मनुष्य अपने कर्ता की भाँति हो गया था और वह समझ गया था कि उसका वास्तविक उद्देश्य क्या होना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य मस्तिष्क को शरीर की तुलना में रख सकता है, इस प्रकार वह असीम को ससीम और धर्म को इन्द्रिय-सुख की तुलना में रख सकता है। मस्तिष्क की इस अवस्था को प्राप्त किये बिना वह कभी सद्‌गुण और आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता।

अफलातून के अनुसार ज्ञान का मन्दिर ऐसी चट्टान पर है, जहाँ कुछ ही व्यक्ति पहुँच सकते हैं। इस सामर्थ्य-भिन्नता के कई कारण हैं। मानव-रचना के समय सबके मस्तिष्क समान रूप से सुविकसित और श्रेष्ठ नहीं थे। इसी प्रकार रचना-काल से पहले उनमें हिंसक प्रवृत्तियाँ भी नहीं थीं। मनुष्य-शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार से रचे गये हैं, कुछ सबल और दूसरे निर्बल। प्राचीन संस्थाओं और भिन्न-भिन्न उदाहरणों से मनुष्यों के बीच

मतभेद उत्पन्न हुए। वास्तव में शिक्षा और स्वभाव की शक्ति इतनी बड़ी है कि मनुष्य की भूलों और पापों का उत्तरदायित्व उस पर न होकर उसके माता-पिता, रक्षक और शिक्षक पर होना चाहिए। साथ ही कितनी ही अच्छी परिस्थितियाँ हों तो भी मस्तिष्क विकार की ओर प्रवृत्त होता है। इसलिए शरीर को निरन्तर व्यायाम आदि से पवित्र करना चाहिए और मस्तिष्क को दर्शन आदि के अध्ययन से निर्मल बनाना चाहिए। इसके बिना मनुष्य अपने स्वभाव के उच्चतम विकास तक नहीं पहुँच सकता, और पहुँच जाने पर भी, इसके बिना वह उस स्थान पर निश्चल रूप से ठहर नहीं सकता।

अफलातून ही प्रथम दार्शनिक है, जिसने पुर्नजन्म के सिद्धान्तों का समर्थन किया। इस सम्बन्ध के उसके तर्क इतने युक्ति-युक्त थे कि विचारशील विद्वानों पर भी उनका प्रभाव पड़ता था। मस्तिष्क के तत्त्वों की परीक्षा से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जिन तत्त्वों से ये बने हैं वे अत्यन्त सरल और अविनाशशील हैं। उसने मानसिक शक्ति पर इतना जोर दिया कि सिसरो और बफ्कन भी उससे आगे नहीं बढ़ सके। वह मनुष्य के दुर्गुणों को जीवन और गति के लिए आवश्यक समझता था, इसलिए वह इस बात को असंगत समझता था कि शारीरिक रोग और मृत्यु उसके स्वाभाविक गुणों को हर सकती है। वह समझता था कि मृत्यु के बाद जीव या तो उच्चावस्था को या निम्नावस्था को प्राप्त होता है।

इस पुनर्जन्म के विचार से आशान्वित होकर अफलातून ने एक उच्च कल्पना की और उसमें संसार के नाशवान् पदार्थों के प्रति वैसी घृणा न रही जो दूसरे दार्शनिकों में दिखाई पड़ती थी। उसने एक दोष-रहित 'राष्ट्र-मण्डल' की योजना निर्धारित की थी। अफलातून का सच्चा जनतन्त्र उसके कानून के ग्रन्थों में वर्णित है। उनमें उसने स्पष्ट रूप से समाज के आरम्भ और क्रान्तियों को समझाया है। उसने स्पार्टन आदर्श पर ही एक जनतन्त्र के निर्माण की योजना की थी।

अफलातून की व्यावहारिक नैतिकता, जिसे उसने सुकरात से प्राप्त किया था, उसके 'डायलॉग' में सब जगह बिखरी मिलती है। अफलातून ने अपने कुछ शिष्यों को आरकाडियन, एलियन और स्निडिन लोगों के आग्रह पर उनके जनतन्त्रों को सुधारने के लिए भेजा था। उसके ही एक शिष्य अरस्तू से सिकन्दर ने अच्छी सरकार के शासन की व्यवस्था करवानी चाही थी।

अरस्तू

(३८४–३२२ ईसा पूर्व)

अरस्तू की प्रसिद्धि विश्वविख्यात है। अफलातून के विचारों का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा था। ऊपर से अरस्तू उन विचारों को स्वीकार करने में हिचक दिखाता था; किन्तु वास्तव में हृदय में उसे उन विचारों से सन्तोष था।

सुकरात वास्तविकता के अधिक निकट था, किन्तु उसका शिष्य अफलातून इस वास्तविकता के साथ कल्पना को भी जोड़ देता था। सुकरात सत्य और प्रकृति के पथ से चला, पर उसका शिष्य कल्पनाओं के परों पर उड़कर अपने ही रचे हुए काल्पनिक जगत् में भ्रमण करता हुआ दिखाई पड़ता है।

अरस्तू का जन्म मक्दूनिया के एक प्रान्तीय नगर स्टागिरा में हुआ था। उसकी शिक्षा पेल्ला के दरबार में हुई थी। उसका पिता वहीं राज-चिकित्सक था। युवावस्था में वह एथेंस भेज दिया गया। यहाँ वह बीस वर्षों तक अफलातून का एक अध्ययनशील विद्यार्थी रहा। उस समय एथेंस में साहित्य और कला के अध्ययन में लोग बड़ी सफलता प्राप्त कर रहे थे। दार्शनिक अध्ययन भी खूब होता था।

राजा फिलिप ने अरस्तू की प्रतिभा का आदर किया और अपने होन-हार पुत्र सिकन्दर की शिक्षा का भार उसे सौंप दिया। इस प्रकार आठ वर्षों तक वह मक्दूनिया के दरबार में रहा। अरस्तू की शिक्षा से सिकन्दर का चाहे जो कुछ लाभ हुआ हो, पर अरस्तू को सिकन्दर की कृपा से प्रभूत सुविधाएँ प्राप्त थीं। सिकन्दर ही की कृपा से अरस्तू ने अपना एक निजी पुस्तकालय बनाया था, जो उसके और उसके बाद के युग में भी एक अद्भुत वस्तु बना रहा। कहा जाता है कि केवल मिस्र और परागा-मेनी राजाओं के पुस्तकालय ही उसकी तुलना में आ सकते थे।

सिकन्दर, अपनी युवावस्था में, अरस्तू का विशेष सम्मान करता था। वह अपने पिता से कम श्रद्धा उस पर नहीं करता था। उसका विश्वास था कि अपने पिता से उसने जीवन पाया है और अपने गुरु अरस्तू से ज्ञान प्राप्त किया है। सिकन्दर ने अपने गुरु की भक्ति के कारण स्टागिरा नगर का पुनः निर्माण कराया और फिर से उसे बसाया।

अरस्तू ने अपने जीवन के अन्तिम चौदह वर्षों का अधिकांश समय एथेंस में ही व्यतीत किया था। वहाँ उसे मनुष्यों और पुस्तकों से सभी प्रकार की सुविधाएँ मिलीं, जिसमें वह अपने दार्शनिक अन्वेषणों को आगे बढ़ा सका। सिकन्दर की अकालमृत्यु के पश्चात् अरस्तू के विरोध में पादरी और सूफी लोग उबल पड़े। एथेंस की मिथ्याविश्वासी जनता का क्रोध अरस्तू के विरुद्ध भड़क गया और सुकरात की हत्या के लिए उत्तर-दायी दुष्ट भावनाएँ अरस्तू के यश और उपलब्धियों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए प्रकट होती हुई दिखाई पड़ीं।

अरस्तू दण्ड से बचने के लिए चेलसिस प्रदेश में चला गया। उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा के विचार से उसका पलायन उचित हो सकता है, किन्तु वह स्वयं अपने भागने से हीन भाव का अनुभव कर रहा था। उसको छिपाने के लिए उसने यह तर्क दिया कि वह इसलिए वहाँ से चला गया, जिसमें एथेंसवालों को उसकी हत्या कर, दर्शन के विरुद्ध पापपूर्ण आचरण करने का पुनः अवसर न मिले। ऐसा जान पड़ता है कि भागने के कुछ ही मास बाद उसकी मृत्यु हो गई। चिन्ता और क्रोध ने मानों उसके जीवन का अन्त कर दिया था।

बकन कहता है—अरस्तू उन राजकुमारों की तरह सोचता था कि जब तक वह अपने सहयोगियों का नाश न कर दे, तब तक वह शान्ति-पूर्वक नहीं रह सकता। उसकी साहित्यिक उच्चाकांक्षा ऐसी थी कि वह सभी कलाओं और विज्ञानों के क्षेत्रों में फैल जाना चाहता था। वह भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के सभी रहस्यों को समझने का प्रयत्न करता था। बुद्धि की चरम सीमा तक पहुँचकर वह मानव बुद्धि से परे की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना चाहता था। वह बौद्धिक विवाद में युद्धोचित उत्साह के साथ पड़ जाता था, किन्तु उसके शत्रु फारसियों से अधिक दृढ़ थे, इस लिए वह उनको अभिभूत करने में अधिक सफल नहीं हो पाता था।

अरस्तू ने दर्शन को मनन और व्यवहार, ऐसे दो भागों में विभाजित किया। दर्शन के मनन या अरूप भाग को सबसे पहले उसी ने (मेटा-फिजिक्स) अध्यात्म नाम दिया था। उसके दर्शन का यह भाग सम्पूर्णतः रहस्यमय और कहीं-कहीं अज्ञातव्य है। वह उसके गुरु अफलातून के दर्शन से अपेक्षाकृत कम अमान्य है। उसके दर्शन के इस भाग में न केवल जीवन, गुण, तत्त्व, जन्म और जातियों पर ही विचार किया गया, अपितु मन और आत्मा, विशेषतः दिव्य-आत्मा के सम्बन्ध में भी विशद विचार

किया गया। मानव आत्मा के विषय में अरस्तू ने पृथक् रूप से विचार किया है। विद्वानों का कथन है कि इस सम्बन्ध में खोज करने पर ज्ञात होता है कि अरस्तू ने नया अन्वेषण न कर केवल नये नाम जोड़े हैं। अमरत्व के सिद्धान्त को अरस्तू ने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया है, जितना कि उसके गुरु अफलातून ने किया है।

अरस्तू के भौतिक दर्शन को अध्यात्म-दर्शन कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि उसमें भौतिक जगत् के सिद्धान्तों की सूक्ष्म बौद्धिक तत्त्वों से तुलना की गई है। उसमें सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव नहीं दिखाई पड़ता। जब वह किसी वस्तु के विस्तार में पहुँचता है तो नक्षत्रों की गति और उनके आकार-प्रकार के विषय में बहुत-सी ऐसी भूलें कर जाता है जो उसके पहले के दार्शनिकों ने नहीं की थीं। मनुष्य और पशु के शरीर-विज्ञान के विषय में उसका ज्ञान अधिक पूर्ण था। उस युग में अरस्तू के सम-सामयिक दूसरे दार्शनिक उक्त विषयों पर बहुत भ्रान्तिपूर्ण ज्ञान रखते थे। उस समय रसायन-शास्त्र की स्थापना नहीं हुई थी। बौद्धिक दर्शन के बाद प्रकृति का निरीक्षण प्रायः नहीं होता था। इसलिए यह असम्भव था कि प्राकृतिक निरीक्षण और परीक्षण हो। गणित में अरस्तू का ज्ञान अपने पूर्व के दार्शनिकों—यथा, अफलातून और पिथागोरस—से कम था।

अरस्तू को अपने समसामयिक पायरो और एरिस्टिक्स के सन्देहवाद से स्वभावतः सत्य की परीक्षा की सूक्ष्मता में जाना पड़ा। इस प्रकार उसने तर्क को उसके आदि तत्त्वों में परिणत करने का दुष्कर कार्य अपनाया। उसने एक ही स्वयंसिद्ध तथ्य पर प्रमाणों के द्वारा सम्पूर्ण सत्य को एक व्यवस्थित रूप में रखने में सफलता प्राप्त की। अरस्तू से पहले किसी ने ऐसे प्रयत्न में सफलता नहीं प्राप्त की थी। उसके स्वयंसिद्ध तथ्य के अनुसार जो एक जाति के विषय में ठीक है वह दूसरी जाति और उसके व्यक्तिगत अंग के बारे में भी ठीक हो सकता है।

कुछ आलोचकों का कथन है कि अरस्तू के रहस्यात्मक या अध्यात्म दर्शन के विषय में व्यर्थ उसकी बुद्धि का दुरुपयोग हुआ है, किन्तु उसके आलोचनात्मक और नैतिक, इनसे भी अधिक उसके राजनीतिक ग्रन्थों में अधिक सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि का दर्शन होता है। इसमें महत्त्वपूर्ण और आवश्यक वस्तुओं पर विचार किया गया है। अरस्तू के समय की स्थिति और उसकी अपनी सुविधा, उसकी प्राकृतिक देन और उद्योग बुद्धि ने उसे इतनी ख्याति दी कि वह अपने और अपने बाद के युग में भी स्मरण किया जाता है।

प्राचीन यूनान में विद्या और दर्शन की शिक्षा सर्वसाधारण को नहीं प्राप्त हो सकती थी। कुलीन और योग्य व्यक्ति ही अधिकारी समझे जाते थे। उसका एक उदाहरण यह मिलता है कि अरस्तू ने गम्भीर विषय पर कुछ पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें गम्भीरतापूर्वक जटिल प्रश्नों को सुलझाया गया था। उस विषय का रहस्य उस युग के अध्ययनशील शिक्षार्थियों को भी नहीं बताया जाता था। सिकन्दर उस समय एशिया में था और उसको यह सूचना मिली थी कि अरस्तू ने इस गूढ़ विषय को सर्वसाधारण की शिक्षा के लिए उपस्थित किया है।

सिकन्दर ने अरस्तू के नाम एक पत्र भेजा, उसमें उसने लिखा--- विज्ञान के एक्रोएमिटिक भाग को प्रकाशित कर आपने बुरा किया। यदि मुझे दी हुई शिक्षा सर्वसाधारण को मिल जायगी तो मुझमें विशेषता क्या रह जायगी! जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने शक्ति और राज्यों पर अधिकार करने से अधिक, ज्ञान के प्रमुख भागों में अधिकांश मनुष्यों से अधिक विशेषता प्राप्त कर ली है।

अरस्तू ने उत्तर में कहा कि उस ज्ञान के कुछ भाग प्रकाशित हुए हैं, कुछ नहीं। वास्तव में उसके अध्यात्म-शास्त्र की वह पुस्तक इस प्रकार लिखी गई है कि न कोई उसे पढ़ सकता है, न पढ़ा सकता है। वह केवल उन लोगों की स्मृति को जागरित करने का काम करती है, जिन्होंने गुरु से उस विषय की शिक्षा प्राप्त कर ली हो।

वर्जिल

(७० ईसा पूर्व–१९ ई०)

महाकवि वर्जिल का लैटिन में पूरा नाम पब्लियस वर्जिलियस मारो था। उसके जन्मस्थान का नाम एनडेज था जो इटाली के मानटुआ नामक छोटे नगर से बहुत दूर नहीं था। उसका पिता खेती करता था और मधुमक्खी पालने का व्यवसाय भी करता था। उसने अपने पुत्र की शिक्षा पर विशेष ध्यान रक्खा। वर्जिल की आरम्भिक शिक्षा क्रेमोना और मिलान नगरों में हुई थी। जब उसकी अवस्था १७ वर्ष की हुई तब उसके पिता ने उसे उच्च शिक्षा के लिए रोम भेज दिया। विश्वविद्यालय में, आरम्भ में, वह वक्तृत्व-कला की शिक्षा ग्रहण कर रहा था। उसका पिता चाहता था कि उसका पुत्र भविष्य में एक कुशल राजनीतिज्ञ और वकील बने; किन्तु वर्जिल की उस ओर रुचि न थी। वह दर्शनशास्त्र की ओर प्रवृत्त हुआ और कुछ वर्षों तक उसने एपिक्यूरस मतानुयायी दार्शनिक सिरो से शिक्षा ग्रहण की। सिरो उस समय के धनी और उच्चाकांक्षी युवकों में प्रसिद्ध था। उसी के सत्संग में वर्जिल ने भविष्य के राजनीतिक और दार्शनिक नेताओं से परिचय प्राप्त किया था।

वर्जिल बड़ी लज्जाशील प्रकृति का व्यक्ति था। इसी कारण कुछ लोग उसे 'कुमारी पारथिनियास' के नाम से पुकारते थे। वह बिरले ही मार्ग में जाता दिखाई पड़ता था, किन्तु जब कभी वह निकलता तब लोग उसके पीछे चल पड़ते और वह अपनी लज्जालु प्रकृति के कारण आस-पास के घरों में घुसकर छिप जाता था। वह ओगस्टस की मंडली और जनता में उतना ही विख्यात था, जितनी आजकल की सिनेमा-तारिकाएँ हैं।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि ऐसी प्रकृति वाले व्यक्ति को ईसाई धर्मावलम्बियों ने महात्मा, चामत्कारिक और सिद्ध पुरुष की भाँति सम्बोधित किया। तेरहवीं शताब्दी में महाकवि दान्ते ने वर्जिल को अपना गुरु और पथप्रदर्शक माना। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य-समालोचक, कवि तथा विद्वानों ने एक स्वर से वर्जिल को रोम का सर्वोत्कृष्ट कवि स्वीकार किया। महाकवि वर्जिल की गणना योरोप के पंच महाकवियों में होती है।

कहा जाता है कि वर्जिल ने अपनी कविता में एक बालक के जन्म लेने तथा उसे शान्ति-युग का संस्थापक होने की भविष्यवाणी की थी। इस कथा की व्याख्या कर लोगों की यह धारणा हुई कि वर्जिल ने महात्मा ईसा के प्रादुर्भूत होने की पूर्वसूचना दी थी। पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि ऐसे समय में, जब कि सत्साहित्य के समालोचन की प्रणाली प्रचलित न थी उस समय भी, वर्जिल की महाकवि के रूप में प्रसिद्धि का प्रधान कारण उसकी उक्त भविष्यवाणी की धार्मिक भावना ही थी, जो सर्व-साधारण के मन में प्रविष्ट हो गई थी। वर्जिल की मृत्यु के उन्नीस वर्ष बाद महात्मा ईसा का जन्म हुआ था।

आरम्भ में वर्जिल ने रोम का इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। उसने देखा कि इस सम्बन्ध में उसका ज्ञान अत्यल्प है, अतएव उसने ग्राम्य विषयों पर कविता लिखना आरम्भ किया। उसकी प्रथम महत्त्वपूर्ण कृति 'एक्लोग्स' अथवा 'ब्यकोलिक्स' है। इस रचना के सम्बन्ध में कुछ कहने से पहले वर्जिल के समय की स्थिति से परिचित होना आवश्यक है। अपनी रचनाओं में वर्जिल ने तत्कालीन कुछ ही घटनाओं का उल्लेख किया है। जिस समय उसने मिनसियस और आल्प्स् की पहाड़ियों का दर्शन किया, उस समय के इटली के धनिक वर्गों का शासन, जो रिपब्लिक के नाम से प्रसिद्ध था, पतनाभिमुख था। उसके दूसरे दशक में, जुलियस सीजर गोल में युद्ध करते हुए, रोम में अपने ऐतिहासिक अभियान करने के लिए तैयार हो रहा था। पाँच वर्ष बाद, सत्ता प्राप्त करने पर, जब सीजर की हत्या हुई, तब वहाँ का गृहयुद्ध बन्द होने की अपेक्षा अधिक बढ़ गया। उस समय वर्जिल की अवस्था छब्बीस वर्ष की थी। जुलियस के दत्तक पुत्र ओक्टेवियन को अपने पिता के हत्यारों को, उसके बाद अपने ही साथी और विरोधी एन्टोनी को अभिभूत करने के लिए तेरह वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा था। ऐक्टियम के युद्ध (ई० पू० ३१) ने एन्टोनी के भाग्य

का निपटारा कर दिया और ओक्टेवियन के क्रूर शासन ने रोम में शान्ति स्थापित की थी। ई० पू० २७ में ओक्टेवियन ने अपने को 'प्रिंसेप्स' (सर्व-श्रेष्ठ नेता) घोषित किया और ओगस्टस की पदवी धारण की। हम उसे इसी नाम से रोम के प्रथम सम्राट् के रूप में जानते हैं।

इन विनाशकारी घटनाओं के प्रति वर्जिल की प्रतिक्रिया एक दार्शनिक और कवि की प्रतिक्रिया थी, राजनीतिज्ञ और पार्टी विशेष के समर्थक की प्रतिक्रिया नहीं थी। जुलियस सीजर के व्यक्तित्व के प्रति वह आकृष्ट था और उसके बाद ओक्टेवियन की प्रगति का वह ध्यान से अध्ययन कर रहा था।

वर्जिल अपने वीरों की पूजा विजेता या मनुष्य के रूप में नहीं करता है। वह समझता है कि ईश्वर ने उन दैवी शक्तियों को भेजकर अशान्त संसार में सुख और शान्ति की स्थापना की। वह युद्ध का भयानक वर्णन करता है। 'एक्लोग्स' में वह दो बार ऐसी लेखनी की निन्दा करता है, जो युद्ध के वर्णन में लगी हो।

वर्जिल ने यूनानी ग्राम्यगीत को लैटिनी-जगत् के साथ में प्रस्तुत किया। उसके ग्राम्यचित्र असामयिक या केवल काल्पनिक नहीं थे। उनमें अशांति के समय में किसानों के संघर्षो और विपत्तियों के स्पष्ट चित्र अंकित हैं। इन बाह्य चित्रों के अंकन के साथ-साथ उसने तत्कालीन विख्यात पुरुषों का भी चित्रण किया है। वर्जिल ने मनुष्य, वृक्ष, वन्य पशु और पर्वतों में सामंजस्य का दर्शन किया है। प्रकृति और मनुष्य तत्त्वतः एक हैं, किन्तु राजनीति और युद्ध मनुष्य को प्रकृति से, वास्तविकता से, पृथक् कर देते हैं। केवल गड़ेरिये और उसकी भेड़ें ही प्रकृति के प्रेम और उसके विश्वास के पात्र हैं। वे ही वनों का संगीत और देवदार के वृक्षों की भाषा को समझ सकते हैं। वर्जिल ने एक शिशु की भाँति इन लोगों की वाणी सुनी है। वह कहता है कि इस जड़ कहलानेवाले जगत् में संवेदनशीलता है। यहाँ की चट्टानों से संगीत और खेतों से वाणी गूँज उठती है। यहाँ वंशी ही वंशीवाले को सुर सिखाती है। भेड़ें, प्रेमी की सहानुभूति में, मौन खड़ी दिखाई पड़ती हैं और परियों को अपने क्रूर कृत्यों के लिए उलाहने मिलते हैं।

कवि इन दृश्यों को केवल शृङ्गार के आनन्द के लिए नहीं वर्णन करता, किन्तु इसलिए कि लोग उसकी रचनाओं के माध्यम से उद्घाटित किये हुए जगत् को यथार्थ रूप में देखें। कवि का सत्य केवल श्रद्धा की

वस्तु नहीं है, उसमें वृक्षों और चट्टानों को द्रवित करने की शक्ति है। वर्जिल के दृष्टिकोण में एक ऐसा दर्शन है, जिसका आधुनिक दर्शन भी उपेक्षा नहीं कर सकता।

वर्जिल की दूसरी प्रतिभापूर्ण कृति 'जिओर्जिक्स' है। इसमें भी किसानों, खेतों, पशुओं और वृक्षों का संगीत है। वर्जिल को ग्रामीण जीवन से अत्यधिक प्रेम था और इस सम्बन्ध में उसकी निकट तथा प्रत्यक्ष अनुभूति थी। वह मन्द गति से कार्य करता रहा। वह अपनी रचनाओं को प्रकट करने में अत्यन्त लज्जालु था। अपने मित्रों के विशेष आग्रह पर ही उसने अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराईं। ओक्टेवियन के मंत्री, मीसेनास ने उसे उसकी दूसरी कृति 'जिओर्जिक्स' प्रकाशित करने के लिए बहुत प्रोत्साहित किया था। वर्जिल की अवस्था ३१ वर्ष की हो चुकी थी, जब उसकी रचनाएं जनता के सम्मुख आईं। उसकी कविताएँ प्रायः सभाओं में पढ़ी या गायी जाती थीं। उसका यश पूर्णतः स्थापित हो चुका था। कवि अपनी रचनाओं की सफलता से अत्यन्त अभिभूत सा था। कहते हैं कि रोम के शासक के समान महाकवि वर्जिल की भी जय मनायी जाती थी। वर्जिल काव्य के देवता की आराधना करता था कि वह उसके कण्ठ में आकर बसे।

वर्जिल की तीसरी रचना 'इनियड' महाकाव्य है। उस समय कवि की अवस्था चालीस वर्ष की थी। वह रोम नगर में आया था। उसने अपने मित्रों को यह सन्देश दिया कि वह एक ऐसा महाकाव्य लिख रहा है, जो पूर्ण हो जाने पर लैटिन साहित्य में वही स्थान प्राप्त करेगा जो यूनानी साहित्य में इलियड ने प्राप्त किया है। उस महाकाव्य का नायक इनियास होनेवाला था जो वेनस और आचिनीज का पुत्र था। उसमें ट्राय के पतन के पश्चात् इनियास के भटकने की कथा लिखी जानेवाली थी। किस प्रकार इनियास कार्थेज की रानी डिडो के दरबार में पहुँचा था। उसकी इटली की यात्रा, टरनस के साथ उसका युद्ध, लावेनिया से विवाह, रोम का निर्माण, विकास और विजय, इन सभी विषयों का वर्णन उसके महाकाव्य में होनेवाला था।

निरन्तर दस वर्षों तक वर्जिल इस महाकाव्य को लिखता रहा। उसे इतना अवकाश भी नहीं मिला कि वह उसका संशोधन कर सके। वर्जिल की इस रचना का किसी ने दर्शन नहीं किया था, फिर भी सबको उसके विषय में बड़ी उत्सुकता थी। एक बार वर्जिल ने प्रोपर्टियस नामक कवि को

उसका कुछ भाग दिखाया। उसने यह बात फैला दी कि वर्जिल एक ऐसा महाकाव्य लिख रहा है, जिसका इलियड से भी अधिक महत्त्व हो सकता है। ओगस्टस ने भी यह समाचार सुना। उसे अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। उसने वर्जिल के पास पत्र लिखकर आग्रह किया कि वह उसे सुनना चाहता है। वर्जिल ने उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। उसके अनेक पत्रों के उत्तर में वर्जिल ने लिखा—आपके कई पत्र मिले। मेरा लिखा 'इनियड' यदि आपको सुनाने के योग्य होता तो मैं उसे अवश्य आपको सुनाता। यह कार्य इतना विशाल है कि इसमें बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसे आरम्भ करने के पहले मैंने पर्याप्त विचार नहीं किया था।

एक वर्ष बाद जब ओगस्टस युद्ध से लौटा, तब वर्जिल अपने महाकाव्य का कुछ भाग लेकर राजमहल में पहुँचा। उस समय ओगस्टस की बहिन ओक्टेविया भी वहाँ उपस्थित थी। वर्जिल अपने मधुर कण्ठ से 'इनियड' की पंक्तियाँ सुना रहा था। उसके वर्णन में ओगस्टस के पूर्व-पुरुषों का इतिहास था। ओक्टेविया का पुत्र मार्सेलस का देहान्त कुछ समय पूर्व हुआ था। ओगस्टस ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। वह अत्यन्त उन्नतिशील प्रकृति का युवक था। उसकी मृत्यु केवल अठारह वर्ष की अवस्था में हुई थी। वर्जिल के इस महाकाव्य के छठे भाग में मार्सेलस की मृत्यु का वर्णन था। उस अंश तक पहुँचते ही कवि की वाणी शक्तिशालिनी होनेपर भी इतनी कोमल हो गई कि ओक्टे-विया सुनकर संज्ञाहीन हो गई। शोकाकुल माता की आँखों के सम्मुख अपने प्रिय पुत्र की आकृति अंकित हो उठी थी। कवि का स्वर रुद्ध हो गया था।

चेतना होने पर मुग्ध होकर ओक्टोविया ने वर्जिल को पुरस्कार दिया था। कहते हैं कि स्वर्णमुद्राओं की एक बड़ी निधि कवि को प्राप्त हुई थी।

इनियड समाप्त करने पर वर्जिल की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। उसे अपने एक मित्र की उदारता से दस लाख स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई थी और रोम में उसका निजी एक गृह भी था। उसके जीवन में अर्थाभाव का कोई प्रश्न नहीं था। वह अधिकतर केम्पेनिया और सिसली में ही रहा करता था।

वर्जिल को धन और सम्पत्ति के प्रति तनिक भी प्रलोभन न था। एक बार ओगस्टस उसे एक निष्कासित धनिक की सम्पत्ति देने लगा; किन्तु उसने उसे अस्वीकार कर दिया। उसकी आँखों के सम्मुख वही चित्र

उपस्थित हो गया, जब इसी तरह उसकी भी समस्त सम्पत्ति ओगस्टस द्वारा जब्त कर ली गई थी। बाद में फिर वह उसे प्राप्त हो गई थी।

वर्जिल अपना महाकाव्य पहले गद्य मे लिखता था फिर उसे पद्य में परिवर्त्तित कर देता था। उसने सम्भवतः 'इनियड' की रचना एक हार्दिक मित्र के आनन्द की दृष्टि से की थी। वह एक ऐसे मानव और दिव्य अंशों से युक्त एक राजकुमार की सृष्टि करना चाहता था, जिस पर वह गर्व कर सके।

महाकवि ने जब इनियड समाप्त किया, उस समय उसकी अवस्था पचास वर्ष की थी। उसने निश्चय किया कि एथेंस जाकर वह तीन वर्ष वहीं व्यतीत करेगा और वहीं निश्चिन्त होकर अपने महाकाव्य का संशोधन करेगा। लेकिन वहाँ कुछ ही महीने व्यतीत हुए थे कि ओगस्टस अपने पूर्वी राज्य से इटली लौटते समय उधर से गुजरा और वर्जिल से उसने आग्रह किया कि वह भी उसके साथ रोम चले।

वर्जिल का स्वास्थ्य उस समय समुद्र-यात्रा के लिए ठीक नहीं था, फिर भी उसने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मार्ग में ही उसे लू लग गई और तीव्र ज्वर के कारण ब्रिन्डसी पहुँचते ही उसका देहान्त हो गया।

मृत्यु के पहले वर्जिल ने अपने दो मित्रों को आदेश दिया था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् वे लोग 'इनियड' को जला देंगे क्योंकि उसकी वह रचना उस स्तर की नहीं हो सकी जैसी कि वह लिखना चाहता था।

ओगस्टस ने उसकी इस मृत्युकालीन इच्छा की अवहेलना की और उसने उन दोनों मित्रों को आदेश दिया कि वे इनियड का सम्पादन और संशोधन कर दें, किन्तु अपनी ओर से उसमें कुछ न जोड़ें। उन लोगों ने दूसरे भाग में से बाईस पंक्तियाँ काट दीं और दूसरे और चौथे भागों में स्थल-परिवर्तन कर दिया था, जहाँ इनियास और हेलेन का वर्णन था। वह स्थल परिवर्त्तन अब भी है, किन्तु उक्त कटी हुई पंक्तियाँ फिर से जोड़ दी गई थीं।

महाकवि वर्जिल जिस युग में उत्पन्न हुआ था, वह भयानक अत्याचारों का युग था। पूँजीपति निर्धनों पर आतंक जमाये थे। एक ओर विलासिता और व्यभिचार की चरम सीमा थी, दूसरी ओर जनता भूखी, नंगी, त्रस्त थी।

सम्राटों की विश्व-विजय की कामना का जैसे अन्त होनेवाला था। संसार में घोर अशान्ति और अन्याय का अन्त करने और मानवता को एक नूतन सन्देश देने के लिए महात्मा ईसा का जन्म होनेवाला था। वर्जिल की मृत्यु के १९ वर्षों के बाद ही ईसा का जन्म हुआ था।

यहाँ पर इनियड महाकाव्य की कथा का सारांश दे देना उचित होगा, क्योंकि आगे चलकर महाकवि दान्ते के महाकाव्य से भी इसका सम्बन्ध है।

इनियड की कथा

इनियास ट्राय का राजकुमार है। आनचिसीज और वेनस देवी के संयोग से उसकी उत्पत्ति हुई थी। ट्राय का पतन हो चुका था। इनियास अपने पिता और छोटे पुत्र तथा अनेक अनुगामियों के साथ भाग जाता है। इस भगदड़ में इनियास की स्त्री क्रेउसा कहीं लुप्त हो जाती है। उसका कुल-देवता पेनाटीज उसे आदेश देता है कि इटली में उसके भाग्य का निर्णय होगा। समुद्र पर बहुत भटकने के बाद राजकुमार के पिता का देहान्त हो जाता है। उसके अनेक जहाज जूनों के द्वेष के कारण दुर्घटना-ग्रस्त हो जाते हैं, लेकिन समुद्र देवता नेपचून की कृपा से उसके सात जहाज बच जाते हैं और वे अफ्रिका के समुद्र-तट पर लगते हैं। यहाँ कार्थेज की रानी डिडो ट्राय वालों का विशेष स्वागत करती है।

रानी ने अपने मृत पति के प्रति जो भक्ति की प्रतिज्ञा की थी, उसकी उपेक्षा कर वह इनियास के प्रेम में बँध जाती है। राजकुमार मर्क्यूरी के आदेशानुसार फिर इटली की यात्रा करता है। उस समय रानी डिडो आत्महत्या कर लेती है। इनियास सिसली पहुँचकर अपने मृत पिता आनचिसीज की श्राद्धक्रिया करता है और अपने कुछ अनुगामियों को वहाँ उपनिवेश बसाने के लिए छोड़ देता है। राजकुमार अपने शेष साथियों के साथ कूमे पहुँचता है। सिविल द्वारा पथ प्रदर्शित किये जाने पर वह हेडीज में उतरता है और वहाँ वह पापियों को दण्ड प्राप्त करते और पुण्यात्माओं को शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते देखता है। पुण्यात्माओं में वह अपने पिता से मिलता है, जो उसे बताता है कि वह रोमन जनता का पूर्व-पुरुष बनने वाला है, जो विश्व के साम्राज्य पर शासन करेगा। (यह वर्णन वर्जिल के महाकाव्य इनियड के छठे भाग में वर्णित है। यहीं से दान्ते ने अपने 'इन्फरनो' के लिए पर्याप्त भूगोल और यन्त्र सम्बन्धी सामग्री प्राप्त की थी।)

इसके बाद राजकुमार इनियास तिवर पहुँचकर फिर लेटियम में उतरता है। यहाँ पर दैववाणी होती है कि ट्राय वालों के भाग्य में लिखी हुई यात्रा यहाँ पर समाप्त होती है। उस देश का राजा लेटिनस राजकुमार का स्वागत करता है और अपनी लड़की लेविनिया का विवाह उससे कर देता है। पहले इस लड़की का विवाह रुतूली के राजकुमार टरनस से

निश्चित हुआ था। फ्यूरी एलेकटो की सहायता से जूनो ट्राय और लैटिन वालों के बीच युद्ध भड़का देता है और कई युद्धों के बाद, जिनमें दोनों ओर से मित्र-राष्ट्र सम्मिलित होते हैं, रुतूलियों की पराजय होती है। टरनस इनियास को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता है। अन्त में जूनो जुपिटर से समझौता कर लेता है कि इनियास इस शर्त पर विजेता होगा कि वह लेटियम का नाम नहीं परिवर्तित करेगा। इस प्रकार इनियास और लेविनीया के संयोग से ट्राय और लेटिन का मेल होता है और रोम नगर और साम्राज्य की आधार-शिला स्थापित हो जाती है।

इसमें सन्देह नहीं है कि वर्जिल ने होमर के महाकाव्य 'इलियड' से ही अपने महाकाव्य का सूत्र पाया था। लेकिन वर्जिल ने अपनी कल्पना और प्रतिभा का पूर्ण कौशल अपनी रचना में प्रदर्शित किया है। होमर के इलियड की उत्पत्ति आरम्भिक युग की वर्बरता की भूमि से हुई है और इनियड की उत्पत्ति उस युग में हुई थी जब सभ्यता अपने विकास में आगे बढ़ चुकी थी। कहा जाता है कि इनियास और डिडो की प्रेम-कहानी का अंकुर यूनानी कहानी जेसन और मेडिया से ही प्राप्त हुआ था, किन्तु लैटिन प्रेमी और यूनानी प्रेमी में बड़ा अन्तर है। यूनानी प्रकृति में जो भयानकता है, वह लैटिन में नहीं है। होमर ने इलियड में यूनानी जाति की वीरता की गाथा का इतिहास प्रस्तुत किया था और वर्जिल ने रोमन जाति के गौरव की गाथा एकत्र की थी। रोमन लोगों के इतिहास में उनके पूर्वपुरुषों का वीरतापूर्ण विवरण नहीं था। वर्जिल ने अपनी प्रतिभा से उसे इतना महत्त्वपूर्ण रूप दिया जो विश्व में उनकी जाति की गौरव-गाथा में अत्यन्त सहायक हुआ। वर्जिल ने इनियड की रचना रोमन जाति के गौरव के उद्देश्य से ही की थी। इलियड में मानव प्रकृति का स्पष्ट चित्रण है। इनियड में कवि की भावुकता और कल्पना का सजीव वर्णन है।

वर्जिल ने जिस विषय अथवा जिस अंग का वर्णन किया है, उसमें विशेषतः अपने व्यक्तिगत अनुभव और ज्ञान का ही आधार लिया है। रणक्षेत्र और साम्राज्यों के भाग्य-निर्माण के अतिरिक्त कवि की प्रतिभा अपने घरेलू जीवन के चारों ओर बिखरी रहती थी। वह शान्ति का उपासक था। होमर का एक सैनिक कभी भी शान्ति से विजेताओं के साथ नहीं रहता है। वर्जिल की काल्पनिक मूर्तियाँ मुक्ति की भावना में लीन एक अन्य परिचित संसार में क्षण भर शान्तिपूर्वक विश्राम कर सकती हैं। ट्रोजन सैनिकों के सम्मुख नगर द्वार प्रवेश करते समय यह चित्र सामने

अंकित होता है—चींटियाँ शरद्-ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा में इधर-उधर खेतों में नष्ट और बिखरे हुए अन्न को एकत्र कर अपने स्वर्णमय संग्रह से अपने घर को भर रही हैं।

वर्जिल की रचना में साधारण वस्तु के वर्णन से लेकर गूढ़ दार्शनिक तत्त्व भी भरे हैं। उन्हें खोजनेवाला चाहिए, जैसे महाकवि दान्ते ने उसके छठे भाग से अपने महाकाव्य का निर्माण किया और उसे अपना गुरु मानकर, उसके पथ-प्रदर्शन करने पर, नरक और स्वर्ग का वर्णन किया है।

दान्ते

(१२६५–१३२१ ई०)

दान्ते केवल इटली का ही सर्वश्रेष्ठ कवि नहीं हुआ, प्रत्युत उसकी गणना योरोप के पाँच महाकवियों में होती है।

दान्ते का जन्म इटली के फ्लोरेन्स नगर में हुआ था। यह नगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए योरोप में प्रख्यात है। दान्ते का परिवार 'गुएल्फ' था और उसे शुद्ध फ्लोरेन्स के निवासी होने का गर्व था। इस परिवार की अपनी जमीन और गृह-सम्पत्ति आदि भी थी। दान्ते के पिता कानून-विशारद थे और राजनीति में सक्रिय सहयोग करते थे। दान्ते के पिता की अभिलाषा थी कि वह अपने पुत्र को व्यवसायी न बनाकर साहित्य और कला की ओर प्रवृत्त करें।

दान्ते जब ५-६ वर्ष का था तभी उसकी माता का देहान्त हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में ही उसे पितृ-शोक मनाना पड़ा। दान्ते और उसके दो भाई सौतेली माँ के आश्रित छोड़ दिये गये।

दान्ते के बाल्यकाल में ही एक ऐसी घटना हुई, जिसका प्रभाव उसके जीवन पर पड़ा। यह प्रभाव इतना अमिट और चिरस्थायी हुआ कि आज भी वह दान्ते की रचनाओं में मिलता है। दान्ते की अवस्था जब नौ वर्ष की थी तब उसका पिता उसे एक मई त्योहार के अवसर पर अपने एक पडोसी के घर पर ले गया। पड़ोसी का नाम फोल्को-पोर्टनेरी था। उसकी एक आठ वर्ष की कन्या थी, जिसका नाम बियाट्रिस था।

इस भोज के अवसर पर दान्ते की दृष्टि उस बालिका पर पड़ी। उसके हृदय में सर्वप्रथम प्रेम की अखण्ड ज्योति आलोकित हो उठी। दान्ते उस समय केवल एक बालक ही था, किन्तु उसके अन्तरतम में बियाट्रिस की जो मूर्ति प्रतिष्ठित हुई, उसे वह जीवन पर्यन्त न विस्मृत कर सका।

उसे देखने पर दान्ते के हृदय में जो भावनाएँ उत्पन्न हुई, उसके सम्बन्ध में वह लिखता है—वह मुझे एक बहुत अच्छे रंग के कपड़े से सजी दिखाई पड़ी, बहुत अच्छा लाल रंग, जो उसकी अवस्था के अनुकूल था।

दान्ते कहता है—उस समय मेरा हृदय काँप गया और मैंने अपने आपसे कहा—लो, यह मुझसे अधिक शक्तिशाली है, यह मुझपर शासन करेगी।

दान्ते की आत्मा और उसकी बुद्धि आश्चर्य-चकित थी। बियाट्रिस उसकी आँखों से कहने लगी—लो, तुम्हारा आनन्द-स्रोत प्रकट हो गया।

बियाट्रिस का घर में प्यार से पुकारने का नाम 'बिसे' था। दान्ते के जीवनीकार बोकेच्चियो ने उसके सम्बन्ध में लिखा है—इस बालिका की आकृति इतनी असाधारण सौन्दर्य-सम्पन्न थी कि उसे सहज ही देवलोक की कन्या सम्बोधित किया जा सकता था।

दान्ते ने स्वयं अपनी प्रेम-कहानी कही है। उसमें कोई रोमांचकारी घटना नहीं है। जो महत्त्वपूर्ण घटना समझी जा सकती है, वह १२८७ ई० में साइमन डिबार्डी नाम के युवक से बियाट्रिस का विवाह है। जैसा कि वह स्वयं कहता है, उसका प्रेम अत्यन्त पवित्र था। विवाह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उन दिनों विवाह अधिकतर राजनीतिक सम्बन्ध के लिए किया जाता था।

दान्ते बियाट्रिस का दर्शन केवल इसलिए करना चाहता था कि उसे उसमें दिव्यता का दर्शन होता था। बियाट्रिस अठारह वर्ष की थी जब पहली बार वह मार्ग में दान्ते से मिली थी। उस समय उसने दान्ते का ऐसा शिष्ट अभिवादन किया कि दान्ते ने अपने को असीम आनन्द में मग्न पाया। दूसरी बार बियाट्रिस मिली और उसने उसका अभिवादन नहीं किया,

क्योंकि दान्ते को लेकर कुछ अफवाहें फैल गई थीं। यहीं पर दान्ते को यह अनुभव हुआ कि प्रेम में दुःख और सुख दोनों ही होते हैं। तीसरी बार किसी मित्र के यहाँ दान्ते और वियाट्रिस की भेंट हुई। दान्ते के अनुसार इस अवसर पर वियाट्रिस ने उसकी हँसी उड़ाई।

१२८९ ई० में फोल्को-पोर्टीनेरी की मृत्यु हो गई और अपनी प्रेमिका के शोक की सहानुभूति में दान्ते ने भी अश्रुपात किया। १२९० ई० में वियाट्रिस का देहान्त, चौबीस वर्ष की अवस्था में, हुआ। उस समय दान्ते को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी जीवन-ज्योति बुझ गयी, मानो सारा फ्लोरेन्स नगर उसके मरने से सूना हो गया।

दान्ते अल्पावस्था से ही वियाट्रिस के सम्बन्ध में गीत लिखने में व्यस्त था। उसने अपने अनुभवों से अपनी प्रेम की दृष्टि विकसित की और अत्यन्त मधुर शैली में अपने प्रेम के गीत गाये। दान्ते के पूर्व के 'दरबारी प्रेम' और उसके इन प्रेम-गीतों में स्पष्ट अन्तर है। दान्ते की सर्वप्रथम कृति का नाम 'विटा नु ओव्हा' (नवजीवन) है। इसकी रचना अठारह वर्ष की अवस्था में उसने की थी। १२९० ई० के पूर्व की उसकी कविताएँ प्रेमरस की हैं। इसके बाद की रचना प्रेमरसपूर्ण कविताओं से रहित है। अपनी प्रेमिका के निधन के एक वर्ष पर्यन्त दान्ते सभी कार्य त्याग कर शोकपूर्ण रचना में प्रवृत्त हुआ। आत्मविस्मृति के हेतु दान्ते का जीवन पूर्ववत् उच्च स्तर पर न रह सका। इस सम्बन्ध में उसने स्वयं लिखा है—तेरा वह मुख-मण्डल मृत्यु के आवरण में मेरे नेत्रों से दूर हो गया, इसलिए कुछ काल तक मैं संसार के तुच्छ सुख में निमग्न होकर तुझसे विलग हो गया था।

'नवजीवन' में कवि और वियाट्रिस के प्रेम का सम्पूर्ण इतिहास वर्णित है। बाल्यावस्था में पहले-पहल वियाट्रिस और उसके मिलन, उनमें प्रेम का बीजारोपण एवं विकास तथा स्वप्नावस्था में उसकी मृत्यु के चित्र अत्यन्त मार्मिक और सजीव हैं। इस कृति में उसने गद्य में अपने गीतों की व्याख्या भी की है।

युवावस्था में ही दान्ते ने प्रोवेंस की भाषा और साहित्य से परिचय प्राप्त कर लिया था। वह अपनी लैटिन भाषा को परिष्कृत करने लगा और अपना क्षेत्र विस्तृत करने लगा। उसने दर्शन, धर्मशास्त्र, विशेष कर ज्योतिष, प्राचीन काव्य आदि का अध्ययन किया। उसने अपने ढंग से सम-सामयिक रचनाओं का दर्शन-परीक्षण किया। वह बहुत पढ़ता था। उसकी एकाग्रता की शक्ति अद्भुत थी। यह प्रसिद्ध है कि एक बार एक दूकान के

पास खड़े-खड़े पाँच-छः घंटे तक एक पुस्तक पढ़ने में वह इस तरह व्यस्त हो गया कि उधर से एक बड़ा जलूस निकला और उसे पता तक नहीं चला। वह इतना अधिक अध्ययन करता था कि पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा जाता और अन्त में नेत्रों पर ठंडे पानी की पट्टी देनी पड़ती थी। यह सब होने पर भी वह अपना सामाजिक और नागरिक सम्बन्ध बनाये रहता था। वह कवि होने के साथ ही चित्रकार और गायक भी था।

दान्ते ने जिस समय अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ किया, उस समय योरोप की काव्यभाषा लैटिन और ग्रीक थी। उच्च वर्ग तथा विद्वान् इन भाषाओं के काव्यों का आनन्द ले सकते थे, किन्तु सर्वसाधारण जनता इनसे अधिकांशतः वंचित रहती थी। अतः दान्ते के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि क्यों न इटालियन भाषा में ही साहित्य का निर्माण किया जाय। अतएव उसने अपनी रचनाओं द्वारा अपनी आकांक्षा को प्रत्यक्ष रूप दिया। दान्ते की मातृभाषा लैटिन से निर्मित 'टसकन डायलेक्ट' थी। अपने विश्व-विख्यात महाकाव्य 'डिवाइन कामेडी' को दान्ते ने इसी फ्लोरेन्स की मुहावरेदार लोक-भाषा में लिखा। बोकेचियो तथा पेटरार्क ने भी उसके बाद इसी जन-साधारण की भाषा में साहित्य की रचना की। फल-स्वरूप इटालियन भाषा साहित्यिक माध्यम-भाषा के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित हुई। वास्तव में इटालियन भाषा को उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं के निर्माण द्वारा अलंकृत एवं आदरणीय बनाने का सम्पूर्ण श्रेय महाकवि दान्ते को ही है।

बियाट्रिस के देहान्त के बाद दान्ते का जीवन इतना शोकमय हो गया था कि उसके सम्बन्धियों और मित्रों को यह आशंका हुई कि कहीं इस तरह वह अपने जीवन का अन्त न कर दे। वेदना की गम्भीरता के कारण दान्ते बहुत दुर्बल हो गया था। अतएव उन लोगों के दबाव और आग्रह के कारण दान्ते को अपना विवाह जेम्मा नाम की युवती से करना पड़ा। उस समय दान्ते की अवस्था तीस वर्ष की थी।

जेम्मा से दान्ते को दो पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। दान्ते के कुछ जीवनीकारों का कथन है कि उसका पारिवारिक जीवन कलहपूर्ण था। दान्ते और उसकी पत्नी अलग-अलग घरों में निवास करने लगे। जेम्मा को विश्वास हो गया था कि उसका पति किसी अन्य से प्रेम करता है, किन्तु बोकेचियो के अनुसार दान्ते अपनी पुस्तकों में इतना व्यस्त रहता था कि उसके घर के लोग और उसकी स्त्री बड़ी दुखी हो जाती थी। बाद में यह जानकर कि दान्ते का स्वभाव ही ऐसा है, किसी को कोई शिकायत न रही।

कला, अध्ययन और गार्हस्थ्य के अतिरिक्त दान्ते का नागरिक कर्तव्य भी था। नागरिक अधिकार प्राप्त करने की अवस्था हो जाने पर उसने राजनीति में प्रवेश किया। तत्कालीन जनतान्त्रिक विधान के अनुसार कोई ऊंचा सरकारी पद प्राप्त करने के लिए किसी बड़े नगर के संघ का सदस्य होना आवश्यक था। दान्ते ने डाक्टरों और रासायनिकों के संघ में अपना नाम लिखा लिया। इस संघ में सुवर्णकार, चित्रकार और पुस्तक-विक्रेता (उन दिनों रासायनिकों के यहाँ पुस्तकें बिका करती थीं) भी होते थे। उस समय फ्लोरेन्स की सरकार में एक न्यायाधीश और छः प्रमुख जज हुआ करते थे। ये प्रति दो मास में नगर-संघों से चुने जाते थे। नगर के प्राचीन ग्रन्थ-संग्रहालयों में बहुत से ऐसे पत्र मिलते हैं, जिनसे दान्ते द्वारा मतदान, समिति विशेष में सम्मति-दान या फिर समिति में भाषण देने का उल्लेख है। १३०० ई० में दान्ते राजदूत निर्वाचित हुआ। जो प्रमाण प्राप्त है, उससे ज्ञात होता है कि दान्ते ने अपने इस राजदूतपद को सफलतापूर्वक निभाया। इसके पश्चात् वह न्यायाधीश भी बनाया गया।

प्रत्येक देश की राजनीति में विभिन्न दल होते हैं और उनके अपने चक्र चला करते हैं। १३०१ ई० में दान्ते का विरोधी राजनीतिक दल प्रभुत्व में आया। इस परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप दान्ते और दूसरे चार प्रमुख व्यक्तियों पर जाल, भ्रष्टाचार, चार्ल्स पोप के विरुद्ध षड्यंत्र करने और फ्लोरेंस नगर की शान्ति भंग करने के लिए मुकदमा चला। १३०२ ई० में दान्ते की समस्त सम्पत्ति पर सरकारी अधिकार हो गया और उसे राज्य-निष्कासन की आज्ञा मिली। दान्ते की पत्नी और उसकी सन्तानों को विशेष कष्ट का सामना नहीं करना पड़ा था, क्योंकि जेम्मा की अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, जिसके द्वारा उसने अपने पुत्रों को अच्छी शिक्षा प्रदान की और पुत्रियों का विवाह सम्पन्न घराने में किया। निर्वासन के पूर्व से ही जेम्मा और दान्ते अलग रहते थे, अतएव दोनों को इस वियोग से विशेष दुःख नहीं सहना पड़ा होगा।

दान्ते ने अपने निबन्धों की एक पुस्तक की भूमिका में अपनी स्थिति प्रकट की है—अपनी भाषा के सभी क्षेत्रों और प्रदेशों में मैं एक भिक्षुक की तरह भटकता रहा हूँ। अनिच्छा से मैं सम्पत्ति-जन्य दुःखों को सबके सामने प्रकट करता रहा हूँ। वस्तुतः मैं बिना पाल और पतवार के जहाज में एक से दूसरे तट और बन्दरगाह में भटकता रहा हूँ, जो दरिद्रता की सूखी हवा से चलता रहा है।

अपने देश से विलग होकर दान्ते योरोप के विभिन्न राज-दरबारों में याचक के रूप में परिभ्रमण करता रहा, किन्तु उसके कुछ अन्य आलोचकों का मत है कि वह राजदरबारों में विलास-वैभव के साथ जीवन व्यतीत करता था। जो कुछ भी हो, निर्वासन के बाद दान्ते पेरिस गया। वहाँ से वह एक नगर से दूसरे में भटकता रहा। दान्ते के हृदय में अपनी जन्म-भूमि लौटने की तीव्र इच्छा थी। इस कार्य में सफल होने के लिए उसने अनेक राजाओं तथा राजनीतिक दलों से सहयोग स्थापित किया। १३०८ ई० में लक्जम्बर्ग का काउण्ट हेनरी रोम का राजा हुआ। दान्ते ने उससे पत्रव्यवहार किया और उसी को सम्बोधित करते हुए 'डी मानर्किया' नाम का महान् राजनीति-शास्त्र लिखा। हेनरी पर 'डी मानर्किया' का अधिक प्रभाव पड़ा। उसने इस महान् ग्रन्थ के साथ आल्प्स् पर्वत पार किया और अपने साम्राज्य को पुनस्संघटित करने का स्वप्न देखा। प्रारम्भ में हेनरी को सफलता मिली, किन्तु जब उसने फ्लोरेंस नगर में कर लेने के लिए सेना भेजी तो वहाँ उसका संघटित विरोध हुआ। परिणाम-स्वरूप हेनरी की सेना पराजित हुई और साथ ही साथ पवित्र रोमन-साम्राज्य नाम की जो भ्रमात्मक राजसत्ता थी, उसका सदैव के लिए अन्त हो गया। सभ्यता और उन्नति सम्बन्धी जो दान्ते के सिद्धान्त थे उनका प्रचार हुआ, मध्य युग की संकुचित भावनाओं का अन्त हुआ।

दान्ते की 'डी मानर्किया' नामक पुस्तक योरोपीय राजनीति-शास्त्र में आज भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है। इस पुस्तक में उसने अपने राजनीतिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्त किया है। इसमें मनुष्य-समाज, साम्राज्यवाद और विश्व-शान्ति के सम्बन्ध में उसने अपने विचार प्रकट किये हैं। उसके सिद्धान्तानुसार जनशक्ति ही सम्राट् के प्रभुत्व का प्रधान कारण होती है।

अरस्तू और दान्ते की नीति में पर्याप्त साम्य दिखाई पड़ता है। अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक जीव है, इसलिए संसार में शान्तिपूर्वक जीने के लिए और उसकी प्राकृतिक शक्तियों के विकास के लिए उसे एक सामाजिक व्यवस्था और सभ्यता आवश्यक है। किन्तु सम्पन्न और अभावग्रस्त लोगों के पारस्परिक विरोध के कारण राज्यों में निरन्तर युद्ध चलता रहता है। इसलिए एक राजतन्त्र की—एक केन्द्रीय विश्व-शासन-व्यवस्था की—आवश्यकता होती है, जो शान्ति और न्याय स्थापित कर सके। संक्षेप में यही दान्ते का अपना मत था। उसने एक ऐसे अधिकारी शासन

की कल्पना की जो निःस्वार्थ, दृढ़ और अजेय हो और वह अत्याचारों को दूर कर प्रत्येक मनुष्य को शान्ति, स्वतन्त्रता और न्याय पूर्वक जीने का अवसर दे।

दान्ते ने रोमन साम्राज्य को इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा, क्योंकि उसने उस समय तक प्रायः ऐसी व्यवस्था स्थापित कर ली थी। वह सम्पूर्ण विश्व पर शासन करे। उसका वह शासन शक्ति या जातीय श्रेष्ठतागत शासन न होकर न्याय का शासन होता। दान्ते विश्व-राज्यतंत्र को रोम के अधीन होना उपयुक्त समझता था।

साम्राज्य का अधिकार शक्ति के द्वारा नहीं, अपितु कानून के द्वारा स्थापित होता है और कानून जनता की भलाई के लिए बनाये जाते हैं, जनता कानून के लिए नहीं होती। अतः सरकार जनता की सेवक है, वह उसकी स्वामिनी नहीं हो सकती। तथापि दान्ते का मत था कि राजा को अधिकार-सम्पन्न होना चाहिए, क्योंकि अधिकार के बिना कानून का प्रयोग करना असम्भव है।

दान्ते का मत है—मानव की अन्तःशक्तियों का जागरण अथवा विकास ही उन्नति का मूल है। किस जाति-विशेष अथवा राष्ट्र में विकास का क्रम क्या होगा, यह कहना कठिन है। जो राष्ट्र आज बर्बर हैं वही कल उन्नतिशील बनेंगे। संसार की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का संघटन उस पद्धति-विशेष से होना चाहिए, जिससे प्रभावान्वित हो प्रत्येक नर-नारी का बौद्धिक विकास स्वाभाविक ढंग से हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए 'विश्व-शान्ति' की आवश्यकता है। संसार के किसी प्रदेश में युद्ध आरम्भ होते ही यह समझ लेना चाहिए कि मानवी उन्नति अभी अपूर्ण है।

विश्व-शान्ति के लिए दान्ते ने एक ऐसी सत्ताधारी सार्वभौम शक्ति की कल्पना की है जिसके परिणाम-स्वरूप युद्ध का अन्त हो जाय और स्वार्थों का संघर्ष न होने पावे।

दान्ते की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'डिवाइन कामेडी' है, जिसके कारण छः शताब्दियों के बाद भी आज समस्त संसार के साहित्य-प्रेमियों द्वारा वह असीम आदर और सम्मान से स्मरण किया जाता है और महाकवि माना जाता है।

'डिवाइन कामेडी' का नायक स्वयं कवि है। दान्ते की कविता संकेतात्मक एवं प्रतीकमयी है। यह महाकाव्य इनफर्नो (नरक), पर्गेटेरियो (कर्म-

भूमि) और पैराडाइजो (स्वर्ग) नामक तीन खण्डों में विभाजित है। विद्वानों के मतानुसार दान्ते ने प्रथम और तृतीय खण्ड की रचना के पश्चात् द्वितीय खण्ड लिखा था। कुछ पाश्चात्य समालोचक इस महाकाव्य के तीन खण्डों में पर्गेटेरियो को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि दान्ते की यह रचना विश्व के महान् ग्रन्थों में है और विश्व-साहित्य में अमर रहेगी।

संक्षेप में कामेडिया का कथासार इस प्रकार है---सर्वप्रथम कवि एक विकट वन में पथ भूलकर भटकता है। उस पथविहीन वन में कवि को अरुणाभायुक्त एक उत्तुङ्ग पर्वत-शिखर दिखाई पड़ता है। यही स्वर्ग है। कवि उस पर पहुँचने का प्रयत्न करता है, किन्तु उसके निकट पहुँचते ही काम, क्रोध, लोभ और अभिमान के मूर्तिमान् पशु उस पर आक्रमण करते हैं। कवि मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। इस मर्मान्तिक वेदना की व्याकुल कर देनेवाली दशा में उसे प्रेतात्मा दर्शन देती है। वह कवि को उपदेश देती है और उसे दिव्य दृष्टि प्रदान करती है। कवि फिर मुक्ति-मार्ग की खोज करता है। मुक्ति-मार्ग के परिशोध में सर्वप्रथम उसे नरक लोक मिलता है। फिर कर्मभूमि आती है। इसी कर्मभूमि के अन्तिम द्वार पर उसे वियाट्रिस के दर्शन होते हैं। वियाट्रिस के परिशुद्ध प्रेम एवं अलौकिक सौन्दर्य की स्निग्ध शीतल छाया में वह स्वर्गलोक में प्रवेश करता है। कवि का मार्ग-निर्देश करती हुई वियाट्रिस उसे सूर्यलोक की ओर संकेत कर अनन्त का रहस्य समझाती है।

यह सत्य है कि दान्ते ने उस अमर महाकाव्य की रचना में अपने युग की समस्त ज्ञान-विज्ञान की बातें सम्मिलित कर अन्तर्निहित कर ली हैं। जब वह प्रेतात्माओं का वर्णन करता है तो सभी पापियों, पुण्यात्माओं तथा वरदानप्राप्त लोगों का समस्त इतिहास ऐसी संकेत एवं सूत्र शैली में अभि-व्यंजित करता है, जो अत्यन्त आश्चर्योत्पादक है। इन्हीं वैयक्तिक कथाओं के कारण इस महाकाव्य में असाधारण मानवीय आकर्षण उत्पन्न हो गया है। विशेषत: नरक में जहाँ कि पुण्यात्माओं की जीवन-कहानियों से पापियों की कथा कहीं अधिक नाटकीय है। दान्ते ने पापियों को कठोर दण्ड की व्यवस्था का वर्णन किया है। इनफर्नो (नरक) के पंचम सर्ग में भावुकता अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी है। पोलो और फ्रैनसेस्का की कहानी वर्णनात्मक कविता में अद्वितीय आकर्षण की है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यही कवित्व-शक्ति सम्पूर्ण काव्य में दृष्टिगत होती है, जिस

समस्त मानव एवं ईश्वर के साथ उसके सम्बन्ध का रूपक निर्योजित किया गया है। इस स्वप्न-यात्रा का अन्त उस समय होता है जब कि देवता के दर्शन होते हैं और व्यक्ति की आत्मा का उस प्रेम से सम्मिलन होता है, जो सूर्य, चन्द्र तथा तारकमण्डल के चतुर्दिक् विस्तीर्ण है।

कवि दान्ते ने उक्त लोक का दर्शन पाठकों को कराने का प्रयत्न किया है। असत् पक्ष से सत् पक्ष की ओर मार्ग-निर्देश किया है। प्रत्येक पंक्ति में कवि ने शब्दों को गम्भीर अर्थ में गुम्फित कर दिया है। अनेक आलोचकों ने इस विषय में बहुत तर्क-वितर्क किया है कि बियाट्रिस, जो स्वर्ग में उसका पथ प्रदर्शन करती है, वस्तुतः स्त्री है अथवा प्रतीक है, जिसके मुख पर आवरण डालकर कवि ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति की है।

दान्ते ने कामेडिया में यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि मानव अपने पौरुष और पराक्रम द्वारा नरक से कर्मभूमि में प्रवेश कर सकता है, जहाँ से विशुद्ध विमल स्वार्थ-रहित प्रेम की शीतल और सुखदायिनी छाया उसे स्वर्ग तक पहुँचा सकती है।

दान्ते का अभिमत है कि पाप से मुक्ति पश्चात्ताप द्वारा होती है। आत्मा की परिशुद्धि के लिए पश्चात्ताप परमावश्यक है। इस प्रायश्चित्त द्वारा पतित पुरुष अपनी बुद्धि और इच्छा शक्ति को निर्बन्ध करता है। इसी के द्वारा वह पुण्य-संग्रह तथा स्वर्ग-प्राप्ति की चेतना जागरित करता है। पाप के पर्वत को दान्ते ने सात खण्ड का माना है, जो क्रमशः एक-एक कर विध्वस्त होते हैं। कामेडिया के अन्तिम खण्ड 'पैराडाइजो' में नित्यता (इटर्निटी) और कर्म-साफल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। जहाँ गति नहीं, जो अविनाशी एवं नित्य है वही परमात्मा है। इसी अनन्त का रहस्योद्घाटन करने के लिए कवि को बियाट्रिस के दर्शन हुए। दान्ते का मार्ग-निर्देश करती बियाट्रिस उसे सौर मण्डल में ले जाती है और इंगित करती है कि वह ग्रह नक्षत्र परिक्रमा कर रहे हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य का इसी स्थल पर विकास हुआ है। जहाँ हम हैं यहाँ काल की कोई अवधि नहीं; केवल नित्य, विशुद्धस्वभाव काल का ही यहाँ निवास है। काल से जो परे है, वही अनन्त है। मानव की इच्छा-आकांक्षा एवं मनोभाव जब परमेश्वर के अधीन हो जायँगे उसी क्षण जीवन के वांछित फल की प्राप्ति होगी।

दान्ते अपने निर्वासन-काल में इधर-उधर भटकने के बाद १३१७ ई० के लगभग रावेना नामक नगर में आया। यहाँ उसे अपने रहने के लिए

एक घर मिला। अपने निर्वासन-काल में सबसे अधिक सुखी और स्वतन्त्र जीवन उसने यहीं व्यतीत किया था। उसकी सन्तानें भी उसके साथ ही यहाँ थीं। रावेन्ना में ही दान्ते ने पर्गेटोरियो का अन्तिम भाग और सम्पूर्ण पैराडाइजो की रचना की थी।

मध्य-युग के सम्पूर्ण चित्र दान्ते के वर्णन में दिखाई पड़ते हैं। वेनिस के युद्ध के कारखाने के जहाज बनानेवाले, भोजन पकाने में व्यस्त रसोइये और बर्तन माँजनेवाले, पहाड़ियों पर विश्राम करनेवाले श्रमिक, घाटियों में चमकनेवाले जुगनू, चिरकालीन तुषार से निर्विण्ण गड़ेरिये, स्वप्न-लोक में विचरण करनेवाली कृषक-कुमारियाँ जो अनाज बटोरने में व्यस्त हैं, अपने घोड़े की नाल लगाने के लिए व्यग्र साईस, त्योहार के अवसरों पर रोम के यातायात का नियन्त्रण, चूल्हे में जलनेवाले हरी लकड़ी के कुन्दे, रात में आग लगने से बच्चों को लिये भागनेवाली नंगी माताएँ, मार्ग में दिखाई पड़नेवाले भिक्षुक, मध्ययुगीन अस्पतालों से आती हुई दुर्गन्ध, मछली पकड़ने, शिकार खेलने, नहाने, जुआ खेलने, प्रतियोगिता में सम्मिलित होने की प्रवृत्तियाँ युद्धों से उपत्न्न होनेवाली भिन्न-भिन्न स्थितियाँ— ये सब दान्ते की रचनाओं में पूर्णतः और स्पष्टतः अंकित हैं।

इटली के रावेन्ना नगर में ही दान्ते का देहान्त हुआ था।

चौदहवीं शताब्दी के चार महान् साहित्यकार

चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक आते-आते सम्पूर्ण साहित्य के क्षेत्र में एक परिवर्तन आरम्भ हो गया था। आगामी एक शताब्दी में इस परिवर्तन को पूरा हो जाना था।

१३५० ई० में चॉसर की अवस्था दस या बीस वर्ष की रही होगी। उसके जन्म के विषय में विद्वानों में मतभेद है। बोकेचियो की अवस्था सेंतीस वर्ष की थी और उसने अपनी रचना 'डेकामेरोन' का लिखना आरम्भ कर दिया था, जो १३५३ ई० में प्रकाशित हुई। पेटरार्क की

अवस्था छियालिस और फायसर्ट की बारह थी। योरोप के नवीन साहित्यिक युग के सर्वप्रथम निर्माता ये ही उक्त चार साहित्य-स्रष्टा थे। इनके अतिरिक्त 'विजन आफ पियर्स प्लावमैन' के लेखक लांग्लैंड की अवस्था उस समय अठारह वर्ष की थी। विल्कीफ उस समय बाइबिल का अनुवाद करने की योजना बना रहा था।

यहाँ हम समझ लें कि चौसर आगे चलकर काव्य का जनक कहा गया। इटली में बोकेचियो को गद्य का जनक माना गया। फ्रांस में फ्रायसर्ट को फ्रेंच गद्य का पिता सम्बोधित किया गया। जर्मनी के तीन पादरियों के उपदेशों में साहित्यिकता प्रचुर मात्रा में होती थी। उनके उपदेशों को उत्तरी प्रदेशों के गद्य का आरम्भ समझा जा सकता है।

यह विचारणीय विषय है कि वर्जिल की मृत्यु से दान्ते के जन्म तक लेखक को अपेक्षाकृत कम राष्ट्रीय या सामाजिक गौरव या वैशिष्ट्य प्राप्त था। त्रूबादुरों और मिने-सिंगरों को इस सम्बन्ध में अपवाद-स्वरूप समझा जा सकता है। इन दोनों के सम्बन्ध में भी लेखकों की अपेक्षा उनकी साहित्यिक रचना अधिक महत्त्व की वस्तु समझी जाती थी। यह एक ऐसा साहित्य-सम्बन्धी प्रश्न है जो सामाजिक परिस्थितियों और युग के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

एक नियम से यह समझा जा सकता है कि महान् साहित्यिक व्यक्तित्व होने पर साहित्य में शिथिलता आ जाती है और जब साहित्य उच्च स्तर का होगा तब महान् साहित्यिक व्यक्तित्व नहीं रहेगा। 'बरे त्रां दे बोर्न' नाम का त्रूबादूर महान् था, इसलिए नहीं कि वह 'सेरबेंत' का रचयिता था, अपितु इसलिए कि राजनीतिक और सैनिक दृष्टि से उसका महत्त्व अधिक था। उसने प्रायः उस समय के सभी राजाओं से युद्ध किया था। दूसरे त्रूबादूर लोग एक बड़े साहित्यिक आन्दोलन के अंग मात्र हैं। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि जर्मनी का ग्राम्यगीत-सम्बन्धी साहित्य बहुत प्रसिद्ध था; किन्तु उन साहित्यकारों के नाम किसी को स्मरण नहीं हैं। इँग्लैण्ड में भी 'विजन आफ पियर्स प्लावमैन' बहुत प्रसिद्ध रचना है, लेकिन उसके लेखक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। कुछ लोग विलयम लांग्लैण्ड को इसका रचयिता कहते हैं, जो प्रायः चौसर का सम-सामयिक था।

पेटरार्क

(१३०४–१३७४ ई०)

चौदहवीं शताब्दी में समस्त योरोप में एक परिवर्तन आरम्भ हुआ और एक नवीन प्रकाश का दर्शन हुआ। इस आलोक से सर्वप्रथम इटली ही प्रकाशित हुआ। पेटरार्क ही पहला साहित्यकार है जिसने ग्रीक तथा लैटिन साहित्य का पुनरुत्थान किया। इसने प्रधानतः लैटिन भाषा में ही काव्य-रचना की है। पेटरार्क ने इटालियन भाषा में जो 'गीत' लिखे हैं, वे इतने श्रेष्ठ और सुन्दर बन पड़े हैं कि उनके चार सौ से अधिक संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। पेटरार्क दान्ते की अगली पीढ़ी में हुआ; किन्तु उसकी प्रसिद्धि एवं यश उसके जीवन-काल में ही तथा दो सौ वर्ष के अनन्तर भी दान्ते से कहीं अधिक व्यापक रहा।

पेटरार्क का पिता, दान्ते के साथ ही, फ्लोरेंस नगर से निर्वासित हुआ था। युवावस्था में पेटरार्क ने कानून की शिक्षा ग्रहण की थी, किन्तु साहित्य की ओर उसकी रुचि थी। उसने वर्जिल और सिरो की रचनाओं का अध्ययन किया। १३२७ ई० में सेण्ट क्लेयर के गिरजाघर में लूरा नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी युवती पर पेटरार्क की दृष्टि पड़ी। तब से वह उसी की प्रेम-आराधना में अपनी कविता लिखने लगा। लूरा से उसका प्रेम-सम्बन्ध दान्ते की बियाट्रिस की ही भाँति था। पेटरार्क ने फ्रांस और जर्मनी का भ्रमण किया। उसकी ख्याति १३४१ ई० में उच्च शिखर पर पहुँच गई थी और उसी वर्ष वह रोम का राज्य-कवि घोषित किया गया। १३४८ ई० में वह इटली में ही था जब लूरा के निधन का समाचार उसे

मिला। उसे यह समाचार ठीक उसी दिन मिला, जिस दिन वह प्रथम मिलन दिवस का वार्षिकोत्सव मना रहा था।

१३५० ई० में वह रोम नगर में दिखाई पड़ा था। इसके बाद एक नगर से दूसरे नगर में वह भटकता रहा। अन्त में अरुआ नगर को (१३७० ई०) उसने अपना निवासस्थान निश्चित किया। इसी नगर में उसके जीवन का अन्तिम समय व्यतीत हुआ। पेटरार्क की लिखी गीतात्मक कविताओं में ही उसकी ख्याति विश्राम कर रही है। उन कविताओं की विशेषता यह है कि कला की दृष्टि से कहीं अधिक वे पाठकों के हृदय में प्रकाश और भावनाओं के रूप में अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं। अंग्रेजी साहित्य में उसके प्रसिद्ध गीतों के नाम ही 'पेटरार्कन' रख दिये गये हैं। वह केवल कवि ही नहीं था। वह संस्कृति का प्रचारक, मानवता का गायक तथा ग्रीक और लैटिन सभ्यता का प्रसारक भी था।

बोकेचियो केवल इटालियन गद्य का जनक ही नहीं था। वह पहला व्यक्ति था, जिसे उसकी रचनाओं के लिए महान् कहा गया। इस प्रकार उसे प्रथम साहित्यिक महापुरुष कहा जा सकता है। दान्ते, चोसर और फ्रायसर्ट, सब के सब सक्रिय व्यक्ति थे। दान्ते एक प्रमुख राजनीतिज्ञ था, चोसर एक प्रमुख अधिकारी तथा नौकरशाह और फ्रायसर्ट भी एक प्रमुख राजनीतिज्ञ था। अपने प्रारम्भिक काल में तीनों लड़नेवाले सैनिक थे। चोसर युद्ध में बन्दी बना लिया गया था और कहा जाता है कि अपने

बन्दी-जीवन के अवकाश के क्षणों में उसने अपनी सर्वप्रथम रचना के रूप में 'रोमाउंट आफ् दी रोज' का फ्रेंच से अनुवाद किया था।

बोकेचियो ने लिखने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। वह एक धनी व्यक्ति का अवैध पुत्र था, जिसे उसके पिता ने मान्यता दी और धन से उसकी बड़ी सहायता की। इस प्रकार बोकेचियो लिखने के बाद के अवकाश के समय को यों ही व्यतीत करता था, या यह कहना चाहिए कि उसने अपना समय अधिकतर मेरिया के प्रेम में ही बिताया। वर्षों तक प्रेम के सुनहले स्वप्नों ने बोकेचियो के जीवन को रंगीन बना दिया था; लेकिन यह स्थिति स्थिर न रह सकी। उसकी प्रेमिका ने एक अन्य पुरुष को अपने हृदय में स्थान दिया। बोकेचियो के हृदय पर इसका गहरा आघात पहुँचा। दस वर्ष के उपरान्त, योरोप में जो भीषण प्लेग फैला, उसी में उसकी प्रेमिका का देहावसान हो गया। बोकेचियो ने अपनी प्रेयसी की सेवा अन्तिम समय में बड़ी तत्परता से की और उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसकी कब्र के समीप बैठा हुआ वह अश्रुपात करता था।

प्रेमिका के अवसान के बाद ही बोकेचियो के पिता को भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। परिणाम-स्वरूप बोकेचियो के सम्मुख निर्धनता की समस्या आ खड़ी हुई। निर्धनता के आते ही मित्रों ने भी उसका साथ छोड़ा और बोकेचियो के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किस प्रकार वह अपनी प्रतिभा का उपयोग करे। अनेक चिन्ताओं से शोक-संतप्त हो बोकेचियो ने महाकवि वर्जिल के समाधिस्थल की यात्रा की और वहाँ पर उसने साहित्य-साधना की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

सच्चा प्रेमी जब अपनी प्रेम-साधना में प्रियपात्र द्वारा उपेक्षित होता है तो वह अपने प्रेम की अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना का एक न एक साधन अवश्य ही आविष्कृत कर लेता है। साहित्यकार बोकेचियो ने साहित्य को इसका माध्यम बनाया। यह स्वाभाविक ही था। अपनी प्रेमिका मेरिया-डी-एक्वीनो के प्रेम में उसने अपनी प्रथम कृति 'फिलोस्टेटो' नामकी कविता लिखी। 'फिलोकोलो' नामक क्लिष्ट एवं लम्बी गद्य-रचना भी उसने उसी उद्देश्य से प्रणीत की। 'टी साइड' शीर्षक वर्णनात्मक कविता में बोकेचियो ने पालमन-आस्काइट की मैत्री तथा एक ही प्रेमिका के प्रति आकर्षण का मार्मिक चित्रण किया है।

बोकेचियो ने स्वयं अपनी कहानी, रूपक में, 'एमटो' नाम की गद्य-रचना में प्रस्तुत की है। महाकवि दान्ते के छन्द में उसने जिस लम्बी कविता का

प्रणयन किया है, उसका नाम 'एमोरोसा विजन' है। इसका भी प्रतिपाद्य मेरिया का प्रेम ही है। 'फायमेटा' बोकेचियो की ख्यातिलब्ध रचना है। इसमें उस पत्नी के भावों का सजीव चित्रण है, जिसके पति ने उसे तिरस्कृत कर त्याग दिया है। विद्वानों का कथन है कि योरोप में लिखा गया यह सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

अपनी प्रेमिका की मृत्यु के कुछ समय बाद बोकेचियो फ्लोरेंस नगर लौटा और वहीं उसने विश्वविख्यात कृति 'डेकामेरन' लिखना आरम्भ किया। १३४८ ई० में भयंकर प्लेग ने प्रलयंकारी स्वरूप धारण कर लिया था और सर्वत्र उसका आतंक छाया हुआ था। योरोप की तीन चौथाई जनसंख्या वर्षभर में ही काल-कवलित हो गई थी। इसी वर्ष लेखक ने इस महान् रचना को लिखना आरम्भ किया था और पाँच वर्षों में, १३५३ ई० में, लिखकर समाप्त किया था।

'डेकामेरन' में दस कहानी कहनेवाले शरणार्थी हैं, जिनमें सात महिलाएँ और तीन पुरुष है। इनकी कहानियाँ दस दिनों में पूर्ण होती है। इन कहानियों में संकटग्रस्त लोगों को नये ढंग से जीवन आरम्भ करने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। मनुष्य अपनी विभिन्न परिस्थितियों में रहकर सुख-सन्तोष की साँस ले और अपनी कष्ट तथा अभाव की स्थिति में भी जीवन के प्रति मोह न छोड़े, ऐसी प्रेरणा प्रदान करनेवाले मार्मिक चित्रण 'डेकामेरन' में भरे पड़े हैं। यह एक ऐसी प्रौढ़ और उत्कृष्टतम रचना है, जिसके पठन-पाठन में मानव सदा-सर्वदा आनन्द का अनुभव करता आया है और भविष्य में भी करता रहेगा। इस कृति ने बाद में प्रभूत कथा-साहित्य को जन्म दिया है। संक्षेप में 'डेकामेरन' में मनोरंजक कहानियाँ हैं, प्रेम की चर्चा है, विनोद व्यंग्य है और इसमें यत्र-तत्र सर्वत्र सुखान्त घटनाओं के कथानक बिखरे हुए हैं। एक शब्द में यह सर्वजनप्रिय रचना कही जा सकती है। इसमें चौदहवीं शताब्दी के सजीव इटालियन चित्र भरे पड़े हैं।

गियोवानी बोकेचियो के जीवन का अन्तिम समय दुःख और दारिद्रय में व्यतीत हुआ। पेटरार्क का प्रभाव उसपर विशेष रूप से पड़ा था। वह उसे अपना साहित्यिक गुरु मानता था। पेटरार्क के निर्धन हो जाने पर बोकेचियो ने कहा—अब तो निर्धनता-दीनता के दिनों में जीने का सहारा भी चला गया। अब जीकर क्या होगा ?

पेटरार्क के निधन के एक वर्ष बाद बोकेचियो जब बीमार पड़ा तब फिर वह शय्या से न उठ सका और, ६२ वर्ष की अवस्था में, उसके जीवन का अन्त हो गया।

फ्रायसर्ट

(१३३७–१४०० ई०)

साहित्यिक परिस्थितियों के उस अन्तःकाल में पेशेवर साहित्यिक बहुत कुछ अपने आश्रयदाताओं पर निर्भर करते थे। उनकी रचनाओं से आश्रयदाताओं का मनोरंजन हो जाता था। उस समय के लिए यह स्वाभाविक था कि राजा, राजकुमार और उनके बड़े अधिकारी लोग कविता सुनने में अपना समय व्यतीत करते थे। यह इसलिए कि उस समय समाचारपत्र नहीं थे, वार्ता-वहन के दूसरे साधनों का अभाव था। जाड़े के लम्बे महीनों में न युद्ध ही होता था और न खेल-कूद, तब ऐसी कला-कृतियों का मान होना स्वाभाविक ही था।

फ्रांस के फ्रायसर्ट को भी राजदरबारों से सम्मान और सम्पत्ति अत्यधिक मिली। उसने फ्रांस से स्काटलैण्ड, वहाँ से इंग्लैण्ड, फिर बरगण्डी और उसके बाद आलामेन की यात्रा की। सब जगह राजाओं और राजकुमारों ने उसका स्वागत-सम्मान किया और मान-प्रतिष्ठा दी। फ्रायसर्ट की समसामयिक साहित्यकार 'क्रिस्त्रीन दे पिसां' को न उतनी सम्पत्ति मिल सकी न सम्मान। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि वह स्त्री होने के कारण राजदरबारों में राजदूत के कामों में नहीं जा सकती थी। फलतः उसे अपनी लेखनी का ही सहारा था।

उन दिनों फ्रांस में वैसे तो प्रत्येक युवक यौवन के मद में भरा हुआ अपनी कविता लिखता था और उसके उत्तर में कोई युवती अपना गीत लिख भेजती थी। उन दिनों कवि-सम्मेलनों के अच्छे आयोजन हुआ करते थे, जिनमें कवियों का आदर होता था और उन्हें पुरस्कार एवं मार्ग-व्यय भी दिया जाता था। इस तरह के छः सौ कवि-कवयित्रियों के नाम बरगण्डी के इतिहास में पाये जाते हैं, जिनकी कविताओं की आज एक पंक्ति भी मिलना कठिन है।

चोसर

(१३४० ?–१४०० ई०)

साहित्य के इस संक्रमण-काल की एक विशेपता यह भी है कि इसमें कल्पनात्मक कविताएं पीछे छूटी दिखाई पड़ती हैं और कथा कहने की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसका कारण गद्य का आविर्भाव, दुःख और कठिनाइयों के कारण जन-कलाओं का अन्तर्भाव ही है।

१३३० ? या १३४० ? ई० में चोसर के जन्म या १३३२ ई० में लांग्लैण्ड के जन्म से ट्यूडरों के राजगद्दी पर जम जाने तक, इस काल के इँग्लैण्ड में दरबारी, शास्त्रीय या जनसम्बन्धी साहित्य का कोई भी चिह्न नहीं दिखाई पड़ता।

जिस समय 'विजन आफ पियर्स प्लावमैन' का रचयिता लांग्लैण्ड और चोसर अपनी रचना कर रहे थे, उस समय इँग्लैंड में विदेशियों से युद्ध बन्द हो गया था, लेकिन देश में विद्रोह का जोर बहुत था। वाट टाइलर और जान बोल के नेतृत्व में किसानों ने विद्रोह कर दिया। उन लोगों ने (१३८१ ई०) लन्दन पर अधिकार कर लिया। चोसर ने अपनी 'कैन्टर-बरी टेल्स' की रचना १३८६ ई० के बीच की होगी। गावर की रचना 'कोंफेसियो अमाटिस' १३९० ई० के आसपास लिखी गई।

यह भी एक ध्यान रखने की बात है कि १३८८ ई० में ओटरबर्न या चेवीचेस का युद्ध हुआ था, जब कि डुग्लेस के अधीन स्कोटों ने लार्ड हेनरी पर्सी को हराया था और सम्भवतः उसी समय सर्वप्रसिद्ध वीरगीतों की प्रथम रचना हुई।

रिचार्ड द्वितीय की हत्या करानेवाले हेनरी चतुर्थ ने १३९९ ई० में सत्ता प्राप्त की और उसके अगले वर्ष चोसर और लांग्लैंड, दोनों की मृत्यु हुई।

चोसर को साहित्यकार के रूप में कविता के क्षेत्र में ही स्वीकार करना चाहिए। वह उन दिनों के आरम्भ में था जब कि पद्य को गद्य चुनौती देने लगा था। चोसर एक सच्चा कवि था। उसके चित्रित पात्र सब

के सब वास्तविक जीवन से अधिक सत्य जान पड़ते हैं। दूसरी ओर बोकेचियो केवल 'फायमेटा' और उसकी मित्र-मंडली को सजीव रूप में चित्रित करता है, किन्तु उसकी कहानियों के दूसरे चरित्र एक प्रकार से अस्तित्व-हीन हैं। सम्भवतः इसका कारण केवल माध्यम हो। जब कभी बोकेचियो पद्य में लिखता था तो वह अपने को एक बड़ा कलाकार प्रमाणित करता था। यदि चोसर ने अपनी कहानियाँ 'केन्टरबरी टेल्स' गद्य में लिखी होतीं तो सम्भवतः वे निम्न कोटि की उतरतीं।

वास्तव में पद्य के बन्धन में रहकर लिखनेवाले व्यक्ति को कदाचित् यह अनुमान होता है कि यदि वह गद्य को अपना ले तो वह खेत में छोड़े गये हिरन की भाँति सरपट दौड़ सकता है। लेकिन बात इसके विपरीत है। गद्य में छन्द, मात्रा आदि साधन नहीं होते, जिनसे साधारणतया लोगों को श्रुतिसुखोपलब्धि होती है। बात यह है कि बोकेचियो ने तत्कालीन माँग की पूर्ति के लिए अपनी रचना 'डेकामेरन' गद्य में लिखी। चोसर को ऐसी माँग की पूर्ति नहीं करनी थी।

चोसर की भेंट फ्रांस में फ्रायसर्ट और इटली में पेटरार्क और बोकेचियो से हुई। इसमें सन्देह नहीं कि इन चारों महारथियों को, एक दूसरे को समझने का पर्याप्त अवसर मिला होगा।

चोसर का पिता राज्य-कर्मचारी था। यही कारण था कि चोसर को बचपन से ही राजदरबार में स्थान मिला। १३५९ ई० में वह एक सैनिक के रूप में फ्रांस में था; किन्तु वहाँ युद्ध में वह बन्दी बनाया गया। एक वर्ष बाद उसे वहाँ से मुक्ति मिली। अनेक वर्षों तक चोसर फ्रांस और इटली में राजकीय कार्य से रहा। उसके जीवन में सफलता का एक कारण यह भी था कि उसकी पत्नी की बहिन का विवाह जान आफ गाउण्ट से हुआ था। चोसर के जीवन में ही उसे विशेष सम्मान मिला था। उसके जीवन में अनेक ज्वार-भाटे आये।

चोसर को यह विदित था कि कैसी कहानियाँ पसन्द की जाती हैं और उनको कैसे कहना चाहिए। इसलिए जब उसके विश्राम के दिन आये तब उसने बैठकर अपनी केण्टरबरी की कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। शेक्सपीयर से यदि चोसर की तुलना की जाय तो दोनों की भाषाओं में अन्तर दिखाई पड़ेगा। शेक्सपीयर की भाषा अधिक पुष्ट और ढली हुई है। एक बात यह भी है कि शेक्सपीयर को पढ़कर हम इँगलैण्ड के एलि-

जावेश्य युग को देखेंगे, उसके सम्बन्ध में कुछ जानेंगे; लेकिन चोसर में जिन मानवीय गुणों का आलेखन है वे सर्वकालीन हैं, किसी युग विशेष के नहीं। चोसर को पढ़े बिना आंग्ल सेक्सन कला की परम्परा ठीक-ठीक जानना असम्भव है। वह अंग्रेजी कविता का प्रथम कवि है, जिससे आधुनिक अंग्रेजी कविता का इतिहास आरम्भ होता है।

विलन

(१४३१-१४८९ ई०)

फ्रांस में मध्यकालीन साहित्य का विकास चौदहवीं शताब्दी में उतना नहीं था, जितना पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। जिस वर्ष फ्रांस की विदुषी जोन-डी-आर्क ने धर्म के नाम पर अपना प्राण उत्सर्ग किया था, उसी वर्ष पेरिस में फ्रांकोइस विलन का जन्म हुआ था। विलन महान् कवि माना जाता है। उसका जीवन विलासिता, हत्या और चोरी में इतना उलझा था कि उसकी जीवन-गाथा सुनकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

विलन जब पाँच वर्ष का था, उसी समय उसके पिता का देहान्त हो गया था। उसकी माँ दरिद्रावस्था में असहाय होकर भटक रही थी। वह अपनी सन्तान को भूखों मरने नहीं देना चाहती थी। उसे अपने एक सम्बन्धी पादरी का ध्यान आया। विलन की माता अपने पुत्र को साथ लेकर पादरी के आश्रय में गई। वह विश्वविद्यालय का अधिकारी और प्रोफेसर था। बालक को देखकर करुणा और स्नेह के भाव उसके हृदय में उमड़ पड़े। पादरी सन्ध्या समय विलन को कहानियाँ सुनाता और इन्हीं कहानियों द्वारा उसने धीरे-धीरे लैटिन और फ्रेंच कवियों की रचनाओं से उसे परिचित कराया।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस बड़ी भयानक अवस्था में था। राजा और सामन्तों द्वारा प्रजा लूटी जा रही थी। धर्म के नाम पर

पादरियों का ही आधिपत्य था। राजा और सामन्त उनके हाथों की कठ-पुतलियों की भाँति चलते थे। समूचे देश में प्लेग और अकाल से हाहा-कार मचा था। इसके अतिरिक्त भूखे भेड़ियों के आक्रमण से नगर त्रस्त रहता था। ऐसे समय में लोग लूट, हत्या और अत्याचार के अभ्यस्त हो गये थे। इटली का पोप अकर्मण्य था। उसकी छाया में पादरी लोग कर एकत्र करते थे।

१२ वर्ष की अवस्था में विलन विश्वविद्यालय में अध्ययन करने लगा। १९ वर्ष की अवस्था में उसने बी० ए० पास किया और तीन वर्ष बाद एम० ए० की उपाधि लेकर वह विश्वविद्यालय से बाहर निकला। पादरी की प्रेरणा से विलन एक कुशल कवि बन गया था और उसकी कविताएं सर्वत्र आदर पाती थीं।

विलन ऐसे युग में उत्पन्न हुआ था जब शिक्षित समाज घोर आर्थिक कष्टों में जीवन व्यतीत कर रहा था। यहाँ तक कि विलन के आश्रयदाता उस पादरी की आमदनी घट गई थी और विलन कुछ उपार्जित नहीं कर पाता था। अन्त में वह चोरी करने के लिये बाध्य हुआ। वह भयानक आवारों का साथी बन गया।

विलन की कविताएँ प्रचलित हो रही थीं। इसका एक कारण यह भी था कि वह गानेवाले, जादूगर और कविता पढ़नेवाले भाटों की मण्डली में सम्मिलित हो जाता था और उसके व्यक्तित्व का उन लोगों पर प्रभाव पड़ता था। इस तरह वह चोर, डाकू, हत्यारे और आवारों के समूह से घिरा रहता था। उसका जीवन एक न एक घटना के साथ उलझ पड़ता था। मारपीट और चोरी में वह अग्रसर हो जाता था।

परिणाम यह हुआ कि विलन लुक-छिपकर अपना दिन काटने लगा। उसे एक हत्या करने कारण फाँसी की आज्ञा हुई थी। पुलिस उसे खोजती फिरती थी। गिरफ्तार होनेपर उसके कई वर्ष जेल में भी कटे थे। अन्त में अपनी कविताओं के प्रभाव के कारण वह जेल से मुक्त हुआ। यहाँ तक कि फ्रांस के बादशाह ने स्वयं उसकी कविता की प्रतिलिपि उतारी। वह विलन की रचनाओं पर मुग्ध था और उसी की कृपा के कारण विलन मुक्त हुआ। फिर भी वह अपने जीवन को व्यवस्थित और सुखी नहीं बना सका।

विलन का अन्तिम प्रेम केथराइन नाम की एक स्त्री से हुआ था। उससे उसे घोर निराशा का अनुभव हुआ। वह उसके ऊपर सर्वस्व निछा-

वर कर चुका था, लेकिन वह सदैव उसके प्रति घृणा करती थी। उसके प्रेम के परिणाम में एक बार विलन के नग्न शरीर पर बेतों का प्रहार हुआ था।

जीवन के कटु अनुभव ही विलन की कविताओं में मिलते हैं। उसकी कविताओं में आत्मा का नग्न चित्रण है। उनमें सत्यता और वास्तविकता का मिश्रण है। विलन अपनी रचनाओं में निर्भयता से पूछता है कि क्या सच-मुच उन अपराधों का वह दोषी है, जिन्हें उसने किया था?

विलन की कविताओं को पढ़कर यही भावना मन में उठती है कि परिस्थितियों के कारण ही सब कुछ हुआ, विलन की आत्मा कभी भी अपराधी नहीं थी।

जनवरी १४६३ ई० में सहसा विलन लुप्त हो गया। उसके बाद उसका कोई निश्चित समाचार नहीं मिला। कुछ लोगों का कहना है कि एक द्वन्द्व में वह मारा गया। लेकिन फ्रेंच साहित्य के इतिहास में यह पता नहीं चलता कि कब और कहाँ उसकी मृत्यु हुई।

विलन 'गीतात्मक' कविताओं का महान् कवि था। उसकी प्रमुख रचनाएँ 'ओल्ड और न्यू टेस्टामेंट' है।

उसके पचास वर्ष बाद रेबले नाम के प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक ने अपने उपन्यास के प्रधान पात्र के रूप में उसके वीरतापूर्ण साहसिक कृत्यों का वर्णन किया था।

उन्नीसवीं शताब्दी में विक्टर ह्यूगो ने विलन का चरित्र उपस्थित किया था। उसके उपन्यास हंच बैक नोट्रीडेम में कवि गिगोरे का चित्रण इतना सजीव हुआ है कि पढ़कर पाठक तन्मय हो जाता है। सचमुच यह विलन के चरित्र का रहस्यमय चित्रण है। पन्द्रहवीं शती के उस आवारे कवि ने संसार को अमूल्य रचनाएँ भेंट की हैं, जिससे वह विश्व-साहित्य में अमर रहेगा।

———
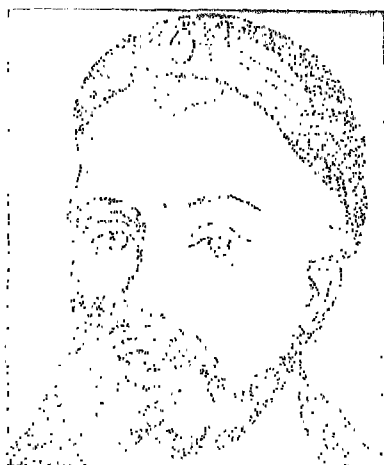
(१४९०–१५५३ ई०)

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में (१४९४ ई०) संसार के प्रथम छपाई के प्रेस पर हास्यरस की एक पुस्तक छपी थी, जिसका नाम था 'दी शिप आफ फूल्स' (मूर्खों से भरा एक जहाज)। यह पुस्तक जर्मनी के बेसले नगर में प्रकाशित हुई थी। इसका लेखक सेबास्टियन ब्रान्ट था, जो कानून की डिग्री प्राप्त कर लेने पर भी छपाई के नवीन आविष्कार की ओर इतना आकर्षित था कि उसने उसको ही अपना व्यवसाय बना लिया था। लेखक ने कल्पना की कि एक जहाज पर भिन्न-भिन्न प्रकार के एक सौ चौदह मूर्ख यात्रा आरम्भ करते हैं। लेखक उन मूर्खों की कहानी में इतना उलझ गया था कि जब तक उनका विवरण समाप्त नहीं हुआ तब तक वह जहाज की बात ही भूल गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने जहाज की यात्रा का माध्यम बनाकर उन मूर्खों की कहानियों की रचना की थी। इस पुस्तक का अत्यधिक प्रचार हुआ।

इसी पुस्तक की प्रेरणा से दो अन्य पुस्तकों की रचना हुई है एक इरास्मूस की 'प्रेज आफ फालीज' और दूसरी 'गारगन्तुआ और पेण्टाग्रूयल'। इन दोनों पुस्तकों में उस समय के पोप और गिरजों के आधिपत्य और आतंक पर व्यंगपूर्ण कटाक्ष किये गये हैं।

गारगन्तुआ और पेण्टाग्रूयल का लेखक फ्रांकोइस रेबले था। उसका पिता एक सराय का मालिक था। १५ वर्ष की अवस्था में रेबले एक

धार्मिक स्कूल में भर्ती हुआ। उसके पिता की कामना थी कि उसका पुत्र धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर भविष्य में गिरजे का कर्मचारी बने। पाँच वर्ष तक रेबले ने उस स्कूल में अध्ययन किया। उस समय वह अपने उन सह-पाठियों से परिचित हुआ जो आगे चलकर पोप द्वारा महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हुए।

रेबले की रुचि बचपन से ही साहित्य की ओर थी। वह प्राचीन पुस्तकों का अध्ययन करता रहा। उसके अध्ययन में ग्रीक और हेब्रू के ग्रन्थ और अरेबिक और रोमन ला की पुस्तकें विशेष महत्त्व रखती थीं। लेकिन उस समय पेरिस विश्वविद्यालय द्वारा ऐसी पुस्तकों का अध्ययन वर्जित था। अतएव रेबले को अपने एक साथी के साथ कारावास का दण्ड मिला। उसका साथी तो भाग गया, किन्तु रेबले कालकोठरी में बन्द कर दिया गया। अन्त में अपने एक सहपाठी द्वारा वह मुक्त हुआ, जो उस समय एक सम्मानित पद पर था। उसी मित्र के कारण रेबले को एक उच्च पद प्राप्त हुआ।

१५३० ई० में रेबले को चिकित्सा-विज्ञान में ग्रेजुएट की उपाधि मिली। इसके बाद वह विश्वविद्यालय का लेक्चरर नियुक्त हुआ। उन्हीं दिनों उसने हास्य की एक रचना 'दी मैन हू मैरीड ए वाइफ' लिखी थी। दो वर्षों के बाद नौकरी छोड़कर वह स्वतन्त्र रूप से लायन्स नगर में चिकित्सक का कार्य करने लगा। इसी समय उसने चिकित्सा-शास्त्र पर एक अनुवादित पुस्तक प्रस्तुत की। प्रकाशित होने पर इस पुस्तक की बिक्री कुछ नहीं हुई और प्रकाशक को हानि उठानी पड़ी। रेबले ने अपने प्रका-शक से प्रतिज्ञा की कि वह एक ऐसी पुस्तक लिखकर उसे देगा, जिसका देश-विदेश में बहुत अधिक प्रचार होगा। उसने अपने प्रकाशक से जो प्रतिज्ञा की, उससे प्रकट होता है कि लेखक को अपनी प्रतिभा और सफ-लता पर पूर्ण विश्वास था।

रेबले ने अपने प्रकाशक के लिए पेन्टाग्रूयल की कहानी का प्रथम खण्ड प्रस्तुत किया। प्रकाशित होने पर इसका बहुत अधिक प्रचार हुआ और प्रकाशक को भी विशेष लाभ हुआ। लेखक ने अपने जीवन में चारो ओर मानव का घोर पतन अपनी दृष्टि से देखा था। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का गला काटने के लिए तैयार रहता था और धर्म के नाम पर भयानक अत्याचार सर्वत्र फैला था।

रेबले ने अपने अन्तिम समय में पादरी के सम्मुख जो उद्गार प्रकट

किया था वह भी व्यंग्यात्मक ही था। उसने कहा था—मेरे पास कुछ सम्पत्ति नहीं है और जो कुछ है उसे मैं गरीबों को देता हूँ।

उसके अन्तिम वाक्य थे—'खेल समाप्त हुआ, पर्दा गिरा दो।' पादरी ने रेबले के सम्बन्ध में लिखाया था कि वह मदिरा के नशे में ही मरा।

रेबले की रचनाओं पर अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है, लेकिन वह तत्कालीन संसार के यथार्थ चित्र और भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में, अपने हास्य और व्यंग्य द्वारा, अभिव्यक्त करता था। लेखक अपने उपन्यासों में अपने महान् नायक गारगैन्तुआ और उसके पुत्र पेन्टाग्रूयल को, जो पुस्तक का सर्वाधिक आकर्षक चरित्र है, तथ्य के संसार में तथा कल्पना की दुनिया में भेजता है। अपनी यात्रा में वे जीवन की विविध स्थितियों को व्यापक नाटकीय रंगमंच से देखते हैं। सभी प्रकार के तथा सभी परिस्थितियों के मनुष्यों—विशेषतः पंडित, पुजारी तथा वकालत पेशे के लोगों—की उसने कटु आलोचनाएँ की हैं। स्वयं रेबले पहले पुजारी और बाद में चिकित्सक बना। इसलिए जीवन के वास्तविक तत्त्वों से वह खूब परिचित था। उसे योग्यतासूचक चोगों तथा डिग्रियों के प्रति तनिक भी आदर न था। व्यंग्य विनोद की समस्त श्रेष्ठ रचनाओं के समान ही उसके परिहास में भी मौलिक गम्भीरता छिपी हुई है।

'रोएँदार कानूनी बिल्लियाँ' अर्थात् कानून के पंडितों की जो खिल्ली रेबले ने उड़ाई है, वह अत्यन्त कटु है और उसे वकीलों के संघ के निकट उच्च स्वर में पढ़ना खतरे से खाली नहीं है। शब्दों का भण्डार भी उसका इतना विशाल है कि वह एक चित्र के बाद दूसरा चित्र तथा उसके समानान्तर उदाहरण पर उदाहरण अंकित किये ही जाता है।

गारगैन्तुआ तथा पेन्टाग्रूयल का इतिहास शब्दों के महान् भण्डार से परिपूर्ण है। इसमें मध्ययुगीन बन्धनों से पीड़ित मानव आत्मा ने तत्कालीन धार्मिक रूढ़ियों, अव्यावहारिक सिद्धान्तों, कृत्रिम साहित्य, अवास्तविक तुच्छ प्रगति आदि के प्रति विद्रोह किया है। उसके उपन्यास में वस्तु-गठन व्यवस्थित नहीं हो पाया है। इसका कारण यह है कि यह रचना समय-समय पर, काफी अन्तर पर, लिखी गई थी और कोई व्यवस्थित योजना सामने रखकर उसका प्रणयन नहीं हो सका था। तत्कालीन साहित्य के विशेषज्ञों का कथन है कि रेबले ने अपनी रचनाओं के पूर्वार्ध को बिना पढ़े ही आगे का क्रम चलाया और प्रकाशन के पूर्व वह उसे संशोधित भी न कर सका। परिणाम-स्वरूप कथा की शृंखला एक रूप में नहीं चल सकी है। कभी कोई

पात्र बराबर सम्मुख रहता है तो कभी अचानक अन्तर्धान हो जाता है। वार्तालाप, हँसी, अनुकरण द्वारा खिल्ली उड़ाने, शब्दों के जाल बिछाने, मर्मान्तिक व्यंग्य विनोद, कृषि जीवन के मनोरम चित्रण, मित्रों के स्नेहपूर्ण चरित्रांकन, और चुटकी लेने में जितनी प्रवीणता, शीघ्रता और स्वाभाविकता से पूर्ण रेबले की लेखनी चलती है, उतनी शायद संसार के किसी अन्य लेखक की नहीं।

'गारगैन्तुआ तथा पेन्टाग्रूयल' में विचारों, कल्पनाओं, इच्छा-आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों की अविच्छन्न धारा प्रवाहित होती है। ऐसी स्थिति आह्लाद, मादकता अथवा आत्मोद्रेक के फलस्वरूप ही उत्पन्न होती है। यह कहना कठिन है कि इन तीनों में से रेबले को किससे प्रेरणा मिली। हाँ, इतना अवश्य निश्चित है कि उसकी रचनाएँ मादकतापूर्ण मस्तिष्क से प्रादुर्भूत हैं, चाहे यह मादकता आसव-जनित ही हो अथवा ईश्वर-भावना जनित। इस पुस्तक में ग्रेण्डगूसियर, उसके पुत्र गारगैन्तुआ और गारगैन्तुआ के पुत्र पेन्टाग्रूयल की जीवन-कथा तथा साहसपूर्ण यात्राओं का वर्णन है। ये सभी मद्यसेवी, लड़ाकू और झगड़ालू चरित्र के हैं। ग्रेण्डगूसियर क्रूर एवं शुष्क स्वभाव का है। गारगैन्तुआ में ये दोष अपेक्षाकृत न्यून हैं, किन्तु पेन्टाग्रूयल सभ्य, पंडित तथा कुशल है। यह पुस्तक एक नाटकीय वंशावली तथा कविताओं से प्रारम्भ होती है। ये कविताएँ गम्भीर और रहस्यवादी हैं।

प्रारम्भ की कविताओं के अनन्तर गारगैन्तुआ के जन्म की आश्चर्योत्पादक कहानी है। कहते हैं कि ग्यारहवें मास वह अपनी माता के गर्भ से ऐसा उच्च स्वर करता उत्पन्न हुआ जो मीलों से सुनाई पड़ता था—कुछ पीने को दो, कुछ पीने को दो।

इसके बाद उसके पालन-पोषण, उसके लिए बनी पोशाक, उसकी प्रारम्भिक शिक्षा, पेरिस से पलायन, पिकरोशेल से युद्ध और अन्त में 'टेलमी के गिरजाघर' के निर्माण का विवरण है।

'टेलमाईटस' की कहानी में रेबले एक दर्शन का रूप उपस्थित करता है। टेलमी में रहनेवाले स्त्री-पुरुषों का उद्देश्य है—'अपने अन्तःकरण की प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करो।' गिरजाघर के द्वार पर लगी एक सूचना के अनुसार उन व्यक्तियों का प्रवेश निषिद्ध किया गया है, जो रूढ़िवादी, कट्टर, वकील, महन्त, मद्यसेवी, असत्यवादी, आलसी, ईर्ष्यालु, क्रूर तथा अवाञ्छित लोग हैं।

इसके अतिरिक्त एक कविता भी अंकित है, जिसका आशय है—गुण, सम्मान, प्रशंसा, प्रसन्नता यहाँ दिन-रात निवास करती है। पुष्ट शरीर और प्रौढ़ मस्तिष्क वाले लोग ही यहाँ रहते हैं।

इस गिरजाघर के रहनेवाले सभी व्यक्ति सम्मानपूर्वक विवाहित, संयमी, बुद्धिमान्, कुशल, दानी, दयालु, वीर तथा न्यायप्रिय हैं। मध्य-कालीन कुछ गिरजाघरों में यह नियम था कि यदि कोई महिला वहाँ प्रवेश करती तो तत्काल ही जहाँ-जहाँ वह गई होती उतना स्थान धोकर साफ कर दिया जाता था। इस नियम के ठीक विपरीत टेलमी गिरजाघर में यदि कोई धार्मिक स्त्री-पुरुष आ जाता तो सभी स्थान अच्छी तरह धोकर साफ कर दिये जाते थे।

रेबले का प्रिय चरित्र फ्रायरजान है। यह युवक वीर और साहसी है तथा कृत्रिमता, कोरी पंडिताई आदि से घृणा करनेवाला है। यही फ्रायरजान टेलमी गिरजाघर का अध्यक्ष है। उसे अभिमान है कि उसके गिरजाघर में छूआछूतवाली गले और मुख की बीमारी के भय से कोई कभी अध्ययन नहीं करता। इसी प्रकार फ्रायरजान के माध्यम से साहित्यकार रेबले धार्मिक रूढ़ियों और विशेषकर पोप की सभी संस्थाओं पर कड़ा से कड़ा व्यंग्य तथा उपहास करने में समर्थ हो सका है। वह निश्चित रूप से गिरजाघर की बुराइयों, उसके नामधारी प्रवंचक पुजारियों एवं पंडितों का विरोधी था; किन्तु नवीन प्रोटेस्टेण्ट धर्म से वह सहानुभूति भी रखता था।

कुछ विद्वानों का मत है कि रेबले सांस्कृतिक पुनर्जागृति के युग का नहीं वल्कि मध्ययुग का साहित्यकार था। जो हो, इतना तो अवश्य है कि रेबले कुछ अंशों में नवीन जागरण का विरोधी होते हुए भी मध्य-युग में प्रचलित धार्मिक विडम्बनाओं, सामाजिक कृत्रिमता आदि का घोर विरोधी था। उसकी प्रवृत्तियाँ नवीन सुधार की ओर स्पष्ट लक्षित होती हैं, इसलिए उसे सांस्कृतिक साहित्यिक पुनरुत्थान काल का ही साहित्यकार समझना चाहिए।

मानटेन

(१५३३–१५९२ ई०)

योरोपीय साहित्य में निबन्ध ही ऐसा साहित्यिक अंग है, जिसके जन्मदाता और जिसकी जन्मतिथि निश्चित रूप से विदित है। नाटक, गीत, कहानी तथा उपन्यास, साहित्य के अङ्ग रूप में कब और किसके द्वारा प्रवर्तित, आविर्भूत हुए, इसका ठीक पता नहीं चलता। इनके जनक तथा आविष्कारक एक-एक प्रतिभाशाली के रूप में हमारे सम्मुख नहीं आते, किन्तु निबन्ध के विषय में ऐसी बात नहीं है। निबन्ध के सम्बन्ध में इतना ज्ञात है कि अमुक तिथि के पूर्व उसका अस्तित्व न था और अमुक तिथि के बाद उसका बराबर विकास होता गया।

१५७१ ई० में माइकेल-डी-मानटेन जब हाहाकारमय संसार से दूर हटकर अपनी जमींदारी के एकान्त भवन में अपने विषय में स्वयं चिन्तन करने लगा, उसी समय निबन्ध का स्वरूप प्रस्तुत होने लगा। नौ वर्ष के अनन्तर जब उसके निबन्धों का प्रथम संस्करण निकला तो उसी समय को निबंध का जन्म-काल समझना चाहिए। सर्वप्रथम निबन्धकार ही सर्वश्रेष्ठ निबन्ध-लेखक हुआ। मानटेन के पश्चात् अनेक श्रेष्ठ निबन्ध-लेखक हुए। एरिस्टाल तथा सिसरो के विवेचनों को यदि निबन्ध सी सीमा के अन्तर्गत स्वीकार किया जाय तो मानटेन से बहुत पूर्व भी निबन्ध का अस्तित्व माना जा सकता है। लेकिन हम निबन्ध-साहित्य का आचार्य यदि किसी को सम्बोधित कर सकते हैं, तो उसका अधिकारी आज भी मानटेन ही है।

एक बार सिसली के राजा रेने द्वारा अपने ही आलिखित चित्र को देखकर मानटेन ने कहा था—'प्रत्येक व्यक्ति का यह कानूनी अधिकार होना चाहिए कि वह लेखनी से अपने रूप का चित्रण करे जैसा कि इस राजा ने अपने रूप का आलेखन पेंसिल से किया है। वास्तव में यह न केवल प्रत्येक व्यक्ति का कानूनी अधिकार ही है, अपितु उसके लिए अपना चित्र आलिखित करना सुविधाजनक भी होना चाहिए। दूसरे लोग हमारे रूप की कई रेखाओं को छोड़ दे सकते हैं, लेकिन हम अपने रूप से सुपरिचित होने के कारण अपना पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकते हैं। फिर ऐसा प्रयत्न क्यों न आरम्भ किया जाय? पर जब हम प्रयत्न आरम्भ कर देते हैं तो हाथ से

लेखनी गिर पड़ती है। इसमें एक प्रकार की रहस्यात्मक और अभिभूत कर देनेवाली कठिनाई आ उपस्थित होती है।' कितनों ने साहित्य में अपने व्यक्तित्व का पूर्ण आलेखन किया है? केवल मानटेन, पेप्स और रूसो का नाम ही सामने आता है।

मानटेन के पिता का विशेष ध्यान अपने बालकों की शिक्षा-दीक्षा पर था। उसका विचार था कि बच्चे किसानों के जीवन की बातें सीखें और कृषि-कर्म का ज्ञान-परिज्ञान रखें। मार-पीटकर बालकों को पढ़ाया जाय इस विचार का वह घोर विरोधी था। यहाँ तक कि बालकों की कोमल भावनाएँ विकृत न हों, इसलिए उसने बच्चों को सबेरे जगाने के लिए विशेष संगीत की व्यवस्था की थी। उसका विचार था कि बच्चों को सहसा उठा देने से उनके मस्तिष्क को हानि पहुँचती है।

मानटेन का पिता एक योग्य और शिक्षित मध्यम वर्ग का फ्रांसीसी था। वह बोर्डो का मेयर भी था। उसने अपने बच्चों के शिक्षक के रूप में एक जर्मन को अपने यहाँ नियुक्त किया जो फ्रेंच नहीं जानता था, लेकिन लैटिन का पंडित था। मानटेन के पिता की आज्ञा थी कि घर में छः वर्ष के बच्चों के सामने फ्रेंच भाषा का प्रयोग न हो। परिणाम यह हुआ कि घर के सभी लोगों को—यहाँ तक कि नौकर, रसोईदार, माली और नर्स को भी—लैटिन सीखनी पड़ी। उस जर्मन शिक्षक ने घर में सबको लैटिन की शिक्षा दी।

जब छः वर्ष की अवस्था में मानटेन स्कूल गया, तब वह फ्रेंच की अपेक्षा लैटिन अच्छी बोल लेता था। वह बचपन में ही खेल-कूद के प्रति रुचि नहीं रखता था। वह स्वप्नवादी था, इसलिए उत्पात करने की उसकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

मानटेन का पिता उसे वकील बनाना चाहता था और उसी के आदेशानुसार कार्य होता रहा। २१ वर्ष की अवस्था में मानटेन ने वकालत आरम्भ की थी। उन्हीं दिनों कानून के क्षेत्र में एक प्रतिभाशाली युवक वकील से मानटेन की मैत्री हुई। इस मैत्री का मानटेन के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

बाद में मानटेन ने मजिस्ट्रेट का कार्य आरम्भ किया। इस कार्य में उसकी अरुचि थी। वह ऊब जाता था, किन्तु वह इतना प्रतिभा-सम्पन्न और व्यवहार-कुशल था कि उसकी प्रसिद्धि चारों ओर हो गई। हेनरी तृतीय तथा हेनरी आफ नैवारे उससे यथेष्ट प्रभावित हुए थे। अपनी

योग्यता के कारण मानटेन को कई प्रतिद्वन्द्वी झगड़ों को निपटाने का कूट-नीतिक कार्यभार सौंपा गया था। वह इन वर्षों के अपने जीवन पर अधिकतर मौन रहा, लेकिन अन्त में यह प्रकट हुआ कि नेवारे के हेनरी की ओर उसका अधिक झुकाव था। इसी बीच उसके वकील मित्र की मृत्यु हो गई। मानटेन के लिए वह अपना सुन्दर पुस्तकालय छोड़ गया था।

तेंतीस वर्ष की अवस्था में मानटेन ने अपना विवाह किया। उसकी पत्नी भी मध्यम वर्ग की थी और दहेज में यथेष्ट सम्पत्ति लेकर आई थी। वह उसकी सच्ची जीवन-सहचरी थी। उसने मानटेन की जमींदारी का सब प्रबन्ध अपने हाथों में लिया। मानटेन बहुत ही लापरवाह आदमी था, वह रुपये-पैसों के मामले में कुशल नहीं था।

विवाह के विषय में मानटेन ने लिखा है—विवाह की उपयुक्तता, औचित्य, मान और व्यवस्थितता सिद्ध है। प्रेम सुख से ही उत्पन्न होता है और वह उस सुख को और भी उद्दीप्त करता है, उसे और आनन्दमय बनाता है। मनुष्य अपने लिए ही विवाह नहीं करता, अपितु अपनी अनागत सन्तानों के लिए।

दुर्भाग्य से मानटेन की पत्नी ने छः लड़कियाँ उत्पन्न कीं। उनमें भी एक-एक कर पाँच चल बसीं, अन्त में केवल एक ही पुत्री जीवित रही।

१५६८ ई० में मानटेन के पिता का देहान्त हुआ। उसके बाद दो वर्षों तक वह पेरिस के न्यायालय में एक उच्च पद प्राप्त करने की लालसा में भटकता रहा। उन्हीं दिनों कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट धर्म के माननेवालों में आपसी युद्ध हो रहा था। वह अपनी शान्ति-प्रिय प्रकृति के कारण क्रूरता और हत्या से घृणा करता था। धार्मिक युद्ध छिड़ जाने पर वह अपनी जमींदारी वाले स्थान पर चला गया और उसने सार्वजनिक जीवन का परित्याग कर दिया।

१५७२ ई० से ही मानटेन ने अध्ययन तथा निरीक्षण कर उस पर टीकाएं लिखनी प्रारम्भ कीं। अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों की टीका और व्याख्या करते-करते मानटेन में आत्म-परीक्षण की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। किसानों तथा व्यवसायी-वर्ग से अपने सम्पर्क के विषय में भी उसने संस्मरण लिखना प्रारम्भ किया। अन्त में उसने अपने स्वभाव, चरित्र, भावना, विचार आदि का परीक्षण कर उन्हें लिपिबद्ध किया। १५८० ई० में उसके निबन्धों के प्रथम दो खण्ड प्रकाशित हुए। इसकी एक प्रति उसने हेनरी तृतीय के पास भी भेजी। इसके बाद ही उसने परिभ्रमण करने का निश्चय

किया। स्विटजरलैण्ड, जर्मनी और इटली की यात्रा करते समय मानटेन ने एक डायरी प्रस्तुत की। उसके निबन्धों की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी, इसके फल-स्वरूप मजिस्ट्रेटों और कार्डिनलों द्वारा उसका सर्वत्र समादर हुआ। धार्मिक पंडितों ने उससे उसके निबन्ध के धर्म-विरोधी कुछ अंशों को निकालने का अनुरोध किया था।

मानटेन ने रोम तथा वेनिस की उच्च बारवनिताओं की रहन-सहन एवं समस्या का भी निकट से अध्ययन किया था। अपने इन पर्यवेक्षणों और निरीक्षणों को उसने भली भाँति लिखित रूप में प्रस्तुत किया। फ्रांस लौटने पर वह बोर्डो का मेयर निर्वाचित हुआ। इस पद पर रहकर उसने अनेक सुधार कर कीर्ति अर्जन की। हेनरी आफ नैवारे जब गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ तो मानटेन के इलाके दो बार गया। १५८७ ई० में प्लेग फैला, जिसके कारण मानटेन, नगर आकर, अपना कार्य जारी न रख सका। इसके लिए उसकी बड़ी निन्दा हुई। अपने शान्त स्वभाव के कारण मानटेन राजनीतिक जीवन से ऊब चुका था और ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। उसने अपने पद के कार्य-भार से मुक्ति पायी।

मानटेन के दो मुख्य शिष्य थे—एक था पेरी चैरान और दूसरी थी एक जर्मन महिला। इसी महिला पर मानटेन ने अपने अप्रकाशित निबन्धों का सम्पादन-संशोधन-भार छोड़ दिया था। जब वह अपने निबन्धों का एक नवीन संस्करण पेरिस में प्रकाशित करा रहा था, उस समय उस पर कैथोलिक लीग ने अभियोग लगाकर उसे जेल में बन्द कर दिया। किन्तु कैथराइन-डी-मेडिसी की आज्ञा से आठ घण्टे के भीतर ही वह छोड़ दिया गया।

मानटेन की सर्वश्रेष्ठ कृति 'एपालाजी आफ रेमाण्ड सीवाण्ड' है। उसमें प्रत्येक प्रकार की कट्टरता का विरोध है। जीवन में उसने जो व्यंग्य-विनोद के तीखे बाण चलाये हैं, उनमें सबसे गंभीर घाव करनेवाले तीर इसी पुस्तक में हैं। इसके लिए उसे कैथोलिक और रिफार्मेशन दल के लोगों की पारस्परिक हत्या से प्रेरणा मिली। इन पारस्परिक संघर्षों में कुछ ही वर्षों में अस्सी लाख व्यक्ति मरे, नौ नगर धराशायी हुए, दो सौ पचास गाँव जलाये गये और फ्रांस का सम्पूर्ण देहाती प्रदेश मानो बूचड़खाना हो गया था। मानटेन के निवासस्थान पर दो बार आक्रमण हुआ, पर उसने अपना सन्तुलन बनाये रखा और उसकी कोई हानि नहीं हुई।

मानटेन की महत्ता प्रायः सम्पूर्ण फ्रेंच गद्य-साहित्य में प्रतिबिम्बित है।

उसने और रेबले ने मिलकर फ्रेंच भाषा को एक संस्कृत रूप दिया। बाद में फ्रेंच एकेडेमी ने इस भाषा का एक स्तर निर्धारित किया। मानटेन ने निबन्ध को जन्म दिया। बौद्धिक अन्वेक्षण का वह जनक है, जिसने बाद में फ्रांसीसी क्रान्ति को जन्म दिया।

मानटेन शैली की स्पष्टता और सरलता का पक्षपाती था। वह उन्हीं शब्दों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता था, जो पेरिस के बाजारों में प्रचलित थे। उसी ने स्त्री-पुरुष की समता को सर्वप्रथम घोषित किया। उसने स्त्रियों के उस आदर्शीकरण का विरोध किया, जिसके कारण उनको असीम बन्धनों में रहना पड़ा।

मानटेन ने महापुरुषों और जन-साधारण के बीच का सम्बन्ध बताकर मानव-सम्मान को अत्यधिक ऊपर उठाया। उसने आत्मा की गुहा में प्रवेश कर उसको जानने और समझने का प्रयत्न किया। मानटेन ने हृदय में छिपी हुई भावनाओं को खोजकर उनको शब्दों में परिवर्तित कर जगत् के सामने प्रस्तुत किया। वह कलाओं में सर्वश्रेष्ठ कला, जीवन की कला, का महत्तम कलाकार था।

मानटेन का यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है कि ज्ञान निश्चित नहीं हो सकता। कोई वस्तु, चाहे वह मन हो या बुद्धि, अपरिवर्तनीय नहीं है, इसलिए तत्सम्भूत ज्ञान कभी स्थिर और निश्चित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, यदि कोई वस्तु स्थिर और निश्चित भी हो तो मानव मन और बुद्धि इतनी विविध और परिवर्तनशील है कि हम उस वस्तु के विषय में कोई स्थिर और निश्चित मत नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में साहित्य-समालोचना का एक सिद्धान्त कैसे स्थिर किया जा सकता है? कृतियाँ एक जुलूस के रूप में मन के शीशे के सामने से गुजरती हैं और क्योंकि यह जुलूस बहुत लम्बा है, इस बीच शीशे में परिवर्तन आ जाता है। जब दूसरी बार वही कृतियाँ उसमें से गुजरती हैं तो उनका प्रतिबिम्ब भिन्न हो जाता है।

मानटेन ने यह महान् अन्वेषण किया कि जीवन एक जीवन्त वस्तु है। जीवन एक साहसिक यात्रा है और उसका परिणाम अनिश्चित होने पर भी आनन्ददायक है। उसका यह 'व्यक्ति का नियमित आनन्द' किसी भी दर्शन की तुलना में आ सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि मानटेन का ग्रन्थ उसके व्यक्तित्व का ही प्रति-फलन था या यह भी कहा जा सकता है कि उसका ग्रन्थ उसका ही दूसरा रूप था। उसने पाठकों को शिक्षा देने से अस्वीकार किया। वह उपदेश

भी नहीं देता था। वह सदैव कहा करता था कि वह जनसाधारण की तरह ही है। उसका संपूर्ण प्रयत्न अपने व्यक्तित्व को आलिग्वित कर देना, अपने विचारों का दूसरों तक वहन कर देना, सत्य कह देना, था और यह कल्पना से अधिक कठिन मार्ग का अनुसरण करना है।

अपने को दूसरे तक वहन करने से अधिक कठिन काम यह है कि हम 'हम' ही बना रहे। हमारा अन्तर्जीवन हमारे इस बाह्य जीवन से किसी प्रकार मेल नहीं रखता। यदि हम अपनी अन्तरात्मा से पूछें कि वह क्या सोचती है, तो वह यही कहेगी---जो कोई नहीं सोचता।

मानटेन ने लिखा है---'मैं शिक्षा नहीं देता, मैं केवल कह जाता हूँ।' वह दूसरों के विषय में कैसे कुछ कह सकता था जब उसके ही अनुसार वह स्वयं अपने लिए दिनानुदिन अज्ञेय होता जाता है। सम्भवतः उसका एक सिद्धान्त यह था कि व्यक्ति नियम न बनावे। जिस व्यक्ति को हम आदर्श मानकर चलें, वह भी सम्भवतः सबसे निर्बल प्रकृति का हो। मानटेन का यह भी कहना है कि किसी के साथ बँधकर रहना किसी प्रकार अस्तित्व बनाये रखना भले ही हो, लेकिन उसे जीना कभी नहीं कह सकते। कानून तो एक व्यवस्था मात्र है, वह मानव भावनाओं और अन्तः-प्रेरणाओं को समझने की शक्ति नहीं रख सकता। स्वभाव और रस्म उन निर्बल प्रकृति के लोगों के लिए है, जो उन्मुक्त होकर विचरण नहीं कर सकते।

आजकल विचार-स्वातंत्र्य के युग में मानटेन का अनुभव कितना महत्त्व रखता है। हम अपनी भावनाओं के चक्र, अन्तरात्मा की प्रेरणाओं, परस्पर भ्रामक कल्पनाओं का अध्ययन करें। प्रत्येक क्षण हमारी आत्मा हमारे लिए एक नूतन आश्चर्य प्रस्तुत करती है। गति और परिवर्त्तन हमारे जीवन का सार है। जीवन के सम्बन्ध में दृढ़ता, या दूसरे के साथ एकरूपता स्थापित करना मृत्यु है। हम अपने मस्तिष्क के विचारों को कहते जायँ चाहे वे परस्पर कितने ही विरोधी हों। उनमें से जो सर्वथा तथ्यहीन हैं उनको बाहर फेंक दें और जो संसार की दृष्टि में तथ्यहीन होकर भी अपनी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण हों उनको धारण करें; इस बात की चिन्ता ही न करें कि संसार क्या सोचेगा? क्योंकि सबसे महत्त्वपूर्ण हमारा जीवन है और निस्सन्देह व्यवस्था भी।

मानटेन ने सभी प्रकार के व्यक्तिगत मतों या विधानों की हँसी उड़ाई है। उसने मनुष्य के दुःख, शोक और मानव-प्रकृति की निर्बलता पर व्यंग्य

कसे हैं। फिर क्या हम धर्म का आश्रय लेकर व्यक्ति-स्वातंत्र्य का नियन्त्रण करें? इन विषयों पर मानटेन कुछ निश्चित मत नहीं देता। वह सदैव 'स्यात्' और 'मैं सोचता हूँ' जैसे शब्दों का प्रयोग कर मनुष्य की अज्ञानता पर जोर देना चाहता है। वह कहता है—'दिव्य आदेश का पालन अवश्य करें पर मानव जीवन में एक दूसरा पथ प्रदर्शक भी है, जिसकी बात सुन लेनी चाहिए। वह उसकी अन्तरात्मा है।' मानटेन उसे 'अन्तर का स्वामी' कहता है।

सचमुच मानटेन आत्मा की पुकार को भली भाँति समझता है। वह लिखता है—अपने मित्रों से वियुक्त होने के दुःख से बचने के लिए यदि कुछ सन्तोष-स्वरूप हो सकता है तो यही कि हमने उनसे कुछ नहीं छिपाया, अत्यन्त स्पष्ट रूप से अपने विचारों को उनके सम्मुख रखा, यह मेरा निश्चित अनुभव है।

लेखकों के जीवन में प्रायः निराशा और द्वन्द्व ही विशेष रूप से दिखाई पड़ता है; लेकिन मानटेन अपने जीवन से सन्तुष्ट सा दिखाई पड़ता है। उससे पूछा गया कि यदि तुम फिर जन्म लो तो क्या करोगे? उसने उत्तर दिया, इसी तरह जीवन व्यतीत करूँगा जैसा कि कर चुका हूँ।

मानटेन बहुत दिनों तक बीमार था। उसे पथरी का रोग था। अपने अन्तिम वर्षों में उसने मृत्यु पर बहुत कुछ लिखा। मृत्यु के विषय में उसके विचार दृढ़ थे। वह लिखता है—कुछ ही लोग ऐसे हैं जो मरते समय यह सोचते है कि वह उनका अन्तिम क्षण है। आशा इसी समय मनुष्य को सर्वाधिक प्रलुब्ध करती है। वह हमारे कानों में कहती है—दूसरे लोग इससे भी अधिक बीमार होकर भी नहीं मरते। तुम्हारी स्थिति उतनी चिन्ताजनक नहीं, जितना कि लोग समझते हैं। इससे हम अपने जीवन को अधिक महत्त्व देने लगते हैं; मानों हमारे चले जाने पर विश्व ही शून्य हो जायगा।

विद्वानों का कथन है कि मानटेन ने प्लुटार्क से प्रेरणा प्राप्त की थी और शेक्सपीयर ने मानटेन और प्लुटार्क दोनों ही से अपनी प्रतिभा प्रखर की थी।

इसमें सन्देह नहीं कि सभी कलाओं में सर्वोच्च जीवन-कला का मानटेन महान् कलाकार था।

सर्वेन्टीज़

(१५४७–१६१६ ई०)

योरोप के महान् लेखकों में सर्वेन्टीज से अधिक रहस्यमय जीवन अन्य किसी साहित्यकार का नहीं था। असफलता और अभाव से वह सदैव द्वन्द्व करता रहा। उसका समस्त जीवन हत्या, अपराध और ऋण के भार में उलझा हुआ था। अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ही उसने 'डॉन क्विक्जोट' का निर्माण किया था। योरोप के उपन्यास-साहित्य में इसका सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक स्थान माना जाता है।

सर्वेन्टीज का पिता एक सम्पन्न व्यक्ति था, और ऐश्वर्यशाली जीवन व्यतीत करने का अभ्यस्त हो गया था; बाद में प्रतिकूल परिस्थिति आने पर भी वह समझता था कि उसे सम्पन्न की तरह जीने का अधिकार है। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे बहुत-सा ऋण लेने के अपराध में कई बार जेल जाना पड़ा। सर्वेन्टीज अपनी रचना 'डॉन क्विक्जोट' में इस बात का संकेत करता है। इसमें डॉन क्विक्जोट का भतीजा अपने सिर-फिरे चाचा (डॉन क्विक्जोट) को बताता है कि आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर व्यर्थ 'हिदालगो' (असम्पन्न कुलीन) का रोब जमाने से कुछ नहीं हो सकता।

उन दिनों स्पेन के कानून में यह नियम था कि किसी हिदालगो को ऋण न चुकाने के अपराध में जेल नहीं भेजा जा सकता था। इस प्रकार सर्वेन्टीज का पिता जेल से तो छूटा; किन्तु फिर उस पर यह संकट आया

कि वह अपने को हिदाल्गो प्रमाणित करे। इस बीच वह फिर जेल भेज दिया गया। अन्त में प्रमाण प्रस्तुत करने पर उसे मुक्ति मिली। फिर एक नयी समस्या उपस्थित हुई। उसे कानून के अनुसार किसी व्यापारी से रुपया लेकर ऋण चुकाना पड़ा। इससे उस पर बड़ा भारी बोझ लदा। उसके परिवार में उसकी स्त्री और सात सन्तानें थीं। आर्थिक कठिनाई के कारण उसे नाई का काम करना पड़ा; किन्तु किसी तरह छुटकारा नहीं मिला और अन्त में ऋण के लिए उसे फिर जेल जाना पड़ा।

सर्वेन्टीज की माँ अत्यन्त धैर्यशालिनी और विपत्ति का वीरता के साथ सामना करनेवाली स्त्री थी। उसके विवाह के पश्चात् ही परिवार की स्थिति बिगड़ गयी थी। सर्वेन्टीज के पिता को स्वयं अपनी जीविका उपार्जित करनी पड़ती थी।

मिगुएल दे सर्वेन्टीज की शिक्षा कुछ अधिक नहीं हुई। आल्काला में रहकर भी वहाँ के विश्वविद्यालय में वह शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका। कुछ विद्वानों का कहना है कि उसने उस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त, सर्वेन्टीज ने स्वयं लिखा है कि उसे लैटिन नहीं आती थी और उन दिनों स्पेन के विश्वविद्यालय में केवल लैटिन ही पढ़ायी जाती थी।

बचपन में ही आश्रय-हीन होकर सर्वेन्टीज एक धनी कार्डिनल के परिवार में सम्मिलित हुआ। कार्डिनल ने सर्वेन्टीज की शिक्षा का भार अपने ऊपर इसलिए लिया कि वह एक कुलीन वंश का था और भविष्य में कुशल होने पर उससे सहयोग मिलने की आशा थी। सर्वेन्टीज एक सम्बन्धी की भाँति उस परिवार में निवास करने लगा। वहाँ रहते हुए दुर्घटना के कारण सर्वेन्टीज पर हत्या का अभियोग लगाया गया। यह घटना बड़ी विचित्र है।

कार्डिनल का एक पुत्र था जो अवस्था में सर्वेन्टीज से भी छोटा था। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। कार्डिनल का पुत्र एक युवती से प्रेम करने लगा था। वह युवती सामाजिक स्तर में लड़के से निम्न थी और उसका पिता ऐसे विवाह की स्वीकृति नहीं दे सकता था। इसलिए गुप्त रूप से वह उससे मिलने जाया करता था। एक दिन सर्वेन्टीज और कार्डिनल का लड़का दोनों उस युवती से मिलने जा रहे थे। रात में उस प्रेमिका के घर के पास ही दो व्यक्तियों ने उन पर आक्रमण किया। इनमें एक युवती

का भाई और दूसरा उसका अन्य प्रेमी था। दोनों ओर से तलवारें चलीं और आक्रमण करनेवाले मारे गये।

दोनों ने इस हत्या-काण्ड को गुप्त रखना चाहा; किन्तु अन्त में भाग-कर उन्हें दूसरे देश में जाना पड़ा। उस समय सर्वेन्टीज की अवस्था २२ वर्ष की थी। १२ वर्षों तक वह स्पेन नहीं लौट सका, और फ्रांस जाकर चार्ल्स पंचम की सेना में भर्ती हो गया। कुछ समय बाद वह नाप्ल की एक सेना में चला गया जो स्पेन, वेनिस आदि की सेनाओं के साथ-साथ लड़ने-वाली थी। उक्त सेना में उसका भाई रोदेरिगो भी था। दो वर्ष बाद सर्वेन्टीज ने स्पेन-तुर्क-युद्ध में भाग लिया, जिसमें तुर्क साम्राज्यवादियों की सेनाओं को बुरी तरह पराजित होना पड़ा था। इस युद्ध में सर्वेन्टीज की बायीं भुजा जाती रही।

तीस वर्ष की अवस्था में सर्वेन्टीज सेना के काम से अवकाश लेकर जहाज से स्पेन लौट रहा था। मार्ग में अलजेरिया के समुद्री डाकुओं ने उस जहाज पर आक्रमण किया और दूसरों के साथ सर्वेन्टीज को भी बन्दी बना लिया। सर्वेन्टीज के पास एक महत्त्वपूर्ण प्रशंसापत्र था, जिसे तलाशी में देखकर डाकुओं ने समझा कि सर्वेन्टीज धनी परिवार का है। उन लोगों ने निश्चय किया कि पाँच सौ ड्यूकाट मिलने पर ही सर्वे-न्टीज को मुक्त करेंगे। इतना धन सर्वेन्टीज के परिवार में कभी नहीं था। इसलिए पाँच वर्षों तक वह बन्दी बना रहा। लेकिन वहाँ पर वह सुखी था। उससे अधिक काम नहीं लिया जाता था। उसने स्वयं लिखा है कि उस पर मार भी नहीं पड़ती थी।

सर्वेन्टीज वहाँ नाटक लिखा करता था और उसके साथी कैदी उन नाटकों को खेला करते थे। इसी प्रकार उसने एक बार अपने साथी कैदियों को वहाँ से भगा देने में सफलता प्राप्त की थी। एक पादरी कुछ कुलीनों को मुक्त करने के बारे में बातचीत करने के लिए समुद्री डाकुओं के बीच भेजा गया। सर्वेन्टीज को देखकर उसे उस पर स्नेह उत्पन्न हुआ और उसने उसे छुड़ाना चाहा। उसने किसी प्रकार मुक्ति के लिए निर्धारित रकम का एक तिहाई स्पेन के राजा से लिया। कुछ सहायता संस्थाओं से प्राप्त की और शेष रकम सर्वेन्टीज की साहसी माता ने एकत्र की। इस प्रकार जब वह पादरी रकम लेकर उसे छुड़ाने पहुँचा तो उसने देखा कि सर्वेन्टीज लोहे के सीकचों में बन्द करके जहाज पर चढ़ा दिया गया था। वह कुस्तुनतुनिया के बाजार में दास के रूप में बिकने के लिए ले जाया जा रहा था। ठीक समय पर पादरी वहाँ पहुँचा और उसे मुक्त कराया।

स्पेन लौटने पर सर्वेन्टीज ने सैनिक जीवन छोड़कर साहित्य-साधना आरम्भ की। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसने कविताएँ, नाटक, गद्य, उपन्यास और साहित्य-समालोचनाएँ लिखीं। उसके दिन बड़े कष्ट में बीतते थे, इसलिए उसने कई प्रशंसात्मक रचनाएँ भी लिखीं; किन्तु वे सब व्यर्थ हुईं। दूसरों के नाम पर भी उसने रचनाएँ कीं; पत्र में विज्ञापन तक लिखे।

सर्वेन्टीज दरिद्र होने पर भी अपनी विलासी प्रवृत्ति नहीं छोड़ सका। आना फ्रांसिसका नाम की एक अभिनेत्री से उसका सम्बन्ध हो गया था। १५८४ ई० में इस सम्बन्ध से इजाबेल नाम की एक लड़की उत्पन्न हुई। उसी वर्ष एक दूसरी विधवा से सर्वेन्टीज ने विवाह किया। इस स्त्री के पास जमींदारी, बगीचा-फार्म, एक सुन्दर मकान और शराब की दुकान आदि संपत्ति थी। विवाह के बाद सर्वेन्टीज ने स्वयं सब संपत्ति की देख-भाल करना आरंभ किया और निश्चिन्त होकर लिखने के कार्य में लग गया। कुल मिलाकर उसने तीस नाटक लिखे। उसकी रचनाओं पर व्यंग्य और कटु आलोचनाएँ प्रकाशित नहीं हुईं, फिर भी उसे विशेष आर्थिक लाभ नहीं हुआ।

उसके दुर्भाग्य का चक्र फिर चला। परिस्थितियों के कारण विवश होकर उसे सरकारी खजाने में नौकरी करनी पड़ी। वहाँ इतना अधिक कार्य करना पड़ता था कि सर्वेन्टीज उसे सँभाल नहीं पाता था। उसने सरकारी रुपये एक बैंक में जमा कर दिये थे—वह बैंक दिवालिया हो गया। अन्त में सर्वेन्टीज पर चोरी का अभियोग लगाया गया और वह जेल भेज दिया गया। चार महीने बाद वह इस शर्त पर छोड़ा गया कि वह पूरा रुपया वापस कर दे, लेकिन उसने कभी रुपया वापस नहीं किया।

१५९७ ई० से १६०२ ई० तक की उसकी गति-विधि ज्ञात नहीं है। ऐसा पता लगता है कि १६०२ ई० में वह फिर ऋण के मामले में फँस गया था और फिर दो वर्षों के लिए लुप्त हो गया।

सत्तावन वर्ष की अवस्था में वह अपनी अमर कृति 'डॉन क्विक्जोट' के साथ प्रकट हुआ। इस पुस्तक से उसे बहुत बड़ी सफलता मिली। इसके छः संस्करणों की एक साथ माँग हुई और दूसरी भाषाओं में इसके अनुवाद भी होने लगे। किन्तु उन दिनों स्पेन में 'कापीराइट' की कोई व्यवस्था नहीं थी, इसलिए कुछ प्रकाशकों ने चोरी से इस पुस्तक को छापकर खूब धन पैदा किया और लेखक के दुर्भाग्य ने यहाँ भी उसका साथ दिया।

सर्वन्टीज इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि मनुष्य की प्रतिभा उसके

जीवन की किसी भी अवस्था में प्रस्फुटित और विकसित हो सकती है। लेखक की सत्तावन वर्ष की अवस्था में लिखे गये इस उपन्यास के सम्बन्ध में वाल्टर राले ने कहा था—यह संसार का सबसे अधिक बुद्धिमत्ता-पूर्ण और अद्भुत ग्रन्थ है।

'डॉन क्विक्जोट' भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लोगों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है। नवयुवक इसकी कथा के अद्भुत तत्त्व के लिए इसे पढ़ते है,प्रौढ़ व्यक्ति उसमें मनुष्य की निर्बल प्रकृति और उसकी विफलताओं को देखकर हँसने की जगह रोने लगते है। कुछ लोगों की धारणा है कि इस पुस्तक को समझने के लिए मनुष्य को उस अवस्था तक पहुँचना चाहिए जब उसमें अस्थिरता नहीं रह जाती।

सर्वेन्टीज मानो व्यंग्य का अवतार था। उसके व्यंग्य में इतनी गम्भीरता है कि लोगों को उसे समझने में कठिनाई हो सकती है। उदाहरणतः 'डॉन क्विक्जोट' के ग्यारहवें अध्याय में सर्वेन्टीज 'डॉन क्विक्जोट' के मुँह से एक बहुत लम्बा-चौड़ा भाषण कराता है। यह स्पष्ट है कि लेखक ने इसके द्वारा उन लोगों पर व्यंग्य कसा है जो यह कहते हैं कि प्राचीन युग सुवर्ण-युग था, वह स्वर्ग था, इत्यादि। लेकिन लोगों ने सर्वेन्टीज के इस व्यंग्य को उसका गम्भीर उपदेश समझ लिया और स्पेन में विद्यार्थियों के सामने, प्रौढ़ भाषा और उच्च विचार के उदाहरण के रूप में, डॉन क्विक्जोट का वह भाषण कण्ठस्थ कराया जाने लगा!

सर्वेन्टीज में व्यंग्य करने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही दिखाई पड़ती है। जब वह युवा था उन दिनों स्पेन में प्रेम और वीरता सम्बन्धी कथा-कहानियाँ लिखने की प्रथा थी। पाठक ऐसी रचनाओं में रस लेते थे। सर्वेन्टीज ने भी एक ऐसी रचना लिखी जिसका नाम—'गालातिया' रखा; किन्तु वह उसमें सफल न हो सका। उसकी असफलता का कारण यह था कि उसमें हास्य, व्यंग्य आदि इतने अधिक थे कि वे किसी प्रेम-कहानी को एक सीधी धारा से आगे बढ़ा नहीं पाते थे।

सर्वेन्टीज शेक्सपीयर का समकालीन था और अपने-अपने देशों के इन दोनों बड़े लेखकों की मृत्यु एक ही वर्ष में हुई।

सर्वेन्टीज धुआँधार लिखता गया। उसने 'एक्जेम्प्लेरी नॉवेल्स' लिखे। देखने से मालूम होता है कि इसमें नैतिक शिक्षा दी गयी है पर वास्तव में इसमें नैति-कता की हँसी उड़ाई गयी है। वह दूसरी रचनाओं में लगा रहा, लेकिन उसका विशेष ध्यान 'डॉन क्विक्जोट' के लिखने में ही था। इसमें उसे प्रथम भाग के समा-लोचकों से अपने गुण-दोष समझने में पर्याप्त सहायता मिल रही थी। कहानी-लेखक के सभी पात्र—स्त्री या पुरुष, नायक या प्रतिनायक—उसकी आत्म-कहानी से सम्बद्ध रहा करते हैं। इस दृष्टि से सर्वेन्टीज की महती रचना के प्रमुख पात्र, 'डॉन क्विक्जोट' और सांको पांजा उसके अपने ही जीवन की प्रतिच्छाया हैं।

सर्वेन्टीज़ जिन दिनों 'डॉन क्विक्जोट' का दूसरा भाग लिख रहा था, उस समय उसे एक बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। वह एक गन्दी गली में रहता था। एक दिन उसके दरवाजे के सामने झगड़ा हुआ और उसमें एक आवारा मार डाला गया। पुलिस ने सपरिवार सर्वेन्टीज को इस सन्देह पर गिरफ्तार कर लिया कि उसकी पुत्री इजाबेल की चरित्र-भ्रष्टता के कारण ही यह हत्या हुई थी। वह अपने परिवार के साथ जेल भेज दिया गया। कुछ समय बाद उसने यह प्रमाणित किया कि उस घटना से उसका और उसके परिवार का कोई सम्बन्ध नहीं था। तब कहीं वह मुक्त हुआ।

इस बीच में सर्वेन्टीज की ख्याति केवल स्पेन में ही नहीं, समस्त योरोप में फैल गयी थी; किन्तु फिर भी उसे अपना जीवन अत्यन्त दरिद्रता में व्यतीत करना पड़ता था। कभी-कभी तो भूखों मरने की स्थिति आ जाती थी।

वह वृद्ध हो चुका था और जलोदर रोग से पीड़ित था, फिर भी उसमें कार्य करने का वही उत्साह था। अपनी बासठ वर्ष की अवस्था में वह लिखता है—उसका मुँह टेढ़ा है, बाल अखरोट के रंग के हैं, बरौनियाँ सीधी और स्थिर, चमकती हुई आँखें, काँटे की तरह नाक, फिर भी ठीक अनुपात की, दाढ़ी चाँदी की-सी यद्यपि बीस वर्ष पहले वह सुनहली थी, बड़ी-बड़ी मूँछें, छोटा सा मुँह, दाँत विशेष महत्त्व के नहीं, क्योंकि छः बच रहे हैं, वे भी अच्छी स्थिति में नहीं हैं, और एक दूसरे से मिलते भी नहीं हैं। शरीर न बहुत बड़ा ही है न बहुत छोटा; रंग गोरा, हाँ, भूरा नहीं, गोरा! कन्धे कुछ भारी से और पैरों के जितने फुर्तीले नहीं।

१६१५ ई० में उसने 'डॉन क्विक्जोट' का दूसरा भाग प्रकाशक को दिया। अंग्रेजी में उसका अनुवाद भी प्रकाशित हो गया। १६१६ ई० की २३ अप्रैल को सर्वेन्टीज का देहान्त हुआ। उसकी कब्र का कोई पता नहीं चलता। इतना बड़ा कलाकार न जाने कहाँ दफना दिया गया!

सर्वेन्टीज अपने युग के लिए वरदान था या अभिशाप, इस विषय पर दो मत हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि निस्सन्देह वह योरोपीय श्रेष्ठता-वाद का प्रचारक है, उसने अपने 'डॉन क्विक्जोट' उपन्यास की रचना कर योरोपीय वीरता और साहसिक कृत्यों का अन्त कर दिया, उन पर निर्मम प्रहार किया। दूसरी ओर ऐसे लोग हैं, जो समझते हैं कि सर्वेन्टीज की रचना ने योरोपीय सामन्तवाद पर मरणान्तक वार किया और इसलिए वह अपने युग का क्रान्तिदर्शी और क्रान्तिकारी साहित्यकार था।

इस विषय पर प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार गाल्सवर्दी और समालोचक

फोर्ड मेडोक्स के बीच इतना विवाद चल पड़ा था कि गाल्सवर्दी फोर्ड को मारने तक को उद्यत हो गया था। गाल्सवर्दी सर्वेन्टीज को मानवता के लिए एक वरदान समझता था और फोर्ड के अनुसार वह योरोपीय संस्कृति और उसकी श्रेष्ठता के लिए अभिशाप था।

'डॉन क्विक्जोट' न्याय और मनुष्य के आदर्श की खोज पर हास्य है। लेखक बताता है कि मनुष्य के आदर्श की खोज में प्रतिदिन की यथार्थता कितनी बड़ी बाधा उपस्थित करती है। वह स्पष्ट करता है कि वास्तविक धन—उत्पादन—के अभाव में सोने का कोई मूल्य नहीं रह जाता। उसके अभाव में मनुष्य को रोटी के एक टुकड़े के लिए भी दर दर भटकना पड़ता है। उस अवस्था में कुलीन-अकुलीन, सम्पत्तिशाली और सम्पत्ति-हीन, समान रूप से विपन्न जीवन व्यतीत करते हैं।

'डॉन क्विक्जोट' उपन्यास का प्रधान पात्र क्विसादा है, जिसको बपौती के रूप में एक जमींदारी मिली है। वह एक नौकरानी और अपनी भतीजी के साथ रहता है। उसका मांस सूख गया है, गाल पिचक गये हैं। वह जीवन की यथार्थता से तंग आकर 'नाइटों' की जीवनी पढ़ने में लग जाता है।

'मेरी बुद्धि विपरीत पड़नेवाले अनौचित्य के कारण इतनी कुण्ठित हो गयी है कि मैं स्वभावतः तुम्हारे सौन्दर्य को दोष देता हूँ।' ऐसे वाक्यों से क्विसादा आनन्द-मग्न हो जाता है। वह अपने हाथ पड़नेवाली सभी पुस्तकों को पढ़ जाता है। यहाँ तक कि वह अपनी खेती की जमीन बेचकर उस धन से पुस्तकें खरीदना आरम्भ करता है। अपनी खेती सँभालने की जगह वह गाँव के एक शिक्षित पादरी से और एक नाई से लड़ता है। वह उन लोगों से इस पर विवाद छेड़ देता है कि इँग्लैण्ड का कौन सा 'नाइट' अच्छा था। इस प्रकार के अध्ययन और विवाद से वह अपनी संपूर्ण बुद्धि खो देता है। वह समझता है कि एक 'नाइट' बनकर संसार में निकल जाना चाहिए और प्राचीन नाइटों की भाँति कार्य करना चाहिए।

उसने उत्तराधिकार के रूप में जो एक सैनिक वर्दी प्राप्त की है, उसमें शिरस्त्राण की कमी है, इसलिए वह कागजों को एक साथ लपेटकर शिरस्त्राण बना लेता है। उसकी पुरानी तलवार की मूँठ टूटी हुई है, इसलिए वह अपने हथियार को गोंद और रस्सी से किसी प्रकार ठीक कर लेता है। उसका घोड़ा अस्थि-चर्मावशेष है, पर वह उसे सिकन्दर के घोड़े की तरह बहादुर समझता है और उसके नामकरण के लिए चार दिन लगा देता है। अन्त में वह घोड़े का नाम रोजिनांत रखना पसन्द करता है। वह स्वयं

अपने विवसादा नाम से असन्तुष्ट है। उसे स्मरण आ जाता है कि एक पूर्वकालीन नाइट को भी अपने शुष्क नाम से सन्तोष नहीं था और उसने अपने नाम में देश और राजा के नामों को जोड़ लिया था, इसलिए वह भी अपने को 'डॉन क्विक्जोट दे ला मांशा' कहता है।

इस प्रकार पूर्ण सजधज के साथ डॉन क्विक्जोट अपनी वीरता दिखाने के लिए निकल पड़ता है। दिन भर चलने के बाद भी उसे कोई अन्याय नहीं दिखाई पड़ा, जिसको दूर कर न्याय की स्थापना करने की आवश्यकता पड़े। उसे कोई अजगर नहीं मिला जिसकी वह हत्या करे, कोई कुमारी नहीं मिली जिसका सतीत्व संकट में पड़ा हो। अन्त में वह एक होटल में पहुँचता है। वहाँ एक मनहूस व्यक्ति होटल का मालिक है और उसकी दो वेश्या दासियाँ हैं। वह उनको अत्यन्त सुन्दर महिलाएँ कहता है जो उस किले (होटल) के द्वार पर हवाखोरी कर रही हैं। उसमें सहसा यह भावना जागती है कि वास्तव में वह नाइट नहीं है, इसलिए वह होटल-वाले को यह अधिकार देता है कि वह उसे नाइट की उपाधि दे। होटल-वाले को पैसे से काम है, वह उसकी बात मानकर वैसा ही करता है।

डॉन क्विक्जोट के सामने शीघ्र ही जीवन की यथार्थता प्रकट होती है। होटलवाला भोजन का बिल प्रस्तुत करता है, लेकिन उसके पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है। वह विचार करता है कि उसने पुस्तकों में कहीं भी नहीं पढ़ा कि साहस-पूर्ण कृत्यों के लिए प्रयाण करनेवाले नाइटों को कभी धन की आवश्यकता पड़ती है। होटलवाला उसे विश्वास दिलाता है कि वास्तव में धन की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार उसे संसार के दुर्गुणों का प्रथम पाठ मिलता है।

डॉन क्विक्जोट का एक पड़ोसी सांकोपांजा है। वह ईमानदार है; किन्तु उसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द है। डॉन क्विक्जोट उसे अपनी सम्भावित वीरता-पूर्ण विजय की बातें समझाता है और उसे यह प्रलोभन देता है कि उसे सर्वप्रथम अधिकृत द्वीप का गवर्नर बनायेगा। सांकोपांजा की स्त्री चिड़चिड़े स्वभाव की है। उसका एक खच्चर भी है। वह उत्साह के साथ डॉन क्विक्जोट दे ला मांशा के अनुचर के रूप में उसके साथ चल पड़ता है।

सर्वेन्टीज इन दोनों के 'करतब' और पराभव का वर्णन करता है। उदाहरण के लिए, मार्ग में जाते हुए डॉन क्विक्जोट देखता है कि एक किसान अपने बालक नौकर को पीट रहा है। डॉन क्विक्जोट वहाँ पहुँचकर कहता है कि भगवान् के लिए इसे मत मारो। किसान कहता है कि उसे

पीटने का अधिकार है। इस पर डॉन क्विक्जोट उसे भाले से मार डालने की धमकी देता है। किसान अपने अधिकार की बातें करता है। अन्त में डॉन क्विक्जोट कहता है कि वह आवश्यक धन देकर लड़के को मुक्त करेगा। किसान स्वीकार कर लेता है। लेकिन डॉन क्विक्जोट धन लायेगा कहाँ से? वह कहता है कि खोजने पर जब उसे उसका खजाना मिल जायगा तब वह देगा। इतना कहकर वह आगे बढ़ जाता है और किसान अपने इस अपमान के लिए लड़के की हत्या कर देता है।

सर्वेन्टीज लिखता है—इस प्रकार डॉन क्विक्जोट बच्चों को पीटने के अन्याय को दूर कर देता है।

यह है सर्वेन्टीज की प्रतिभा की विशेषता। 'डॉन नक्विक्जोट' में मानव दुर्बलताओं का जो यथार्थ चित्रण हुआ है वह विश्व-साहित्य में अद्वितीय है।

सर्वेन्टीज ने जितनी पुस्तकें लिखीं, उनमें 'डॉन क्विक्जोट' के बाद 'एक्जेम्प्लेरी नावेल्स' भी महत्त्वपूर्ण रचना समझी जाती है।

(१५४४–१५९५ ई०)

इटाली के महान् कवि टैसो का जीवन बड़ा रहस्यपूर्ण है। उसकी रचना और जीवन से प्रभावित होकर महाकवि गेटे ने उसके जीवन की घटनाओं के आधार पर एक नाटक लिखा था। टैसो इटाली का अन्तिम कवि माना जाता है, जिसकी कीर्ति समस्त योरोप में फैली हुई है।

टैसो के पिता का नाम बरनेर्डो टैसो और उसका टोरक्यूटो टैसो था। पिता-पुत्र दोनों ही कवि थे। टैसो का पिता ड्यूक सलेर्नो के दरबार में था। चार्ल्स पंचम द्वारा राज्य रक्षण से विलग कर दिये जाने पर बरनेर्डो टैसो

का कोई अवलम्ब नहीं रहा। वह बहुत समय तक निराश्रय होकर भटकता रहा। उसके दुर्दिन में उसका पुत्र भी सदैव उसके साथ था।

आठ वर्ष की अवस्था में टोरक्यूटो टैसो नेपल्स के एक स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने लगा। वह बाल्यकाल से ही विलक्षण बुद्धि का था। वह ग्रीक और लैटिन भाषा का अध्ययन करता था। पिता पुत्र की शिक्षा पर सावधानी से दृष्टि रखता था।

बारह वर्ष की अवस्था में टारक्यूटो की माता का देहान्त हुआ। पिता-पुत्र दोनों ही अनिश्चित स्थिति में एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी जीविका के साधन में भटक रहे थे। माता के वियोग का प्रभाव बालक टोरक्यूटो के मस्तिष्क पर भीषण रूप से पड़ा।

१५६१ ई० में बर्नेडो टैसो की काव्यकृति 'अमाडिस' प्रकाशित हुई। पिता की इस रचना में पुत्र टारक्यूटो का भी सहयोग था। वह अपने पिता के दुर्दिन में उसके साहित्यिक कार्यों में सहयोग करने में सदैव तत्पर रहता था।

टारक्यूटो टैसो की प्रतिभा इतनी प्रखर थी कि अट्ठारह वर्ष की अवस्था में उसने स्वयं अपनी मौलिक काव्य-रचना 'रिनाल्डो' प्रस्तुत की। इस रचना के कारण युवक कवि की प्रसिद्धि समस्त इटाली में फैल गई। तीन वर्षों के पश्चात् पाडुआ विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र का अध्ययन समाप्त कर टैसो ईस्टी के कार्डिनल लेविस द्वारा आमंत्रित किया गया। उसी को उसने अपनी प्रथम कृति समर्पित की थी। कार्डिनल लेविस की बहिन लूक्रेटिया के सौन्दर्य से प्रभावित होकर टैसो ने बहुत सी कविताओं की रचना की थी। कार्डिनल लेविस के दरबार में टैसो को आश्रय मिला। ईस्टी के कार्डिनल के संरक्षण-काल में ही फेरारा के ड्यूक की दोनों बहिनें लूक्रेटिया और लिओनोरा टैसो की कविताओं पर मुग्ध थीं। उन दोनों का सौन्दर्य और उनका प्रोत्साहन टैसो की रचनाओं का मूल रहस्य है।

टैसो के युग में कवि केवल अपने संरक्षक की प्रशंसा में कविता करते थे। राज-परिवार की महिलाओं का सौन्दर्य-वर्णन ही उनका विषय होता था। लिओनोरा ने टैसो को वही प्रेरणा दी जो बियाट्रिस ने दान्ते को दी थी। इस पवित्र प्रेम की छाया में ही टैसो की महती रचना 'जेरुजेलम लिबरेट' की सृष्टि हुई थी।

१५७१ ई० में कार्डिनल ईस्टी फ्रांस के राजा के यहाँ गया था। टैसो भी अपने संरक्षक के साथ फ्रांस के राजदरबार में उपस्थित हुआ। राजा

नवम चार्ल्स ने टैसो से अनेक प्रश्न किये। उसने पूछा—सबसे प्रसन्न व्यक्ति कौन है? टैसो ने उत्तर दिया—भगवान्। राजा ने पूछा—लेकिन मनुष्यों में कौन है? टैसो ने कहा—जो भगवान् के समान हो। राजा ने फिर पूछा—मनुष्य कैसे भगवान् के समान हो सकता है? क्या मनुष्यों पर शासन कर अथवा उनका उपकार करने पर।

टैसो ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—अपने धर्माचरण से प्राप्त कर सकता है।

अपनी स्पष्टवादिता से टैसो ने अपने संरक्षक और फ्रांस के राजा दोनों को अप्रसन्न किया। टैसो वहाँ से चला आया। इस यात्रा से उसे विशेष लाभ नहीं हुआ। एक वर्ष पहले वह जिन कपड़ों को धारण कर गया था उसी पोशाक में वह वापस लौटा था।

रोम पहुँचने पर टैसो को एक सुसंवाद यह मिला कि फेरारा के ड्यूक अलफोन्सो ने उसे अपने यहाँ यथेष्ट वेतन पर नियुक्त किया है। ड्यूक के यहाँ टैसो का जीवन सुख से व्यतीत हो रहा था। उसने अपना महान् वीर-काव्य 'जेरुजेलम लिबरेटा' वहीं पूर्ण किया और एक नाटक 'अमीनटा' ड्यूक की नाट्य-शाला में खेलने के लिए प्रस्तुत किया। उसके प्रति ड्यूक का आदर और जनता में उसका सम्मान देखकर ड्यूक के मंत्री और कर्मचारी कवि से ईर्ष्या करने लगे।

टैसो की भावुकता और उसके स्वाभिमान ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया कि लोग उसे पागल समझने लगे। अन्त में वह ड्यूक के यहाँ से भागकर रोम, टूरिन और नेपल्स आदि नगरों में भ्रमण करता रहा; लेकिन उसकी अभिलाषा यही थी कि फिर वह अपने पूर्वस्थान पर पहुँच जाय। ड्यूक के द्वितीय विवाह के अवसर पर वह फरारा पहुँचा; किन्तु अपने प्रति ड्यूक का उदासीन भाव देखकर उसे मार्मिक आघात पहुँचा। उसका कवि-हृदय उद्दण्ड हो गया। वह भावावेश में जो मन में आता कह बैठता। उसे यह शंका हुई कि कुछ लोग विष देकर उसका प्राण लेना चहते हैं।

एक दिन राजमहल में टैसो ने एक कर्मचारी के ऊपर छुरे से आक्रमण किया। उसने समझा कि वह उसे विष देने के प्रयत्न में है। इस तरह की अनेक घटनाओं के कारण लोगों की धारणा हो गई थी कि वह पूर्ण रूप से विक्षिप्त हो गया है। ड्यूक को भी विश्वास हो गया था कि टैसो की घृणा उसके लिए हानिकर हो सकती है। इसलिए उसने आज्ञा दी कि टैसो पागलखाने भेज दिया जाय।

पागलखाने में टैसो का जीवन बड़ा ही कारुणिक था। वह दिनरात एकान्त में पड़ा अपनी असीम वेदनाओं के गान गाता रहा। प्रकृति मौन होकर उसे सुनती रही। कोई भी उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवाला नहीं था। चिकित्सकों ने भी उसके प्रति उदासीन भाव ग्रहण कर लिया। वह अपने समीप अन्य विक्षिप्तों का चीत्कार सुनकर उत्तेजित हो उठता था। दो वर्षो तक उस पर तनिक भी ध्यान नही दिया गया। उस समय उसकी लिखी हुई कविताओं में उसकी स्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन है। उन कविताओं को पढ़कर हृदय पिघल उठता है, लेकिन उसके संरक्षक ड्यूक का हृदय पापाण ही बना रहा।

टैसो को निर्वासन से मुक्त करने के लिए लोगों ने अनेक प्रयत्न किये। उसकी कविताएँ जनप्रिय हो गई थीं। जनता कवि को मुक्त देखना चाहती थी। टैसो को कुछ सुविधाएँ मिलीं। अन्त में सात वर्ष चार मास के पश्चात् धर्मगुरु पोप के प्रभाव से ड्यूक ने टैसो को स्वतंत्र किया।

दरिद्रता और विक्षिप्तता ने मिलकर टैसो को कभी स्थिर नहीं होने दिया। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पर्यटन करता रहा। उसकी रचनाओं का इतना प्रभाव पड़ गया था कि एक प्रसिद्ध डाकू ने उसे सूचना दी थी कि उसके लिए नेपल्स से रोम जानेवाली सड़क सदैव निरापद रहेगी। उसे भयभीत होने का कोई कारण न होगा।

टैसो मानवता की कृपा से वंचित होकर एकमात्र भगवान् की दया पर निर्भर करता था। उसका शरीर क्षीण हो गया था। रोगों ने उस पर आक्रमण कर दिया था। ऐसे समय में इटाली के सबसे बड़े कवि-सम्मान की घोषणा हुई। पोप द्वारा राज्य-कवि (पोयट लौरियेट) की उपाधि से उसे विभूषित किये जाने की सूचना मिली। उसके लिए वार्षिक पुरस्कार भी स्वीकृत हुआ।

१५९५ ई० में टैसो की अस्वस्थता इतनी बढ़ गई थी कि उसके सम्मान में जो प्रदर्शन होनेवाला था, उसके लिए शंका उपस्थित हो गई। कवि को अपना अन्तिम समय निकट प्रतीत हुआ। वह एक पवित्र मठ में मृत्यु का आवाहन कर रहा था। उसने अपने मित्र को अपना अन्तिम पत्र लिखा, जिसमें उसकी भावनाएँ प्रकट होती हैं—मेरी सम्मति में मेरी मृत्यु के प्रकट होने में अधिक विलम्ब नहीं लगेगा। मैं अनुरोध करता हूँ कि मेरे जीवन का अन्तिम समय है। मेरे रोगों के लिए कोई भी उपयुक्त

ओषधि नहीं है। अब वह समय नहीं है कि अपने दुर्भाग्य और संसार की अनुपकारिता के सम्बन्ध में मैं विलाप करूँ, जिसके कारण एक भिखारी की भाँति मैं समाधि की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। जब मैं विचार करता था कि यह समूची शती मेरी रचनाओं पर गर्व करेगी तो मुझे विश्वास नहीं होता था कि मैं इस तरह पददलित किया जाऊँगा। मेरे लिए अब ईश्वर से प्रार्थना करो।

टैसो के पागलपन के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। अब तक इस विषय पर विद्वानों का अन्वेषण चल रहा है। कुछ चिकित्सकों ने अनुसंधान द्वारा निर्णय किया है कि जीवन के मध्य में टैसो पर मोनोमेनिया रोग का आक्रमण हुआ था। समय-समय पर इसका दौरा होता रहा; किन्तु इसके कारण उसकी प्रतिभा और विचारों पर कोई आघात नहीं हुआ।

टैसो की महान् कृतियों से उसकी विक्षिप्तावस्था का परिचय नहीं मिलता। कुछ लोगों का विश्वास है कि उसके शत्रु और संरक्षकों ने उसकी ऐसी स्थिति उत्पन्न कर उससे लाभ उठाया था। किन्तु वास्तव में टैसो का जीवन दुःखद घटनाओं, मनुष्य की क्रूरता और दरिद्रता के भयानक आक्रमणों से त्रस्त था। यही कारण था कि जीवनभर वह एक साहसी वीर की भाँति मौन होकर अपनी यंत्रणाओं का आलिंगन करता रहा।

एक बार टैसो अपनी रचना सुना रहा था। किसी ने धीरे से कहा—ऐसा महापुरुष कैसे पागल समझा जाता है। टैसो ने मुस्कराते हुए कहा—नहीं मित्र, दार्शनिक सोनिका के निर्णय के अनुसार मनुष्य इस संसार में केवल दो ही रूपों में उत्पन्न होता है, राजा अथवा पागल; किन्तु मेरा ऐसा सौभाग्य नहीं था कि मैं पहली स्थिति में पहुँचता अतएव दूसरे स्थान के लिए मैंने प्रयत्न किया।

जीवन के अन्तिम दिनों में उसकी शय्या के समीप बैठे हुए एक व्यक्ति ने पूछा—आप अपनी आँखें सदैव बन्द क्यों रखते हैं?

टैसो ने उत्तर दिया—सदैव के लिए बन्द करने का अभ्यास कर रहा हूँ।

जब टैसो के कुछ मित्र उसकी अन्तिम अवस्था देखकर अश्रुपात करते हुए कमरे से बाहर जाने लगे तो टैसो ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—आप सोचते होंगे कि मुझे पीछे छोड़ जायँगे लेकिन मैं आपसे पहले पहुँच जाऊँगा।

और सचमुच टैसो ने अपनी अन्तिम प्रार्थना के शब्दों को गुनगुनाते हुए अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण की। उसने अपने सभी शत्रुओं को क्षमा कर दिया था। बड़े सम्मान से उसका शव-संस्कार हुआ। उसका स्मारक बान,

लेकिन वह अपने वार्षिक पुरस्कार का लाभ न उठा सका और असमय में ही समस्त सम्मानों का तिरस्कार करते हुए, अपनी असीम वेदना की गोद में बैठा हुआ, चल बसा।

टैसो की समस्त कृतियों में 'जेरुजेलम डेलिवर्ड' का विशेष महत्त्व है। यह वीर-काव्य 'क्रूसेड' (धर्मयुद्ध) की घटनाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। कवि की अभिलाषा थी कि होमर और वर्जिल की भाँति वह भी एक महाकाव्य की रचना करे। टैसो की इस महान् रचना का ढाँचा यूनानी रूप में ही है; किन्तु कथानक और आत्मा क्रिश्चियन है।

टैसो स्वयं तलवार चलाने में निपुण था। वीरता के प्रति उसकी स्वाभाविक प्रेरणा और 'क्रूसेड' के सम्बन्ध में सभी ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन ने उसे अपनी इस कृति में पूर्ण सफल किया।

टैसो ने अपने जीवन में सामर्थ्य से अधिक उच्च प्रेम की आकांक्षा की, इसलिए उसे सदैव हताश ही होना पड़ा। उसे अपने जीवन में अपवाद और लांछना सहन करनी पड़ी, लेकिन यह सब लोगों का भ्रम था। वास्तव में टैसो का चरित्र उज्ज्वल और निर्मल था। टैसो ही योरोप का एक ऐसा दार्शनिक कवि था, जिसने अपनी रचनाओं में जो आदर्श उपस्थित किया था, उसी के अनुसार अपने चरित्र को भी सुरक्षित और पवित्र रखा था।

शेक्सपीयर

(१५६४–१६१६ ई०)
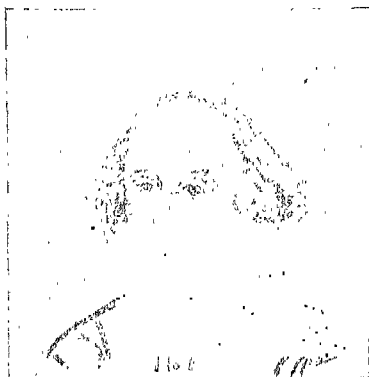
शेक्सपीयर को जब कसाई के लड़के के रूप में देखा जाता है, तब मालूम पड़ता है कि वह साधारण श्रेणी का था; किन्तु वास्तव में बात यह नहीं थी। उसका पिता एक धनी व्यक्ति था और अनाज तथा लकड़ी का व्यवसाय भी करता था। गाँव में उसका सम्मानित स्थान था।

शेक्सपीयर की शिक्षा स्ट्राटफोर्ड के निःशुल्क स्कूल में हुई थी। विश्व-विद्यालय में वह उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका। स्कूल से निकलकर वह कुछ दिनों तक एक कसाई के साथ काम करता रहा। इसके बाद एक वकील का क्लर्क बना। १८ वर्ष की अवस्था में एनी हेथवे नाम की युवती से उसका विवाह हुआ था। उसकी पत्नी अवस्था में आठ वर्ष उससे बड़ी थी। लन्दन में कार्य आरम्भ करते समय शेक्सपीयर को पहले नाट्य-शाला के बाहर घोड़ों की देख-रेख करने का काम मिला था। इसके बाद वह अभिनेता बनकर मंच पर प्रकट हुआ। अभिनेता के रूप में उसे सफलता नहीं मिली।

शेक्सपीयर की आरम्भिक दो कविताएँ 'वेनस और एडोनिस' १५९३ ई० में और 'लूक्रेसी' १५९४ ई० में प्रकाशित हुई। ये कविताएँ उसने अपने मित्र अर्ल आफ साउथएमटन को समर्पित की थीं। इन कविताओं का तत्काल ही प्रचार हुआ। १५९३ से १५९६ ई० तक उसने अनेक गीतों की रचना की थी।

आरम्भ में शेक्सपीयर ने पुराने नाटकों को नया रूप देकर मंच के उपयुक्त बनाया। कुछ आलोचकों का कथन है कि 'टीटस एन्ड्रोनिकस'

और 'हेनरी छठे' के प्रथम भाग इसी कोटि में आते हैं। यह निश्चित नहीं है कि शेक्सपीयर का जीवन नाटककार के रूप में किस समय से आरम्भ होता है। लेकिन १५८९-९० का काल ही अनुमान किया जाता है। 'लव्स् लेबर्स् लॉस्ट' (१५९०) ही सम्भवतः उसका प्रथम मौलिक नाटक है। इस कृति में उसकी प्रतिभा का प्रभाव जनता के ऊपर पड़ता है।

शेक्सपीयर की ख्याति फैल गई थी और रानी एलिजाबेथ के सम्मुख कई बार उपस्थित होने का अवसर उसे मिला था। १५९७ ई० तक शेक्सपीयर ने अपने नाटकों द्वारा इतना धन उपार्जित कर लिया था कि स्ट्राटफोर्ड में उसने एक मकान खरीदा। यह मकान उस स्थान में सबसे बड़ा था।

शेक्सपीयर की प्रथम ट्रेजिडी 'रोमियो एण्ड जूलियट' १५९५ ई० में लिखी गई थी। १६०० ई० तक महत्त्वपूर्ण कमेडी 'मच एडू अबाउट नथिंग', 'एज यू लाइक इट' और 'ट्वेल्फ्थ नाइट' आदि लिखी गईं। शेक्सपीयर की महान् ट्रेजिडी 'मेकवेथ', 'किंग लियर', 'ओथेलो' तथा 'एण्टोनियो एण्ड क्लिओपेट्रा' आदि १६१० तक प्रकाशित हो चुकी थीं।

१६१० ई० के बाद शेक्सपीयर रंगमंच छोड़कर अपने स्ट्राटफोर्ड के मकान में रहने लगा था। उसने अपने थियेटर के हिस्से आदि बेच दिये थे और जीवन का अन्तिम समय शान्ति-पूर्वक व्यतीत कर रहा था। उसकी अन्तिम रचना 'टेमपेस्ट' १६१२ ई० में प्रकाशित हुई थी।

शेक्सपीयर १६१६ ई० में अपने जन्म-दिवस के दिन ही संसार से विदा हुआ था।

शेक्सपीयर की रचनाओं को पढ़ते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसने अपने नाटकों को रंगमंच पर खेलने के लिए लिखा था, पाठकों के पढ़ने के लिए नहीं। उन दिनों रंगमंच भावनाओं के प्रदर्शन का वैसा ही साधन था जैसा आजकल उपन्यास है।

शेक्सपीयर ने केवल एक ही रचना 'लव्स् लेबर्स् लॉस्ट' के लिए ही वस्तु-विषय की मौलिक कल्पना की थी। इसके अतिरिक्त उसके सभी नाटक इतिहास, रोमांस और दूसरे लेखकों की रचनाओं से लिये गये वस्तु-विषय पर ही निर्मित हुए हैं। उसने आकर्षक और उपयुक्त घटनाओं की खोज कर उन्हें अपनी शैली और प्रतिभा के बल पर अपना बना लिया था। उसने अपने जीवन में कुल सैंतीस नाटक प्रस्तुत किये जिनमें सोलह उसकी मृत्यु के पूर्व प्रकाशित हुए थे। शेष इक्कीस हस्तलिखित ग्रन्थ उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए। शेक्सपीयर के इन हस्तलिखित ग्रन्थों का

महत्त्व इतना बढ़ गया था कि नीलाम होने पर पन्द्रह हजार पौंड उसकी एक प्रति के लिए प्राप्त हुआ। योरोप में शेक्सपीयर की रचनाओं और उसके जीवन के सम्बन्ध में जितना अनुसन्धान और अन्वेषण हुआ है उतने का सौभाग्य किसी भी अन्य लेखक को प्राप्त नहीं हुआ है।

नाटककार, शब्दों के आचार्य और मानव-समाज के सूक्ष्म पर्यवेक्षक के रूप में शेक्सपीयर इतना महान् है कि उसके सामने उसके सभी समसामयिक नाटककार बौने से लगते हैं।

शेक्सपीयर के आरम्भिक दिनों में मारलो और अन्तिम दिनों में बेन जानसन उसके अन्तरंग मित्रों में थे। शेक्सपीयर अवकाश लेकर जब अपने 'स्ट्राटफोर्ड' में रहता था, उन दिनों बेन जानसन प्रायः उससे भेंट करने वहाँ जाया करता था।

योरोपीय साहित्य के इतिहास में डेढ़ हजार वर्षों में केवल शेक्सपीयर और वर्जिल ने अपनी रचनाओं से अगाध सम्पत्ति उपार्जित की थी। वर्जिल को पुरस्कार-स्वरूप सम्पत्ति मिली थी। शेक्सपीयर ने अपनी नाटक-सम्बन्धी प्रतिभा के द्वारा धन एकत्र किया था।

केल्डरन

(१६००–१६८१ ई०)

केल्डरन स्पेन का महान् नाटककार था, जिसका स्थान शेक्सपीयर के बाद माना जाता है। उसने अपने जीवन-काल में ११८ नाटकों की रचना की थी।

केल्डरन का जन्म एक उच्च कुल में हुआ था। उसका पिता राजकीय खजाने का मंत्री था। केल्डरन की शिक्षा की ओर उसने विशेष ध्यान दिया। नौ वर्ष की अवस्था में वह स्कूल भेजा गया। इसके एक वर्ष बाद उसकी माता का देहान्त हुआ। जब केल्डरन कालेज में पढ़ता था तब उसके पिता की भी मृत्यु हो गई। वह अपने अध्ययन-काल में ही नाटक लिखने लगा था। अब उसके सम्मुख परिवार के पोषण का भी प्रश्न था। इसलिए नाटक लिखकर उसने अपनी आर्थिक समस्या को सरल किया।

१६२५ ई० में वह सेना में सम्मिलित हुआ। वह एक कुशल सैनिक था। नाटककार के रूप में वह प्रसिद्ध हो गया था और जनता में उसके नाटकों का प्रदर्शन विशेष सफल होता था। स्पेन का राजा फिलिप चतुर्थ उसके नाटकों पर मुग्ध था, अतएव उसने लेखक को 'आडर-आफ-सान्टियो' की उपाधि से विभूषित किया। केल्डरन को राजकीय आश्रय मिला।

१६३७ ई० तक केल्डरन के दो दर्जन नाटक प्रकाशित हो चुके थे। इन नाटकों द्वारा उसकी ख्याति बढ़ती गई। १६४० ई० में वह काटालोनियन विद्रोह के विरुद्ध सेना में कार्य करने लगा; किन्तु राजा ने अपने प्रिय लेखक को शीघ्र ही वापस बुला लिया, क्योंकि विद्रोह में उसका जीवन सुरक्षित नहीं था।

लेखक का शेष जीवन साहित्य-साधना में ही व्यतीत हुआ। उसके विचार धार्मिक थे। वह जीवन भर अविवाहित ही रहा। धार्मिक दीक्षा लेकर वह ईश्वर-भक्ति में लीन रहा। उसने ऐसे धार्मिक नाटकों की रचना की जिनके द्वारा जनता में धर्म के प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई।

८१ वर्ष जीवित रहने के कारण केल्डरन ने स्पेन के शासन का उत्थान और पतन दोनों ही अपनी आँखों से देखे थे। १६६५ ई० में राजा फिलिप चतुर्थ के जीवन का अन्त हुआ। उसके पश्चात् १६ वर्षों तक केल्डरन जीवित था।

वेरा टासिस ने केल्डरन का जीवनचरित्र लिखा था। यह जीवनीकार लेखक का समकालीन था, किन्तु अवस्था में ३७ वर्ष उससे छोटा था; इसलिए केल्डरन के आरम्भिक जीवन पर वह विशेष प्रकाश नहीं डाल सका।

केल्डरन के जीवनी-लेखक ने लिखा है कि केल्डरन स्वभाव का दयालु और सरल था। उससे बातें कर लोग सन्तुष्ट होकर जाते थे। उसकी परोपकारी मनोवृत्ति थी। उसने कभी किसी लेखक की कटु आलोचना नहीं की और न किसी से वह ईर्ष्या रखता था। उसका द्वार सदैव अभाव-ग्रस्त लोगों के लिए खुला रहता था।

केल्डरन एक महान् नाटककार था, जिसने इतिहास और घटनाओं पर अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की थीं; किन्तु स्वयं उसके जीवन की घटनाओं का विस्तृत विवरण नहीं मिलता। यही कारण है कि उसकी जीवनी भी केवल उसकी कृतियों की समालोचना मात्र है; उसमें उसके यथार्थ जीवन का स्पष्ट वर्णन नहीं है।

केल्डरन की प्रवृत्ति यह थी कि वह किसी भी आकर्षक और प्रभावशाली घटना पर अपना नाटक उपस्थित कर देता था। इतिहास, दर्शन, सामाजिक और धार्मिक विषयों को लेकर उसने बड़ी कुशलता से अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है। उसकी रचनाओं में चरित्र-चित्रण उतना महत्त्व नहीं रखता जितनी घटनाएँ।

स्पेन के लेखक रोमांस लिखने में योरोप के पथ-प्रदर्शक थे और केल्डरन नाटककारों का आचार्य था।

केल्डरन जिस कथानक को अपने नाटक के लिए चुनता, चाहे यूनानी, अथवा अन्य किसी देश का, उसमें वह स्पेन की राष्ट्रीय भावनाओं को सदैव अंकित करता था। इसी लिए उसके नाटक देश में सबको पसन्द आते थे। उसके नाटकों में कवि की भावुकता सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

१६वीं और १७वीं शती में खुले मैदान में नाटक खेले जाते थे। धार्मिक प्रेरणा प्रदान करनेवाले वार्तालाप कई पात्रों द्वारा उपस्थित किये जाते थे। इनका विशेष प्रभाव कविता की स्वच्छन्द धारा में ही प्रकट होता था।

केल्डरन ने ११८ नाटक और लगभग ७० 'आटोज' अपने जीवन में लिखे थे। 'आटोज' से उस नाटक का तात्पर्य है जो काव्य-संवाद के रूप में जनता के उत्सवों पर उपस्थित किया जाता था। आदर्श-मय जीवन और धर्म के प्रति पवित्र मनोवृत्ति धारणा करना ही इनका मूल लक्ष्य होता था।

केल्डरन के नाटकों का महत्त्व उस समय योरोप में हुआ, जब गेटे, शिलर और शेली ने उसे स्पेन का अद्वितीय नाटककार घोषित किया। केल्डरन का प्रथम नाटक 'दि डीवाइन फिलोथिया' के नाम लिखा गया था। उसकी अन्तिम कृति 'लिओनिडास एण्ड मारफिसा' है। १६८१ ई० में अपनी रुग्णावस्था में ही लेखक ने इस नाटक को पूर्ण किया था। अन्तिम समय तक उसे चेतना बनी रही। एक हंस की भाँति गान करते हुए उसके जीवन का अन्त हुआ।

केल्डरन के शव-संस्कार में तीन हजार मशालें जलाई गईं थीं। राजा चार्ल्स द्वितीय ने लेखक की मृत्यु पर अश्रुपात किया था। समस्त स्पेन के लोग अपने इस नाटकार के चले जाने पर शोकाकुल हो उठे थे।
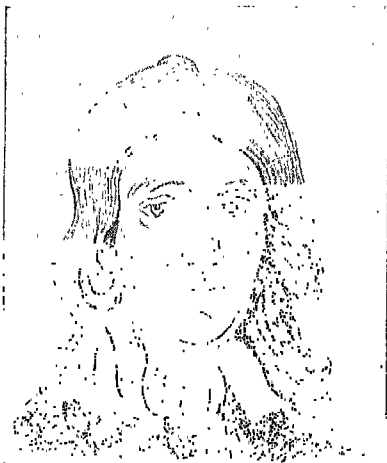
मिल्टन

(१६०८–१६७४ ई०)

योरोप के पाँच महाकवियों में एक मिल्टन भी है। उसने अपने सम्बन्ध में लिखा है—मैं लन्दन के एक अच्छे परिवार में उत्पन्न हुआ हूँ और मेरा पिता एक सम्मानित व्यक्ति है।

मिल्टन का पिता संगीत-कला का मर्मज्ञ था, इसी लिए बचपन से संगीत और साहित्य के प्रति मिल्टन की रुचि उत्पन्न की गई। सोलह वर्ष की अवस्था में जब वह कालेज में पढ़ता था, तब उसके सहपाठी उसे 'दी लेडी' (महिला) कह-कर पुकारते थे। इसका कारण यह था कि उसकी आकृति स्त्रियों जैसी थी।

विद्यार्थी-जीवन में ही वह अत्यन्त भावपूर्ण कविता करने लगा था। १६३२ ई० में एम० ए० की डिग्री लेकर वह केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से निकला। अन्य शिक्षित युवकों की भाँति उसकी रुचि किसी व्यवसाय की ओर नहीं थी। वह एकमात्र काव्य की साधना में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहता था। वह अपने पिता की जमींदारी में रहकर ग्रीक और लैटिन की रचनाओं का अध्ययन करता रहा और पुस्तकें खरीदने के लिए कभी लन्दन नगर में भी चला जाता था। अपने अवकाश के समय कवि प्रकृति का निरूपण करता था।

आरम्भ में मिल्टन ने लैटिन में दो कविताएँ लिखी। इसके बाद 'कोम्यूस' नामक रचना एक संगीतज्ञ के आग्रह पर एक उत्सव के लिए लिखी गई। इस कविता के साथ कवि के जीवन का एक युग ही समाप्त होता है। देश की स्थिति संकटमय थी। सदैव उत्साह प्रदान करनेवाले उसके भाई का देहान्त हो गया था। अब घर में वृद्ध पिता के साथ ही

उसका दिन कट रहा था। एकान्त और कार्य की अधिकता में व्यस्त जीवन उसे थका देता था। तीन वर्ष में उसने केवल एक कविता 'लीसिडास' लिखी। इस कविता के लिए प्रेरणा उसे अपने एक मित्र की सामुद्रिक मृत्यु से प्राप्त हुई थी।

विद्वानों का कथन है कि उसकी आरम्भिक रचनाएँ ही अंग्रेजी के प्रथम श्रेणी के कवियों की पंक्ति में उसे बैठाने के लिए पर्याप्त हैं।

१६३८ ई० में मिल्टन इटली भ्रमण करने गया। वहाँ साहित्यिकों द्वारा उसका विशेष सम्मान किया गया। उन दिनों इँग्लैंड में गृहयुद्ध चल रहा था। पर्यटन में छः मास बीते थे। मिल्टन ने विचार किया कि देश में नागरिक स्वतंत्रता के लिए युद्ध कर रहे हैं और मैं अपनी प्रसन्नता के लिए भ्रमण कर रहा हूँ, यह कितना लज्जाजनक है!

इटली से लौटने पर उसे अपने एक मित्र की मृत्यु के कारण दुःख-ग्रस्त होना पड़ा। 'डामोन' नामक उसकी अन्तिम लैटिन कविता में अपने उस मित्र के प्रति उसके उद्‌गार हैं। मिल्टन लन्दन में ही रहने लगा और उसके दो भानजों की शिक्षा का भार भी उसके ऊपर था।

मिल्टन का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था। उसने अपना प्रथम विवाह १६४३ ई० में मेरी पोवेल नामक १७ वर्ष की युवती से किया था। उसकी पत्नी अपने पिता के घर जाने के बाद फिर उसके यहाँ लौट आना नहीं चाहती थी। इस सम्बन्ध में बड़ा विवाद हुआ और मिल्टन ने तलाक पर बहुत कुछ लिखा। १६४५ ई० में मेरी पोवेल ने मिल्टन से क्षमा याचना की और मित्रों के आग्रह पर मिल्टन को भी स्वीकार करना पड़ा। इसके बाद ही उसका पारिवारिक जीवन अत्यन्त कोलाहलमय था। इसका प्रधान कारण यह भी था कि मेरी पोवेल के माता-पिता और आठ भाई-बहिनों ने एक वर्ष तक मिल्टन के साथ ही निवास किया।

१६४७ ई० में मिल्टन के पिता का देहान्त हुआ।

१६५२ ई० में चार सन्तानों को जन्म देकर मेरी पोवेल भी चल बसी। मिल्टन ने अपने एक इटली के मित्र को जो पत्र लिखा उससे यही ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी ने निरन्तर कोलाहल और अशान्ति का वाता-वरण उसके लिए प्रस्तुत कर रखा था।

जिस वर्ष मिल्टन की पत्नी का देहान्त हुआ, उसी वर्ष मिल्टन अंधा हो गया था। लैटिन की विशेष योग्यता के कारण १६४९ ई० में कौंसिल-आफ-स्टेट के वैदेशिक मंत्री के पद पर वह नियुक्त किया गया था। यह कार्य उसने 'रिस्टोरेशन' तक सँभाला।

चार वर्ष के बाद १६५६ ई० में उसने फिर अपना विवाह किया। पन्द्रह मास बाद उसकी दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो गया।

१६५८ ई० में मिल्टन ने अपना अमर महाकाव्य 'पेरेडाइज लॉस्ट' लिखना आरम्भ किया।

मिल्टन का गद्य अत्यन्त प्रभावशाली होता था। अरेसपगेटिका, प्रेस की स्वतंत्रता के पक्ष में लिखी गई, उसकी महत्त्वपूर्ण रचना है। बीस वर्ष तक मिल्टन की प्रतिभा देश, समाज और शासन के प्रश्नों पर वाद-विवाद के द्वन्द्व में उलझी हुई थी। बहुत समय से उसके मन में यह अभिलाषा थी कि वह एक महाकाव्य लिखे। वह आर्थर की कथाओं के आधार पर लिखना चाहता था। अन्त में 'मानव का पतन' ही उसका एकमात्र लक्ष्य बना और इसी पर 'पेरेडाइज लॉस्ट' की कथा का निर्माण हुआ है।

पेरेडाइज लॉस्ट महाकाव्य का कथाभाग बड़ा आकर्षक है। प्रथम सर्ग में प्रारम्भिक कथा के रूप में मिल्टन अपना उद्देश्य वर्णन करता है। इसी प्रसंग में वह सनातन दैव तथा मनुष्य के प्रति ईश्वर की कृतियों का समर्थन करता है; किन्तु वास्तव में उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। तर्क के प्रज्वलित अग्निकुंड में शैतान पड़ा हुआ है, अचानक वह अपने गणों को एकत्र करता है। उनसे विचार-विमर्श करने के लिए वह पेन्डिमोनियम नाम के विराट् राजमहल की रचना करता है।

दूसरे सर्ग में उसकी सभा स्वर्ग पर आक्रमण करने के सम्बन्ध में विचार-विवेचन करती है। अन्त में शैतान अकेले संवाद-संग्रह के अभिप्राय से वहाँ जाने के लिए प्रस्तुत होता है।

तीसरे सर्ग में भगवान् शैतान को पृथ्वी की ओर उड़ते हुए जाते देखता है। ईश्वर का पुत्र मानव-जाति के लिए उद्धारक बनने की अभिलाषा करता है।

चौथे सर्ग में इडेन उद्यान का विवरण है। यहीं पर शैतान ने आदम और हव्वा (ईव) को छिपकर देखा।

पाँचवें और छठे सर्ग में राफेल शैतान के विषय में आदम को सावधान करता है और शैतान की प्रारम्भिक कथा सुनाता है।

सातवें में राफल आदम से सृष्टि-सम्बन्धी कथाएँ कहता है।

आठवें में आदम पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्ध में राफेल से वादविवाद करता है।

नवें सर्ग में सर्परूपी शैतान ईव को प्रलोभित करता है और ज्ञान-वृक्ष का निषिद्ध फल खाने के लिए प्रोत्साहित करता है। ईव के दण्ड का भाग लेने के लिए आदम भी उस फल का आस्वादन करता है।

दसवें सर्ग में पाप और मृत्यु उद्यान में प्रविष्ट होती है और नरक का पथ सुप्रशस्त करती है।

ग्यारहवें सर्ग में ईश्वर का पुत्र पापियों का पक्षपात करते हुए, उनकी मुक्ति के लिए, ईश्वर से बहस करता है। उन पापियों का बहिष्कार करने के लिए माइकेल का आविर्भाव भी उसी उद्यान में होता है और वह मानव-जाति के अन्धकारमय भविष्य का दिग्दर्शन करता है।

अन्तिम सर्ग में प्रभु ईसा मसीह का आविर्भाव और उनकी मृत्यु, पुनर्जीवन तथा पुनराविर्भाव होता है। इसके पश्चात् आदम और हव्वा (ईव) इडेन उद्यान को छोड़ते हैं।

पेरेडाइज लॉस्ट महाकाव्य का कथाभाग अति साधारण-सा है। मिल्टन स्वयं कभी भगवान् बनता है, कभी राफेल, कभी शैतान और कभी आदम। ईव का अंश उसने कभी नहीं ग्रहण किया। उसने अपने महाकाव्य में, अपने जीवन के सम्पूर्ण अनुभव का प्रदर्शन कर, एक अपूर्व जादू का जाल बुना है।

उसके विस्तृत अध्ययन का पता इसी से लगता है कि हैरोडेटस से लेकर ओलस मेकनस तक की रचनाओं का उसे ज्ञान था। भूगोल और ज्योतिष-शास्त्र के अपने युग तक के आविष्कारों से वह पूर्णतया परिचित था।

पेरेडाइज लॉस्ट को पूर्ण करने में कवि के पाँच वर्ष व्यतीत हुए। पाँच पौंड प्रकाशन के समय और पाँच पौंड तेरह सौ प्रतियाँ समाप्त होने पर, इस तरह कुल दस पौंड उसे मिला था और केवल आठ पौंड प्राप्त कर उसकी तीसरी पत्नी ने अपना सर्वाधिकार समाप्त कर दिया था। कुल अठारह पौंड ही इतने बड़े महाकाव्य का पुरस्कार था। लेकिन आलोचकों का कथन है कि उस युग में तेरह सौ प्रतियाँ बीस महीने में बिक जाना ही लेखक की ख्याति का प्रमाण है।

अंधा होने पर कवि अपनी पहली पत्नी से उत्पन्न तीन पुत्रियों के सहयोग से कार्य करता था। उसके आदेशानुसार वे कभी पुस्तकें पढ़कर सुनातीं अथवा उसके बोले हुए शब्द लिखती रहतीं। लेकिन दुर्भाग्य से वे भी मिल्टन के प्रति क्रूर थीं। ऐसी अवस्था में वे उसकी अनेक बहुमूल्य पुस्तकों को बेच देती थीं। इस स्थिति का अन्त उस समय हुआ जब मिल्टन के एक मित्र के प्रयत्न से तीसरी पत्नी घर में आई।

१६६३ ई० में मिल्टन का तीसरा विवाह हुआ। इसके पश्चात् उसका जीवन शान्तिपूर्ण दिखाई पड़ता है। तीसरी पत्नी अवस्था में उससे तीस वर्ष

छोटी थी, किन्तु भोजन बनाने और घर की व्यवस्था में वह कुशल थी। अन्तिम समय में मिल्टन को गठिया का रोग भी था।

१६७१ ई० में 'पेरेडाइज रीगेन्ड' और 'सेम्पसन एगोनिस्ट्स' दो रचनाएं प्रकाशित हुईं। इस काल में, ऐसा प्रतीत होता है, कि मिल्टन अपने शत्रुओं के मध्य में विजयी की भाँति दिखाई पड़ता है। वह ईश्वर, मनुष्य और अपनी पत्नी से ठगा गया था। केवल कल्पनाओं में ही उसकी बदले की प्रवृत्ति का प्रदर्शन होता है।

अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर के बाद मिल्टन का ही स्थान माना जाता है। लेकिन महाकवि के रूप में तो वह शेक्सपीयर से भी बड़ा माना जाना चाहिए, क्योंकि उसका महाकाव्य 'पेरेडाइज लॉस्ट' योरोप के पाँच महाकाव्यों में एक है।

कुछ आलोचकों ने यह प्रमाणित किया है कि उसके महाकाव्य की कथा एक इटालियन लेखक की रचना के आधार पर ही निर्मित हुई थी, लेकिन इन तर्कों की भूमि पर भी मिल्टन इतना महान् है कि उसके सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डेनियल डी फो

(१६५९–१७३१ ई०)

डेनियल-डी-फो अंग्रेजी पत्रकारिता में सर्वप्रथम सम्पादकीय लेखक था। आधुनिक सम्पादकीय लेखन-पद्धति का उसी ने एक स्वरूप निर्धारित किया है। पाश्चात्य देशों में सम्पादन-कला अत्यन्त आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण प्रणालियों से संचालित होती है। वहाँ सम्पादक प्रजातन्त्र दल

से रिपब्लिकन दल की ओर अथवा रेडिकल से कन्जर्वेटिव दल की ओर भटकते दिखाई पड़ते हैं। उनका अपना जो कुछ मन और विश्वास हो, उसकी अवहेलना कर वे अपने संचालक की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहते हैं।

डी-फो सम्पादकों का पथ-प्रदर्शक और आदर्श था। आरम्भ में ही उसे व्हिग और टोरी दलों के सम्पर्क में रहने के कारण यह कटु अनुभव हुआ कि शासन के सूत्रधार नीच होते हैं। अतएव एंग्लिकन और डिसेन्टरों में स्वार्थ, मूर्खता और असहनशीलता की दृष्टि से, कोई अन्तर नहीं था। इसीलिए नाम मात्र के लिए व्हिग दल में रहकर वह टोरी मंत्रिमंडल के विरुद्ध आलोचना कर लेता था और इस प्रकार वह व्हिग समितियों में रहकर टोरियों के लिए गुप्तचर का काम भी कर लेता था। वह बहुत अच्छा पर्चेबाज था। किसी विवाद-ग्रस्त विषय को छेड़कर वह स्वयं ही उत्तर-प्रत्युत्तर देता। कभी वह कोई ऐसा पर्चा निकालकर सेना की आलोचना करता और कहता कि यह किसी स्वतन्त्र सरकार के लिए अनुचित है। यदि किसी ने उसके इस तर्क का कोई उत्तर नहीं दिया तो वह स्वयं गुप्त नाम से अपने ही तर्क का उत्तर देता।

कुछ समालोचकों का कथन है कि डी-फो का चरित्र सबल नहीं था। वह राजनीति में बिना सिद्धान्त के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में चला जाता था। लेकिन वास्तव में बात यह है कि वह अभावग्रस्त होने के कारण किसी भी पक्ष के लिए सब कुछ लिखने के लिए बाध्य था। उसकी रोटी की समस्या सबसे अधिक महत्व की थी। वैसे स्वभावतः डी-फो पवित्रतावादी था। वह सत्य के दोनों पक्षों को समझता था और इनमें से एक की भी हत्या होते देख वह क्रूर हो जाता था और उसके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए उद्यत हो जाता था।

प्राचीन यूनान के स्पार्टनों के समय से जनता में अफवाहों में दिलचस्पी रखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। ट्राय के राजकुमार और मेनेलाउस की स्त्री के प्रेम की कहानी जनता की चर्चा का अच्छा विषय बन गया था। सुइटोनियस की जीवनी और प्रोकोपियस का 'गुप्त इतिहास', सीजरों और जस्टिनियन तथा थेओदोरा की चरित्र-भ्रष्टता जनता का पर्याप्त मनोरंजन करती रही। इन सब बातों से यही ज्ञात होता है कि जनता दुष्टता, चरित्र-भ्रष्टता, अवैध प्रेम, व्यक्तियों की निराशा और उनकी भावनाओं की तरंगों को पढ़ना अधिक पसन्द करती है। इँग्लैण्ड और अमेरिका के

अनेक पत्र-संचालकों ने इसी तरह की अफवाहों को छापकर बहुत बड़ी सम्पत्ति एकत्र कर ली। फ्रांस में इस प्रकार की पत्रकारिता लुई चौदहवें के काल में आरम्भ हुई और प्रायः उसी समय इँग्लैण्ड में भी इसका प्रचार हुआ। डेनियल-डी-फो ने इसे परिष्कृत रूप दिया।

डेनियल-डी-फो एक महान् कलाकार था। जब वह उपन्यासकार बना उस समय उसकी अवस्था काफी हो गई थी। वह रिचार्डसन और फील्डिङ्ग का पथ-प्रदर्शक था और उसी ने उपन्यास को एक मार्ग पर लाकर रखा। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह उपन्यास-कला के क्षेत्र में अपने कुछ विचार लेकर आया था। उसका उपन्यास जीवित रहा, क्योंकि वह एक वास्तविक कहानी थी और उसमें ठोस नैतिक शिक्षा थी। डी-फो ने लिखा था कि कहानी गढ़ना बहुत बड़ा पाप है। यह हृदय में एक छिद्र कर देने की भाँति है, जिसमें क्रमशः असत्य प्रवेश करता जाता है। इसी लिए उसने अपनी प्रत्येक रचना में स्पष्ट किया है कि उसने कहानी गढ़ी नहीं है, उसने उसे तथ्यों के आधार पर लिखा है और उसका उद्देश्य दुराचारियों को परिवर्तित करना और निरपराधों को चेतावनी देना है। उसे साठ वर्ष के भिन्न-भिन्न भाग्यों के अनुभव प्राप्त थे और उसने अन्त में अपने अनुभवों को कथा का रूप दिया। उसने अपनी जीवन-घटनाओं के विषय में लिखा था—कोई भी मनुष्य मुझसे अधिक नित्य परिवर्तित होनेवाले भाग्य का शिकार नहीं हुआ। मैं तेरह बार धनी और निर्धन बना।

'मोल फलान्डर्ज' उपन्यास लिखने के पहले डी-फो न्यूगेट जेल में अठारह महीने तक रह चुका था और चोर, डाकू और दूसरे दुश्चरित्रों के सम्पर्क में उसके दिन व्यतीत हुए थे। उसने निर्धन जीवन की क्रूरता के सभी अंगों का पूर्ण अध्ययन किया था।

डेनियल-डी-फो के पिता का नाम जेम्स फो था। वह मोमबत्तीदान बनानेवाला कारीगर था। उसकी माता एक निर्धन कुलीन वंश की महिला थी। उसके परिवार के लोग आल्वा के ड्यूक के अत्याचार के भय से भागकर इँग्लैण्ड में जा बसे थे। जब डेनियल ने १६९५ ई० में अतुल सम्पत्ति एकत्र कर ली, तब उसने अपने नाम के साथ 'डी' जोड़ा जो कुलीनता का सूचक है।

लन्दन के कई व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित कर वह दो वर्षों के लिए नीदरलैण्ड्स्, जर्मनी, इटली, फ्रांस और पुर्तगाल का भ्रमण करता रहा। कमीशन के आधार पर उसे पर्याप्त आय हुई। इस भ्रमण में ही उसने

अपनी एक पुस्तक की सामग्री एकत्र की थी जो बाद में 'दी कम्प्लीट इँग्लिश ट्रेड्समैन' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।

२३ वर्ष की अवस्था में डी-फो ने मेरी टल्फे से विवाह किया था। दहेज में उसे तीन हजार पौंड प्राप्त हुआ था। उसने अब स्वयं मोजे का एक कारखाना खोल लिया। इसमें उसे सफलता मिली। वह शराब पीकर मस्त रहता। उसे घोड़ों का शौक था। उसने अनेक घोड़े खरीदे। वह जुआ खेलने और घुड़दौड़ में सम्मिलित होने लगा। इस तरह जितनी सफलता से उसने धन उपार्जित किया था, उतनी ही लापरवाही से उसका दुरुपयोग भी किया।

अन्त में घोर कठिनाई के कारण डी-फो 'मिन्ट' नाम के एक जिले में चला गया, जहाँ चोरों और डाकुओं का अड्डा था। वहीं से उसने पर्चेबाजी आरम्भ की। उसने 'योजनाओं पर एक निबन्ध' शीर्षक से एक पुस्तिका लिखी और व्हिग दलवालों को सुझाव दिया कि किस प्रकार से वे अपनी नीति में सफल हो सकते हैं। विलियम और उसके दल को यह पसन्द आया। इसके साथ ही डी-फो की स्त्री और उसके मित्रों ने उसके ऋण-दाताओं से समझौता कर लिया था और डी-फो लन्दन लौटने में समर्थ हुआ। शीघ्र ही विलियम ने समझ लिया कि आय और व्यापार की सरकारी नीति के लिए डी-फो एक अच्छा सलाहकार सिद्ध होगा। इस प्रकार वह डाकुओं और चोरों के डेरे से निकलकर राजा का व्यक्तिगत सलाहकार बन गया।

१७०२ ई० में घटनाओं का एक क्रम बँधा जिससे लेखक के रूप में डी-फो के भविष्य का जीवन-क्रम निश्चित हो गया था। इसी वर्ष उसको ज्ञात हुआ कि जनता सत्य और न्याय नहीं चाहती—वह स्वार्थी और मूर्ख है। अपना रक्त बहाकर भी कोई जनता को औचित्य, न्याय और मानवता का पाठ नहीं पढ़ा सकता। उसने तत्कालीन अधिकारियों के विरुद्ध व्यंग्य लिखना आरम्भ किया। महारानी आन्न के परराष्ट्र मंत्री नोटियम ने इन व्यंग्यों को समझ लिया और उसने यह जान लिया कि डी-फो का इससे सम्बन्ध है। परिणाम यह हुआ कि उसने डी-फो को राज्य और धर्म का शत्रु घोषित कर उसकी गिरफ्तारी का आदेश दिया।

डी-फो को 'पिल्लोरी' का दण्ड मिला। यह एक बर्बर दण्ड-पद्धति थी। इस प्रकार का दण्ड पानेवाले व्यक्ति की गर्दन और उसकी दोनों बाहें छेदों में घुसा दी जाती थी और उससे अपराध स्वीकार कराया जाता था।

यह दण्ड खुले बाजार में दिया जाता था और हृदयहीन जनता उधर से जाते समय दण्डित व्यक्ति के मुँह पर कीचड़ और कूड़ा-कर्कट फेंक देती थी। अपराधी जनता के सम्मुख घृणित समझा जाता था।

उन्हीं दिनों व्हिगों और साधारण जनता के बीच संघर्ष छिड़ गया था। जनता डी-फो को अपना मित्र समझने लगी थी। डी-फो की 'पिल्लोरी' पुष्पमालाओं से ढँक जाती थी। लोग आकर उसे शराब दिया करते थे। डी-फो ने 'पिल्लोरी' पर एक हास्यगीत लिखा था। 'पिल्लोरी' की स्तुति जनता गाती और डी-फो की जय मनाती। इस प्रकार दण्ड के तीसरे दिन तक डी-फो की सहानुभूति में बहुत से प्रदर्शन हुए और अन्तिम दिन सबने प्रसन्नता में शराब पी और डी-फो की जय-जयकार की ध्वनि गूँज उठी।

डी-फो कुछ समय तक जेल में रहा। टोरियों ने उसे अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया। उन लोगों ने जेल में ही उससे गुप्त वार्ता आरम्भ की और उसकी स्त्री के पास खर्च के लिए मुद्रा आदि भेजा। अन्त में समझौता हो गया और जेल से छूटने पर डी-फो ने उन लोगों के खर्च से 'रिव्यू' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इस पत्र में उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के हास्य, व्यंग्य और व्यभिचार सम्बन्धी लेख प्रकाशित करना आरम्भ किया। वह सदैव बीच वाले टोरियों की सहायता करता था। केवल इस अर्थ में कि वह व्हिगों के समर्थन में कुछ नहीं लिखता था। वह नैतिक, धार्मिक और ऐसे ही दूसरे विषयों पर उपदेशात्मक लेख छापता रहा और इस प्रकार 'पिल्लोरी' का दण्ड पाये हुए इस अपराधी ने अपने को धार्मिक सिद्ध करना चाहा और वह सफल भी हुआ।

उसके बाद चार वर्षों तक डी-फो ने रोबर्ट हार्ले के हाथ के कठपुतले की भाँति एक शठतापूर्ण जीवन व्यतीत किया। प्रत्यक्षतः वह व्हिग या राजनीतिक दलों से ऊपर उठा हुआ अपने को बताता था, किन्तु भीतर से वह टोरियों के गुप्तचर का कार्य करता था। वह अपने घर से बाहर ही रहा करता था, अतः उसकी स्त्री, लड़का और तीन लड़कियाँ, सब उसके विरुद्ध हो गई थीं। बाद में जब वह घर पर ही रहने लगा तब भी उन सबका व्यवहार उसके प्रति उपेक्षापूर्ण ही था। उन दिनों वह पत्रकारिता छोड़कर पुस्तकें लिखने लगा और धार्मिकता का पाठ पढ़ाने लगा। सम्भवतः अपने विगत कृत्यों पर पश्चात्ताप कर प्रायश्चित्त-स्वरूप वह ऐसा लिखने लगा था। कुछ भी हो, जनता अब भी धर्मभीरु थी इसलिए उसकी पुस्तकें खूब बिकीं।

डी-फो ऋण के भार से दबा हुआ था। उसे ऋणदाता द्वारा कैद कराये जाने का भय त्रस्त किये हुए था। इसी समय कप्तान रोजर्स द्वारा प्रस्तुत एलेक्जेन्डर सेल्कर्क की जहाजी दुर्घटना की सामग्री उसके हाथ पड़ी और उसे एक अच्छी विषय-वस्तु सूझ गई। इसके बाद 'रोबिन्सन क्रूजो' को लिखकर वह अपने प्रकाशक को छापने के लिए देता गया। उसे फिर से उसका संशोधन करने अथवा पढ़ने तक का अवसर नहीं मिला। यही कारण है कि कुछ आलोचकों का मत है कि 'रोबिन्सन क्रूजो' में अनेक असंगतियाँ और परस्पर विरोधी बातें हैं।

रोबिन्सन क्रूजो का जीवन और उसके 'साहसपूर्ण कृत्य', जिसमें डी-फो का अपनी प्रकृति के अनुकूल काल्पनिक अनुभव है, अत्यन्त सफल रचना थी। उन दिनों के पाठकों को केवल काल्पनिक उपन्यास से विशेष प्रेम नहीं था। इस उपन्यास की घटनाएँ वास्तविक जीवन से सम्बद्ध जान पड़ती थीं, इसीलिए वे बहुत ही प्रिय हो गईं।

'रोबिन्सन क्रूजो' समाचारपत्रों में छपनेवाली प्रथम लेखमाला थी। आदिम और अद्भुत स्थानों में भ्रमण करने का सर्वप्रथम वर्णन इसी पुस्तक में मिलता है। वास्तव में अंग्रेजी का यह पहला महान् उपन्यास है। इसका कारण यह है कि डी-फो अंग्रेजी गद्य-लेखकों में सर्वश्रेष्ठ था। वह व्यक्तियों, वस्तुओं और स्थानों का निर्माण करना जानता था। उसके ही समय के सैकड़ों लेखकों ने उसका अनुकरण किया और तब से आज तक अगणित लेखकों ने उसी के प्रदर्शित मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया है।

डी-फो फ्रेंच, डच, स्पेनिश और इटालियन भाषा धारा-प्रवाह में बोल सकता था। कथा-साहित्य के सभी सम्भव क्षेत्रों को उसने छान डाला था। उसके लिखे 'मोल फ्लान्डर्स' उपन्यास ने बहुत से यथार्थवादी और रोमानी उपन्यासों की रचना के लिए प्रेरणा दी। जिस तरह रोबिन्सन क्रूजो के चरित्र में वह अपने को ढाल देता है, उसी भाँति वह 'मोल फ्लान्डर्स' में भी अपने को ही 'मोल' के चरित्र में अंकन करता है।

कुछ आलोचकों का मत है कि 'मोल फ्लान्डर्स' जोला के 'नाना' और फ्लोबेयर के 'मादाम बोवारी' से अधिक यथार्थवादी है। जिस समय फ्रांस में प्रकृतिवाद का आन्दोलन पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और जोला इस क्षेत्र में सम्राट् समझा जाता था, उन्हीं दिनों अनातोले फ्रांस के आदेशानुसार मार्सेल श्वोब ने 'मोल फ्लान्डर्स' का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया था। फ्रांसीसी समालोचकों ने उसे प्रकृतिवादी साहित्य की उच्चतम कृति माना।

डी-फो फ्रांसीरियों के बीच इतना सम्मानित हुआ कि उसकी सबसे अच्छी जीवनी पोल दोतें नामक फ्रांसीसी ने ही लिखी थी।

'रोबिन्सन क्रूजो' के बाद डी-फो ने कप्तान सिंगलटन की जीवनी, 'साहसिक कृत्य और डकैती' आदि ग्रन्थ लिखे, किन्तु वे अधिक सफल नहीं हुए। इसके बाद उसने फ्रेंच और स्पेनिश में प्रचलित गुण्डों और डाकुओं के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले उपन्यासों को लिखने का प्रयत्न किया। न्यूज गेट जेल और मिन्ट जिले के डाकुओं के संसर्ग में रहकर उसने जो कुछ अनुभव किया था, उसका उपयोग 'मोल फ्लान्डर्स' में दिखाई पड़ता है। इसकी कथा-वस्तु विचारपूर्वक स्थिर की गई थी। यह उपन्यास उसकी दो सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है।

'मोल फ्लान्डर्स' की कथा-वस्तु ध्यान देने योग्य है :—

'मोल' अपने को एक सम्पत्तिशालिनी विधवा बताती है। वह एक ऐसे व्यक्ति से विवाह करती है, जो अपने को एक आयरिश जमींदार कहता है। विवाह होते ही स्त्री को मालूम हो जाता है कि आदमी एक लुटेरा है और आदमी भी जान लेता है कि स्त्री एक भीख माँगनेवाली है। दोनों स्तब्ध हो जाते हैं। स्त्री को गर्भ रह गया है, वह अपना अन्य विवाह कर लेना चाहती है। फिर एक अपनी चोरी और लूट में लग जाता है और दूसरी अपना अन्य पति ढूँढ़ने में लग जाती है।

मोल की उत्पत्ति कितनी रहस्यमय है। एक बार मोल की माँ को चोरी के अपराध में फाँसी की सजा होनेवाली थी, लेकिन जेलर से सम्बन्ध कर वह गर्भवती हो जाती है और गर्भवती स्त्री को फाँसी देने का नियम नहीं। मोल इसी सम्बन्ध का परिणाम है।

मोल की माँ अवाञ्छनीय समझी जाती है। वह अमेरिकी उपनिवेशों में भेज दी जाती है और मोल अनाथालय में पहुँचा दी जाती है। एक धनी स्त्री उसे अनाथालय से लाकर अपने आश्रय में रखती है। इस स्त्री के दो पुत्र हैं। इनमें से एक उससे बलात्कार करता है। दूसरा उसके प्रेम में बंध जाता है। वह मोल से कहता है कि वह उससे विवाह कर ले। सुहागरात में बड़ा भाई अपने छोटे भाई को खूब शराब पिला देता है, जिससे उसको यह ज्ञात हो कि मोल का कौमार्यहरण हो चुका है। यह दम्पति पाँच वर्ष तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। उसके बाद पति मर जाता है।

मोल पुनर्विवाह करती है। उसका पति ऋण में डूब जाता है, दण्ड

के भय से वह भाग जाता है। मोल भी अपने पति के ऋण के उत्तर-दायित्व से बचने के लिए अन्यत्र चली जाती है। उसकी भेंट वर्जिनिया के एक जमींदार से होती है और वह उसके साथ अमेरिका चली जाती है। वहाँ कुछ वर्षों तक सुखपूर्वक दिन व्यतीत होने के बाद उसे यह मालूम होता है कि उसके पति की माँ उसकी भी माँ है। वह पाप से डरकर अपने पति को छोड़ देती है और इँग्लैण्ड लौट जाती है। यहाँ वह एक और व्यक्ति की रखेली बनकर छः वर्षों तक रहती है। इसके बाद वह व्यक्ति भी बीमार पड़ जाता है। उसकी अन्तरात्मा कहती है कि यह उसके पाप का परिणाम था। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि स्वस्थ होने पर पवित्र जीवन बितायेगा। दुर्भाग्यवश वह स्वस्थ हो जाता है और मोल परित्यक्ता बन जाती है।

मोल फिर उस व्यक्ति से मिलती है, जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिखा गया है कि मोल उसे आयरिश जमींदार समझकर विवाह कर लेती है। जब वे दोनों भी पृथक् हो जाते हैं तो मोल को गर्भ रह जाता है। वह बच्चे को दूसरे की देख-रेख में छोड़ कर दूसरा पति ढूँढ़ने निकलती है। मोल फिर एक बंक के क्लर्क से विवाह करती है, लेकिन वह भी शीघ्र ही मर जाता है। अब उसका सौन्दर्य विलीन हो गया था। वह समझती है कि अब वह पुरुषों को आकृष्ट नहीं कर सकती। वह एक दूकान में चोरी करना सीख जाती है और अन्त में एक पेशेवर चोर, वेश्या और ठग बन जाती है। वह चोरी के अपराध में फाँसी का दण्ड पाती है, किन्तु उसका पति लुटेरा भी जेल पहुँचता है। दोनों को अपने कुकर्मों पर पश्चात्ताप होता है और वे वचनबद्ध होते हैं कि यदि उनका दण्ड घटाकर निर्वासन मात्र हो जाय तो वे अमेरिका लौटकर सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे। मुक्त होने पर वे दोनों वर्जिनिया पहुँचते हैं, और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं। मोल को अपने नाजायज सम्बन्ध से उत्पन्न पुत्र मिलता है। वे धनी जमींदार बन जाते हैं। जब मोल का पति मर जाता है तब मोल इँग्लैण्ड लौट जाती है। उस समय उसकी अवस्था सत्तर वर्ष की होती है। वह अपनी कहानी लिखती है, जिससे संसार नैतिकता की शिक्षा प्राप्त कर सके। मोल जो अपने हत्या आदि के कृत्यों का वर्णन करती है वह अत्यन्त रोमांचकारी है। निस्सन्देह यह डी-फो के स्वयं बन्दी होने के अनुभव का ही परिणाम था।

डी-फो के अन्तिम दिन रहस्यमय प्रतीत होते हैं। ऐसा मालूम पड़ता

है कि उसे अपने ऋणदाताओं द्वारा जेल भेजे जाने का भय था। इसी लिए उसने अपनी सारी सम्पत्ति अपने पुत्र के नाम लिख दी थी, किन्तु उसका पुत्र अपनी बहिनों और माता की देखभाल नहीं करता था। वे सब घोर कष्ट में पड़ी थीं। उनका पत्र पाकर डी-फो को बड़ी चिन्ता हुई। वह स्वप्न में भी अपनी लड़कियों और स्त्री को भूख से कष्ट उठाते हुए देखता था।

डेनियल डी-फो अपनी वृद्धावस्था में नैतिक शिक्षा देने का प्रयत्न करता था। उसने अपने जीवनकाल मे अनेक पुस्तकें लिखीं। अन्त में वह अपने जन्मस्थान के ही एक बोर्डिंग हाउस के कमरे में मरा। मृत्यु के समय वह अकेला था।
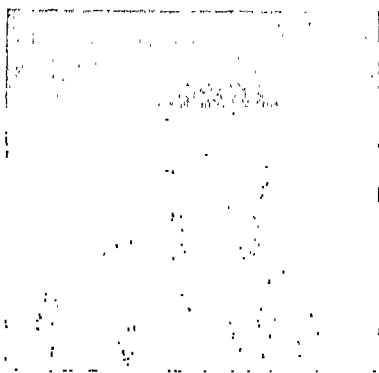
वाल्टेयर

(१६९४–१७७८ ई०)

१८वीं शती में फ्रांस के महान् लेखक वाल्टेयर की रचनाओं से ही फ्रांस की राज्यक्रान्ति का जन्म हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि वाल्टेयर का नाम उस समग्र शती को घेरे हुए है।

कारलाइल ने अपनी अमर पुस्तक 'फ्रेंच रेवुल्यूशन' में वाल्टेयर के सम्बन्ध में दो स्थानों पर लिखा है—फरवरी १७७८ ई० में बहुत दिनों के बाद वाल्टेयर पेरिस लौटा था। पुष्पों और हारों में छिपे हुए उसके शरीर भर में केवल दो आँखें चमक रही थीं। फ्रांस की जनता श्रद्धा से नत होकर उसके लिए अपनी आँखें बिछाये बैठी थी। फ्रांस की अत्यन्त सुन्दरी भी उसके चरणों के नीचे अपने केशों को समर्पित करने के लिए प्रस्तुत हो जाती। सड़कों पर भीड़ उमड़ पड़ी थी। नाट्यगृह में उसका सम्मान

किया गया। गुलाब के फूलों से वाल्टेयर ढँक गया था। लेकिन ऐसे महान् शिक्षक के शव को भी गुप्त रीति से दफनाना पड़ा था।

क्रान्ति की विजय होने पर कारलाइल ने लिखा है—यह एक ऐसा अशान्ति का युग था कि मृतक पुरुष की मिट्टी भी कब्र में शान्ति से नहीं पड़ी रह सकती थी। वाल्टेयर की हड्डियाँ कब्र से निकालकर पेरिस में उसकी दूसरी कब्र के लिए चुराई गई थीं। आठ सफेद घोड़ों से खींची जानेवाली गाड़ी पर वे हड्डियाँ रखी हुई थीं। सैनिक प्रदर्शन और जनता का जलूस अत्यन्त उत्साह से आगे बढ़ रहा था। उस मध्य रात्रि में फिर से वह कब्र में सदैव के लिए दफन हुआ।

वाल्टेयर का जन्म पेरिस के एक उच्च वंश में हुआ था। दस वर्ष की अवस्था में वह शिक्षा के लिए कालेज में भेजा गया। बाल्यकाल से ही वह विद्वान् और उच्च वंश के लोगों के संसर्ग में रहने लगा था। बारह वर्ष की अवस्था में वह कविता करने लगा था। उस समय उसकी कवित सुनकर एक महिला अत्यन्त प्रसन्न हुई थी। उस वृद्धा महिला ने अपनी मृत्यु के पश्चात् दो हजार फ्रांक वाल्टेयर के लिए पुस्तकें खरीदने को छोड़ा था। १७ वर्ष की अवस्था में वाल्टेयर ने कालेज छोड़ा था। उस समय एक सफल कवि के रूप में उसकी ख्याति फैल चुकी थी।

वाल्टेयर जब २१ वर्ष का हुआ, उस समय फ्रांस के बूढ़े बादशाह का देहान्त हुआ। देश में अत्याचार का आतंक छा रहा था। धार्मिक अन्ध-विश्वास और धर्म के नाम पर पादरियों का मनमाना कार्य चल रहा था। पादरियों और पुरोहितों द्वारा प्रचारित धर्म का वाल्टेयर विरोधी था। उसने इन धर्म के आचार्यों के प्रति खुलकर अपनी लेखनी का प्रयोग किया। धर्म का विरोध करनेवालों को जेल में ही स्थान मिलता था। वाल्टेयर को भी जेल जाना पड़ा।

वाल्टेयर ने जेल में ही 'हेनरीड' नाम का अपना दुःखान्त नाटक लिखना आरम्भ किया। ग्यारह महीने के बाद उसे जेल से छुटकारा मिला। एक दरबारी सामन्त के प्रयत्न से वाल्टेयर शासक के सम्मुख उपस्थित किया गया। उस समय पेरिस में तूफान उठा था। वाल्टेयर ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—अगर वहाँ शासन का उचित प्रबन्ध होता तो स्थिति इतनी भयानक न होती।

वाल्टेयर को उपस्थित करनेवाले व्यक्ति ने कहा—मैं श्रीमान् के सम्मुख उस युवक को उपस्थित कर रहा हूँ, जिसे आपने जेल से मुक्त

किया है और जिसे आप फिर जेल भेज सकते हैं। शासक (रिजेन्ट) इस पर मुस्कराया।

शासक ने वचन दिया कि यदि वाल्टेयर अच्छा व्यवहार करेगा तो उसे राज्य से सहायता प्राप्त होगी।

वाल्टेयर ने धन्यवाद देते हुए कहा—आपने मेरी जीविका की व्यवस्था की। इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

बाद में शासक ने एक हजार क्राउन और पेंशिन वाल्टेयर को दिया और उसका नाटक राज्यदरबार में खेला गया।

वाल्टेयर सदैव उच्च वंश के ड्यूक और सामन्तों की मंडली में ही रहता था। एक बार एक कुलीन व्यक्ति से उसका झगड़ा हुआ। इसी घटना के कारण उसे फिर जेल जाना पड़ा। अन्त में ६ मास बाद उसे इस शर्त पर मुक्ति मिली कि वह पेरिस छोड़ देगा।

वाल्टेयर ने अपने निर्वासन के दो वर्ष इँगलैण्ड में व्यतीत किये। इस काल में वह इँग्लैण्ड के महान् लेखक शेक्सपीयर, मिल्टन आदि की रचनाओं का अध्ययन करता रहा। इँग्लैण्ड में भाषण और विचार-स्वातंत्र्य का प्रभाव वाल्टेयर पर विशेष रूप से पड़ा। फ्रांस में इसके विपरीत था। वहाँ कोई भी धर्म अथवा राज्य के विरुद्ध नहीं बोल सकता था। इँग्लैण्ड में भी वाल्टेयर का बहुत सम्मान हुआ और विद्वान् और बड़े लोगों द्वारा उसका आदर हुआ। वाल्टेयर ने अपने प्रवासकाल में अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखीं।

१७२८ ई० में पेरिस लौटने पर वह अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयत्न में लगा। भाग्य से उसे एक लाटरी में बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। उसने अपने पैसों को ऐसे साधन में लगाया, जिससे उसे निरन्तर लाभ ही होता गया।

देश में चर्च के नाम पर जो अत्याचार हो रहा था वह उसे असह्य था। एक विख्यात अभिनेत्री को क्रिश्चियन शव-संस्कार नहीं मिला। अपनी वृत्ति के कारण वह पुरोहितों की दृष्टि में तुच्छ समझी गई। वाल्टेयर का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतएव इस अन्याय का प्रभाव उस पर विशेष रूप से पड़ा। परिणाम यह हुआ कि वाल्टेयर चर्च और पुरोहितों का घोर विरोध करने लगा।

१७३४ से १७४९ ई० तक वाल्टेयर का जीवन सिरे नाम के एक विशाल महल में व्यतीत हुआ। यह महल चैम्पेन नगर में था। वाल्टेयर अपनी एक प्रेयसी के साथ राजकुमारों की भाँति वहाँ रहता था। उस

समय उसकी वार्षिक आय तीन हजार पौंड थी। उसकी रुचि के अनुसार सुख के सभी साधन वहाँ उपस्थित थे।

वाल्टेयर के जीवन की एक घटना यह भी है कि प्रशिया के सम्राट् फ्रेडरिक का उसके प्रति विशेष सम्मान था। वाल्टेयर कई बार सम्राट् से मिल चुका था और एक बार उसके आमंत्रण पर उससे मिलने गया भी था। अन्त में फ्रेडरिक के अनुरोध पर स्थायी रूप से उसके साथ रहना वाल्टेयर ने स्वीकार कर लिया। १७४८ ई० में मैडम-डी-चाटलेट का देहान्त हुआ। यही वह महिला थी जो १५ वर्ष तक उसकी आराध्य देवी के रूप में छाया की भाँति प्रतिक्षण उसके साथ थी। उसकी मृत्यु के बाद वाल्टेयर अत्यन्त शोकाकुल होकर अपने जीवन से हताश होकर भटकता रहा।

फ्रेडरिक साहित्य के प्रति रुचि रखता था और स्वयं भी कविता करता था। उसे अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने की लालसा थी और इसी लिए वाल्टेयर जैसे कुशल कला-मर्मज्ञ द्वारा अपनी रचनाओं का वह संशोधन कराना चाहता था।

वाल्टेयर अब बादशाह के साथ ही महल में रहता और साथ ही बैठकर भोजन करता। इसमें सन्देह नहीं कि वाल्टेयर को सब प्रकार का सुख वहाँ प्राप्त था।

दरबार के अनेक उच्च कर्मचारियों को वाल्टेयर के सम्मान के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई। कुछ इधर-उधर की बातें फैलीं। वाल्टेयर धन की लालसा में सदैव अपने प्रयोग करता रहता था। इसी सम्बन्ध में एक यहूदी के साथ उसका व्यवसाय चल रहा था। यहूदी ने उसे धोखा दिया। अन्त में इस घटना का भी जर्मन-सम्राट् पर प्रभाव पड़ा।

एक दिन लामेट्री नाम के एक डाक्टर ने वाल्टेयर के कानों में कहा—जर्मन शाह फ्रेडरिक का कहना है कि मैं वाल्टेयर को अगले वर्ष भी अपने साथ रखना चाहता हूँ क्योंकि संतरे का छिलका फेंकने के पहले उसका रस चूस लिया जाता है।

दूसरी ओर जर्मनी के बादशाह से किसी मित्र ने कहा कि एक बार जेनरल मेन्सटीन अपनी एक रचना के संशोधन के लिए वाल्टेयर के पास गया तो उसने उसे उत्तर दिया कि बादशाह ने अपने गन्दे कपड़ों को मेरे पास धोने के लिए भेजा है, तब तक तुम प्रतीक्षा करो।

संदेह और अविश्वास का अंकुर दोनों हृदयों में प्रस्फुटित हो रहा था। अन्त में वाल्टेयर वहाँ से चला गया।

वाल्टेयर के उग्र स्वभाव का परिचय इस बात से मिलता है कि, वहाँ से हटने पर उसने फ्रेडरिक के नाम जो पत्र लिखा था उसमें उसे 'लूक' नाम से सम्बोधित किया गया था। इस 'लूक' शब्द का अर्थ बहुत समय तक लोग न समझ सके थे। अन्त में वाल्टेयर के एक सचिव ने इस रहस्य को खोला।

वाल्टेयर जब जिनेवा में रहता था, उस समय उसने एक बन्दर पाल रखा था, जो मित्र और शत्रु दोनों पर आघात करता था। एक बार उसने वाल्टेयर के पैर में तीन जगह काटा था। उस बन्दर का नाम वाल्टेयर ने 'लूक' रखा था। इसी लिए कभी-कभी मित्रों से बात करते हुए अथवा पत्रों में भी वह इस शब्द का प्रयोग करता था। उसने लिखा था---फ्रेडरिक मेरे बन्दर की भाँति है, जो अपनी रक्षा करनेवालों को भी काटता है।

१७५४ ई० में वाल्टेयर को पेरिस में रहने की आज्ञा नहीं मिली, अतएव वह जिनेवा के पास एक सुन्दर भवन में निवास करने लगा और कुछ ही समय बाद उसने एक जमींदारी खरीदी। वहाँ पर २० वर्ष तक वह शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करता रहा। उसने इतनी स्वतन्त्रता-पूर्वक सुखमय जीवन इसके पूर्व कभी नहीं व्यतीत किया था। इस काल में उसका यह स्थान जैसे साहित्यिकों के लिए तीर्थस्थान बन गया था। गोल्डस्मिथ और गिबन जैसे लेखक भी वाल्टेयर से मिलने उसके यहाँ गये थे।

फरनी नामक स्थान में वाल्टेयर ने एक नाट्य-शाला का निर्माण कराया था। नाटक देखनेवाले अनेक आमंत्रित सज्जनों के लिए उसके यहाँ भोजन का प्रबन्ध भी रहता था। उसके यहाँ आदर-सत्कार के कारण लोग विशेष प्रभावित होते थे। इस समय तक वाल्टेयर की वार्षिक आय सात हजार पौंड थी। उसका जीवन वैभवशाली था।

जो लोग यह समझते हैं कि वाल्टेयर नास्तिक था और धर्म का विरोध करता था, उन्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उसने फरनी के एक पुराने टूटे गिरजाघर को गिरवाकर उसे अपने व्यय से बनवाया था। उसने इस गिरजाघर के सम्बन्ध में लिखा है---संसार में जितने भी चर्च बने हैं सब 'सेन्ट' लोगों के नाम पर समर्पित किये गये हैं; लेकिन इस समस्त विश्व में मेरा यह चर्च एकमात्र भगवान् के लिए उत्सर्ग किया गया है। मेरी दृष्टि में सेवकों से अधिक स्वामी का महत्त्व है।

१७७८ ई० में जब वाल्टेयर पेरिस लौटा था, उस समय उसके प्रशंसक अपने कन्धे से उसकी कोच उठाकर उसके होटल तक ले गये। सीढ़ियों

पर चढ़ते हुए उसने कहा—आप लोग क्या मुझे गुलाब के पुष्पों में ही ढँक देना चाहते हैं ?

वाल्टेयर ने अपने जीवन-काल में २६ दुःखान्त नाटकों की रचना की थी। इसके अतिरिक्त सुखान्त, ओपेरा, व्यंग्य, पद्यबद्ध कहानियाँ, साहित्यिक समीक्षाएँ, गद्यात्मक कहानियाँ, ऐतिहासिक विशाल कृतियाँ, असंख्य दार्शनिक लेख, धार्मिक लेख, दर्शन, कोश तथा राजनीतिक लेख लिखे, जिनके कारण समस्त योरोप में उसकी ख्याति फैल गई थी।

उसके लेख या कृतियाँ स्वतन्त्र विचारों के समर्थन में रची गई हैं। गिर्जे की अन्ध रूढ़ियाँ वाल्टेयर को बौद्धिक स्वतन्त्रता की शत्रु जान पड़ीं। विरोध में लिखे हुए शब्द अमोघ हैं। धार्मिक अन्धानुकरण के कारण जिन अत्याचारों को समाज में होते हुए उसने देखा उनका खुलकर विरोध किया।

वाल्टेयर की सबसे महान् कृति उसका 'ला हेनरिएड' नामक महाकाव्य है।

नाटककारों में शेक्सपीयर के बाद उसका नाम लिया जाता है। वाल्टेयर मनोबौद्धिक कार्य करने का अदम्य उत्साह लेकर उत्पन्न हुआ था, अपार क्रोध, घृणा, व्यंग्य, जोश, क्रूरता के बावजूद भी उसमें उदारता थी।

उसने बहुत से ऐसे व्यक्तियों की सहायता की और उन्हें दण्ड से मुक्त करा दिया जो सरकार के धर्मोन्माद के शिकार बने थे।

वाल्टेयर की मृत्यु के बाद पेरिस के पादरियों ने उसके शव-संस्कार में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया। अन्त में उसका शव पेरिस से चेमपेन नगर भेजा गया, वहीं पर उसके भतीजे द्वारा उसका अन्तिम संस्कार हुआ। दूसरे दिन बड़े पादरी की आज्ञा पहुँची, जिसमें लिखा था कि उसका शव-संस्कार न किया जाय; लेकिन उस समय तक वाल्टेयर मिट्टी की गोद में विश्राम कर रहा था।

तेरह वर्षों के बाद क्रान्तिकारियों ने उसे अपना पथ-प्रदर्शक घोषित किया और उसकी हड्डियां पेरिस के कब्र में सम्मान के साथ दफन की गईं।

(१७१२–१७७८ ई०)

१८वीं शताब्दी के फ्रेंच साहित्यकार रूसो का विश्व-साहित्य पर कितना प्रभाव पड़ा है, यह साहित्य के अध्ययनशील व्यक्तियों से नहीं छिपा है। रूसो के सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों में विशेष रूप से छानबीन की गई है। उसके जीवन और रचनाओं पर बहुतेरे अनुसन्धान और मत निश्चित किये गये हैं।

संसार के समस्त लेखकों में रूसो ने अपने सम्बन्ध में जितना स्पष्ट और मार्मिक वर्णन किया है, उतना शायद ही अन्य किसी लेखक ने किया हो वह अपने 'कन्फेशन' में लिखता है—अपने आप अकेला, मैं अपने हृदय की भावनाओं को जानता हूँ और मैं औरों को भी जानता हूँ। मेरा निर्माण उन लोगों की भाँति नहीं हुआ है, जिन्हें मैंने देखा है। मैं दावे से विश्वास करता हूँ कि उनमें से किसी की भी भाँति नहीं बना हूं, जो अपना अस्तित्व रखते हैं। मैं उनसे अच्छा नहीं हूँ तो कम से कम उनसे भिन्न तो हूँ ही। प्रकृति ने उस साँचे को नष्ट करके जिसमें मैं बना, बुरा किया या भला किया इसका निश्चय तो तभी होगा जब कि मैं पढ़ लिया जाऊँगा।

अपनी आत्मकहानी में रूसो फिर लिखता है—कुछ हद तक यद्यपि मैं एक मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ, फिर भी बहुत दिनों तक मैं बच्चा ही रह गया और बहुत हद तक मैं अब भी हूँ। मैंने जनता में अपने को कभी भी महान् दिखाने का दम नहीं भरा। मैं जैसा हूँ वैसा ही दिखाने की कोशिश भी मैंने की है। मुझे प्रौढ़ावस्था में जानने के लिए मेरी युवावस्था को पूर्णतया जान लेना नितान्त आवश्यक है।

रूसो का जन्म जिनेवा में हुआ था। उसके जन्म के बाद ही उसकी माता का देहान्त हो गया था। उसका पालन-पोषण उसकी बुआ ने किया था। उसे अपने पिता का अत्यधिक प्यार प्राप्त था। बचपन में वह कभी अन्य बालकों के साथ सड़कों पर खेलने नहीं निकला था। रूसो का पिता एक घड़ीसाज था; लेकिन उसकी प्रवृत्ति अध्ययन की ओर जीवन भर रही। वह उपन्यास और प्रेमकथाएँ बड़े चाव से पढ़ता था; और कभी-कभी अपने पुत्र द्वारा पढ़वाकर उन्हें सुनता था। निस्सन्देह यह रुचि रूसो को अपने पिता की ओर से प्राप्त हुई थी।

१७२२ ई० में रूसो का पिता उसे छोड़कर जिनेवा से चला गया। रूसो की देख-रेख का भार उसके चाचा के ऊपर पड़ा। उस समय से रूसो के जीवन में अशान्ति का जो समावेश हुआ, वह उसके जीवन पर्यन्त बना रहा। उसके चाचा ने उसे एक घड़ीसाज के निरीक्षण में छोड़ दिया। घड़ीसाज ने रूसो के ऊपर कड़ा नियंत्रण रखा। इससे वहाँ वे सभी बुरा-इयाँ आ गईं जो भय के कारण उत्पन्न होती हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में रूसो वहाँ से निकल भागा।

इसके बाद उसे एनसी नगर में मैडम-डी-वारेन्स के यहाँ शरण मिली। मैडम-डी-वारेन्स एक अत्यन्त निर्भीक, दयालु, प्रसन्न स्वभाव की महिला थी। थोड़े ही दिन पूर्व उसने रोमन कैथोलिक धर्म की दीक्षा ली थी। उसके आग्रह से रूसो शिक्षा प्राप्त करने के लिए ट्यूरिन नगर भेजा गया, जहाँ उसने प्रोटेस्टेण्ट धर्म त्याग दिया और कैथोलिक धर्म की दीक्षा ली। एनसी में रूसो ने संगीत विद्या का अच्छा अभ्यास किया था। अट्ठारह से बीस वर्ष की अवस्था तक रूसो ने घुमक्कड़पन में ही अपना समय व्यतीत किया। उस समय उसे भूखा, निराश और उद्विग्न रहना पड़ता था; लेकिन यौवन की लहरों में वह सदैव निर्द्वन्द्व और प्रसन्न रहता था।

१७३२ ई० में मैडम-डी-वारेन्स से फिर रूसो की भेंट हुई। अब उसने अपना चित्त संगीत, वनस्पति-शास्त्र और आयुर्वेद की ओर लगाया और धीरे-धीरे दर्शन की ओर वह आकृष्ट हुआ। १७३८ ई० तक के बीच में उसने अपने अध्ययन को आनुक्रमिक स्वरूप दिया। उसने पूरे मनोयोग से साहित्यिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक स्वाध्याय का मार्ग प्रशस्त किया।

मैडम-डी-वारेन्स ने रूसो को छोड़कर जब कहीं अन्यत्र अपना प्रेम-सम्बन्ध जोड़ा तब उन दोनों के सम्बन्ध में विच्छिन्नता आ गई। १७४१ ई० में रूसो पेरिस चला गया। वह अपने साथ संगीत पर लिखी हुई हस्त-लिखित प्रति भी लेता गया था, जिसमें संगीत की नवीन पद्धति का निर्माण किया गया था। उसे उसने वैज्ञानिक एकेडमी को दिया। एकेडमी ने इसे न तो नवीन माना और न उसे वाद्ययन्त्रों के उपयुक्त समझा। चौदह महीने एक फ्रांसीसी राजदूत के सेक्रेटरी पद पर कार्य करने के बाद रूसो वहाँ से अलग हो गया। बाद में रूसो के 'ओपेरा' और सुखान्त रचनाओं द्वारा पेरिस में उसकी प्रतिष्ठा हुई। सैलूनों में उसका स्वागत हुआ। उन दिनों फ्रांस के प्रतिष्ठित लेखक दीदरो, मारमेन्तल और ग्रिम से उसकी घनिष्ठ मैत्री थी। रूसो का प्रेम-सम्बन्ध एक अशिक्षित महिला थेरेस से

हुआ। विवाह के बन्धन में न पड़ने के कारण उन दोनों को अपने बच्चों को अस्पताल की देख-रेख में देना पड़ा।

१७४९ ई० में जब रूसो का मित्र दीदरो कैद था, उस समय रूसो उससे मिलने जा रहा था। मार्ग में उसने एक सूचना पढ़ी, जिसमें लिखा था—'क्या कला और विज्ञान की उन्नति ने नैतिकता को विशुद्ध किया है?' इस विषय पर निबन्ध लिखने में प्रथम आने वाले को डाइजोन की एकेडमी पुरस्कार देगी। रूसो के मन में उस विषय पर लिखने की तीव्र उत्कण्ठा हुई। दीदरो के प्रोत्साहन से रूसो ने सभ्यता का विकास लिखा। १७५० ई० में रूसो को पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस लेख का प्रभाव स्वयं रूसो पर पड़ा और उसने अपने जीवन को उत्तरोत्तर सादा और विशुद्ध बनाना आरम्भ किया। अब वह एक चरित्र-सुधारक बन गया।

रूसो ने अपनी दोनों कृतियाँ 'डिस्कोर्स' और 'ला डेविन डी विलेज' राजा को भेंट कीं। इन रचनाओं के कारण वह प्रख्यात हो चुका था। इसके बाद वह अपनी मातृभूमि स्विजरलैण्ड में आकर रहने लगा। उसने फिर प्रोटेस्टेण्ट धर्म को अपना लिया। १७५४ ई० में रूसो ने फिर पारितोषिक पाने का प्रयत्न किया और 'मनुष्यों में असमानता का क्या मूल है और क्या यह प्रकृति का नियम है?' इस कृति पर उसे पारितोषिक नहीं प्राप्त हुआ। रूसो ही वह व्यक्ति था, जिसने व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाज की सारी बुराइयों का मूल बताया था।

स्विजरलैण्ड में रहते हुए रूसो ने अपनी प्रथम राजनीतिक पुस्तक 'कण्ट्रेट सोशल' प्रस्तुत की थी। १७५६ ई० में एक महिला की कृपा से रूसो को मोण्टमोरेन्सी के जंगल के किनारे एक गृह मिला, जहाँ वह रहने लगा। रूसो प्रकृति का महान् प्रेमी था। वह खेतों और जंगलों को देखकर खिल उठता था। अन्त में उस महिला से झगड़ा होने के कारण उस स्थान से भी उसे हटना पड़ा।

१७५८ ई० में रूसो की लिखी पुस्तक 'लेटर दी अलेम्बर्ट' प्रकाशित हुई। इसके बाद १७६१ ई० में 'ला नोवे दी हेलोइसी', १७६२ ई० में 'कण्ट्रेट सोशल' और 'एमिली' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

'एमिली' के प्रकाशित होते ही एक तूफान सा आ गया। इस उपन्यास को राज्य की ओर से जला देने की आज्ञा हुई। इस उपन्यास में यह दिखलाया गया है कि वास्तव में मनुष्य समाज द्वारा पतित और घृणित बनता है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार परिस्थिति के अनुकूल

शिक्षा के स्वरूप में भी परिवर्तन होना चाहिए। बच्चे को सामाजिक बुराइयों से पृथक् रख कर किस प्रकार शिक्षा देनी चाहिए, जिसमें कि प्रकृति का भी प्रमुख योग हो। बिना प्रकृति की सहायता के शिक्षा अधूरी रहती है अथवा सच्ची शिक्षा हो ही नहीं सकती। शिक्षा के लिए बच्चों को उन्मुक्त छोड़ देना चाहिए, जिससे सदैव बालक यह पूछता रहे—इससे क्या लाभ है? या इसकी क्या आवश्यकता है? अथवा ऐसा क्यों?

नीति, प्राणिशास्त्र, इतिहास के अध्ययन द्वारा बालक आगे चलकर परिश्रमी, भाव-प्रवण, शान्त, दृढ़ और साहसी हो जायगा। इस प्रकार शिक्षण का पूरा स्वरूप, बालक के विकास-क्रम के अनुसार, इस पुस्तक में खींच दिया गया है।

रूसो के प्रति विरोध इतना बढ़ गया था कि उसे भागकर जेल जाने से मुक्ति मिली। उस समय वाल्टेयर का नाम विश्व-विख्यात हो गया था। रूसो की उससे अनबन हो गई थी। उसने एक कड़ा पत्र वाल्टेयर को भेजा था, इसलिए वह उससे भी सहायता नहीं लेने गया। पेरिस के बाद जिनेवा से रूसो पर तूफान टूटा। वह भागकर मोशर्स पहुँचा, जहाँ प्रशिया के गवर्नर ने उसे शरण दी। फिर रूसो का विरोध प्रबल वेग से होने लगा। वाल्टेयर ने भी रूसो के विरोध में एक लेख लिखा और फिर रूसो ने भागकर बिन्नी झील के द्वीप में शरण ली।

रूसो ने वाल्टेयर के नाम जो पत्र लिखा था, उसका साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। अतएव यहाँ उसे दे देना हम आवश्यक समझते हैं—'महाशय, मैं आपसे प्रेम नहीं करता। आपने मुझे ऐसी चोटें पहुँचाई हैं, जो मेरी अन्तरात्मा तक पहुँची हैं। मैं सदैव एक शिष्य की भाँति आपसे उत्साह पाने का अभिलाषी था; लेकिन जिनेवा में अपने आप स्थान पाने के बदले मेरा आवास आपने नष्ट कर दिया। मैंने अपने मित्रों के बीच में आपकी जो प्रशंसा की थी, उसके बदले आपने उन मित्रों को मुझसे दूर कर दिया। यह आप ही हैं, जिसने मेरी अपनी मातृभूमि में मेरा जीवन दुर्वह बना दिया। वह आप ही हैं, जो मरणोन्मुख व्यक्ति को जो शान्ति मिलनी चाहिए, उसे छीनकर मुझे विदेश में प्राण-त्याग करने का कारण बनेंगे और मैं एक नाली में फेंक दिया जाऊँगा। आपके प्रति श्रद्धा का यही एक उपहार पाऊँगा, जब कि आप उन सारी मनचाही श्रद्धा के भाजन बनकर समाधि की ओर चलेंगे। सचमुच मैं आपसे घृणा करता हूँ, क्योंकि आपने यही चाहा। लेकिन मैं उस व्यक्ति के समान आपसे घृणा करता हूँ, जो इससे अधिक आपसे प्रेम करने योग्य है, यदि आपने

वैसा चाहा होता। आपके प्रति मेरी सारी भावनाओं में केवल एक ही भावना जीवित रह गई है और वह है आपके प्रति मनोमोहकता। आपकी महान् प्रतिभा को देखकर कोई उसे अस्वीकार नहीं कर सकता। वह मनोमोहकता है आपकी रचनाओं के प्रति। यदि मैं केवल आपकी मनीषा के प्रति श्रद्धा करता हूं, तो यह मेरी गलती नहीं है। उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने में कभी चूकूँगा नहीं—बिदा महाशय।'

१७६६ ई० के जनवरी महीने में ह्यूम के प्रोत्साहन से रूसो लंदन गया। लंदन में डर्बीशायर के बूटन नामक स्थान पर रहकर उसने अपने कन्फेशन (आत्मकहानी) के पाँच भाग प्रस्तुत किये। कुछ समय बाद ही वह इस निश्चय पर पहुँचा कि केवल वाल्टेयर ही नहीं, बल्कि सारे संसार ने उसे नष्ट करने का कुचक्र रचा है। फिर रूसो को पलायित होना पड़ा। अब की बार उसने अपना नाम बदल डाला और इधर-उधर कुछ दिनों भटकने के बाद पेरिस में आकर रहने लगा। पेरिस में उसने कन्फेशन को पूर्ण किया। अपनी अशान्ति को संगीत और वनस्पति विज्ञान द्वारा दूर करने का वह प्रयत्न करता रहा।

रूसो का जीवन इतना अशान्तिपूर्ण था कि संसार में कहीं भी उसे ऐसा स्थान नहीं दिखाई पड़ता था, जहाँ वह चैन से अपना जीवन व्यतीत कर सके। कभी-कभी तो उसे केवल चौबीस घण्टों में उस स्थान से निकल जाने की आज्ञा मिली थी। रूसो ने अपने कन्फेशन में लिखा है—इस प्रकार अपनी शक्ति और ऋतु की अनुकूलता को देखने की अपेक्षा भी भागकर बिना किसी दूसरे स्थान की शरण लिये मैं किसी एक ही स्थान पर आक्रमण से सुरक्षित नहीं रह सकता था। इन समस्त चिन्तनों ने मुझे फिर उसी विचार पर ला पहुँचाया जिसमें मैं अभी-अभी उलझा हुआ था। मैं यह चाहने और निश्चय करने को बाध्य हुआ कि एक आवारे की भाँति निरन्तर एक स्थान से खदेड़ा जाकर दूसरे पर जाने और इस प्रकार धरातल पर भटकने की अपेक्षा आजीवन जेलवास चुन लूँ।

रूसो ने जिस सचाई और ईमानदारी के साथ अपना आत्मचरित्र उपस्थित किया है, वह अवर्णनीय है। यह एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र है, जिसे समाज ने ठुकराया और प्रकृति ने अपने शान्तिमय अञ्चल की छाया प्रदान की। उसकी लेखनी का प्रभाव पाठक पर जादू का प्रभाव डालता है। भले ही इस कृति में रूसो एक भविष्यद्रष्टा न हो, जैसा कि अपनी अन्य कृतियों में वह रहा, फिर भी इस रचना में वह एक जादूगर के रूप में अवश्य है।

रूसो का प्रभाव-क्षेत्र सीमित नहीं किया जा सकता। उसने धार्मिक क्षेत्र में भी. परिवर्तन उपस्थित किया और नैतिकता का भी पाठ पढ़ाया। उसने कल्पना को स्वतन्त्र किया। उसने बाह्य प्रकृति मे शान्ति और सान्त्वना प्राप्त की और उसे एक नये साँचे में ढालकर मानव-समाज के सम्मुख उपस्थित किया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसने फ्रेंच भाषा के गद्य को रञ्जन शक्ति और अभिव्यञ्जना शक्ति से परिपूर्ण कर दिया। उसने कला के पुराने आदर्श को फेंककर नवीन आदर्श स्थापित किया।

जीवन के पिछले पहर में रूसो ने अपने को एक महान् लेखक सिद्ध कर दिखाया। उसकी आत्मकथात्मक कृतियों में उसके विचारों और उदात्त भावनाओं की झाँकी बराबर देखने को मिलती है। उस महापुरुष को प्रकृति ने प्रसन्न और लोकोपकारक बनाया, किन्तु मानव समाज ने उसे विपन्न और बुरा बनाकर छोड़ा। यही कारण था कि अपने जीवन में प्राय: सभी मित्रों से उसका झगड़ा हुआ था।

रूसो ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज की बुराइयों, आडम्बरों, बेईमानियों, विलास, झूठे दिखावों और ढोंगों के विरुद्ध क्रान्ति की ज्वाला जगाई है। उसने तत्कालीन पतित और नीच समाज को विनष्ट कर नव-निर्माण का संदेश दिया है। अपने 'कण्ट्रैट सोशल' में उसने दिखाया है कि किस प्रकार आजादी और सरकार दोनों अपने-अपने स्थान पर पारस्परिक प्रेमसूत्र में बँधकर रह सकती हैं। उसने बताया है कि किस प्रकार समाज के नवनिर्माण द्वारा मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के विकास में सहायक हो सकते हैं। रूसो का कहना है कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुआ है; किन्तु चारों ओर वह बन्धनों से जकड़ा हुआ है। फिर भी सामाजिक व्यवस्था को वह लोकोपकारी मानता है। उसने बताया है कि किस प्रकार समाज के नियमों को मानते हुए भी मनुष्य पुनः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है।

रूसो ने अपने 'वोलोन्ते जेनरल' में समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों पर खुले हृदय से विचार किया है। इसमें सभी जनों की समानता का समर्थन किया गया है।

'ला नौवेली हेलोसी' रूसो की एक रोमांटिक कृति है। इसमें पारिवारिक तरीकों के विशुद्धीकरण पर जोर दिया गया है। रूसो ने अपनी इस कथाकृति में भावुकता को नैतिकता का पाठ पढ़ाया है।

रूसो वास्तव में आदर्शवादी था। यह आदर्शवाद उसकी उस भावुकता पर आधारित था, जो उसकी कल्पना और चिन्तना का परिणाम थी।

यही कारण था कि वह निर्वैयक्तिक विचारक नहीं था। वह हृदय का उदार था; किन्तु आशंकाओं से भरा हुआ था। उसमें अभिमान की प्रचुर मात्रा विद्यमान थी। वह कल्पना-लोक में डूबा हुआ आशा की किरणों को देखता रहता, किन्तु जब वास्तविक जगत् पर उसकी दृष्टि पड़ी तो संसार उसे नीचता से भरा दिखाई पड़ा। वह स्वतन्त्रता का समर्थक और अत्याचारों का घोर विरोधी था। वह एक स्वच्छन्द विचारक और भावना-प्रवण दार्शनिक था। इसी लिए वह अपने समसामयिक विचारकों और दार्शनिकों की पंक्ति से एकदम पृथक् खड़ा दिखाई पड़ता है।

कन्फेशन में एक स्थान पर वह लिखता है—यदि मैं किसी और की भाँति होता, यदि मुझमें भी अपनी सराय में उधार माँगने और कर्ज लेने की कला होती, तो मैं आसानी से अपनी कठिनाइयों से त्राण पा जाता। लेकिन ऐसे विषयों में मेरा अभिमान मेरी असमर्थता से होड़ लेता था। मैंने प्रायः अपना समस्त जीवन कठिन परिस्थितियों में बिताया और कभी-कभी तो मुझे बिल्कुल ही रोटी तक नहीं मिल पाती थी तो भी एक बार भी ऐसा अवसर मेरे सामने नहीं आया कि कोई ऋण देनेवाला मुझसे पैसे माँगे और तुरत ही न पा गया हो। मैंने कभी भी तुच्छ ऋण में अपने को नहीं फँसाया और ऋण लेने के बजाय कष्ट उठाना पसन्द किया।

गेटे

(१७४९-१८३२ ई०)

योरोप के महाकवियों में होमर, वर्जिल और दान्ते के बाद जर्मनी के महाकवि गेटे का स्थान माना जाता है।

गेटे एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न कुल में उत्पन्न हुआ था। उसका पिता कौन्सिलर था। उसकी माता दयालु और धार्मिक मनोवृत्ति की महिला थी। माता और पिता दोनों का ध्यान बालकों की शिक्षा की ओर था। माँ की प्रेरणा के कारण गेटे और उसकी बहिन दोनों बचपन में ही नियमित रूप से प्रतिदिन ईश्वर की वन्दना करते। पिता स्वयं उन्हें शिक्षा देता। वह अत्यन्त सावधानी से गेटे की रुचि कला और साहित्य की ओर प्रवृत्त करता।

गेटे सात वर्ष की अवस्था में जर्मन भाषा के वाक्यों को लैटिन में अनुवादित कर लेता था। वह बड़ी उत्सुकता से अपनी माता से कहानियाँ सुनता था। इन कहानियों द्वारा वह एक नवीन कल्पना-लोक में भ्रमण करने लगता। उसका कवि-हृदय जागरित हुआ। वह अपने कमरे के सामने अंगूर के बाग को देखता। प्राकृत दृश्यों से आकर्षित होकर वह तन्मय हो जाता था। वह अपने पिता के साथ अंगूर के बगीचे में जाता और अंगूर के गुच्छों को एकत्र करता।

कला में उसकी रुचि बड़ी छोटी अवस्था में विकसित हो रही थी। वह मोम की मूर्तियाँ बनाता था। पिता के निजी पुस्तकालय से वह प्राचीन कवियों की कृतियों का अध्ययन करता था। पिता के विचारों का बालक पर विशेष प्रभाव पड़ा था। वह प्रायः अपने पिता के वाक्यों में ही उत्तर देता था। जैसे---ईश्वर भली भाँति जानता है कि दुर्घटनाएँ एक शक्तिशाली आत्मा की कुछ हानि नहीं कर सकती हैं।

गेटे अपनी कक्षा में सुन्दर लिपि लिखने में सर्वप्रथम आया था। संयोग से एक कुशल चित्रकार उसके मकान में रहने लगा। गेटे उसके समीप बैठकर देखता था। वह प्रश्न पूछता और चित्रकार प्रसन्नतापूर्वक उसे सन्तुष्ट करता। इस तरह गेटे की जिज्ञासा बढ़ती ही गई और कुछ समय बाद वह स्वयं अपनी चित्रित रेखाओं की रंगामेजी मे प्रसन्नता अनुभव करने लगा।

गेटे के पिता ने अपने पुत्र के लिए सभी साधन प्रस्तुत कर दिये थे। एक सुन्दर भवन का शिलान्यास स्वय गेटे के नन्हे हाथों से हुआ था। कुलीन, राज्यकर्मचारी, कलाकार और साहित्यिकों के संसर्ग में सदैव रहने के कारण बालक गेटे की प्रतिभा प्रखर होती गई।

कविता करना और चित्र बनाना यही गेटे का व्यसन हो गया था। १६ वर्ष की अवस्था में एक बार मानसिक उद्विग्नता के कारण उसने अपनी सभी आरम्भिक रचनाओं को जला डाला था। उन दिनों गिरजाघर की सभी प्रार्थनाओं से वह विमुख हो गया था।

गेटे के पिता ने उसे कानून की शिक्षा के लिए भेजा, लेकिन उस ओर उसकी रुचि नहीं थी। साहित्य-साधना ही उसका एकमात्र ध्येय था। वह जर्मन, फ्रेंच, इटालियन और अंग्रेजी भाषा में कविताएँ लिखकर अपने मित्रों के पास भेजता था। वह सदैव अपनी अवस्था से बड़े लोगों का साथ करता था। इसलिए वह उनके अनुभवों से लाभ उठाता था। उसकी धारणा थी कि कालेज की शिक्षा से बड़े कलाकारों का निवासस्थान उसके लिए अधिक ग्रहणीय है।

युवावस्था की भावनाएँ, प्रेम के अनन्त डोर में बँधकर, फिर कवि के हृदय में गुनगुनाने लगीं। वह फिर कविता की साधना में लीन हुआ। विचार परिपक्व हो रहे थे। जीवन के प्रति एक नवीन दर्शन का स्वरूप खड़ा हुआ।

नाटकों के प्रति उसका स्वाभाविक अनुराग था। बाल्यावस्था में कठ-पुतलियों का खेल देखकर कौतूहल प्रकट करनेवाली बुद्धि का विकास हुआ। वह घरेलू नाटक अभिनय में स्वयं अभिनेता बनता। सम्पूर्ण खेल का निरीक्षण करता। नाट्यशाला में नाटकों का प्रदर्शन देखकर उन पर अपना मत प्रकट करता। अब स्वयं नाटक प्रस्तुत करने की उसकी कामना हुई। उसने एक नाटक की रचना की।

१७७३ ई० में गेटे अपनी शिक्षा समाप्त कर वकालत करने लगा। पिता की आन्तरिक अभिलाषा पूर्ण हुई। अनेक सफलताएँ प्राप्त होने पर भी गेटे अपनी वृत्ति से सन्तुष्ट नहीं था। वह उस ओर से अपने को मुक्त

करना चाहता था। साहित्य-संसार में उसकी ख्याति 'गोट्ज' नामक नाटक से आरम्भ हुई। उसके इस नाटक का खूब प्रचार हुआ। प्रथम संस्करण समाप्त होने पर दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। लेखक उत्साहित होकर एक उपन्यास लिखने लगा। वह समाज और मित्रों से अलग होकर एक बन्द कमरे में लिखने में व्यस्त था।

गेटे के जीवन में अगणित प्रेम-कहानियाँ भरी पड़ी हैं। यौवन के दिनों में प्रेम के आघात-प्रतिघातों ने उसे विक्षिप्त बना दिया था। एक रात्रि में शय्या पर विश्राम करते समय एक छुरे से वह अपनी जीवन-लीला का अन्त कर देना चाहता था। अन्त में विचारों ने उसे शान्त किया।

गेटे ने 'वेर्टेर' उपन्यास के प्रथम खण्ड में अपनी असफल प्रेम-कहानी का चित्रण किया है। दूसरे खण्ड में 'जेरुजेलम' नाम के एक युवक के जीवन की वास्तविक घटनाएँ हैं जिनका अन्त आत्महत्या द्वारा हुआ था। इस युवक से गेटे का परिचय हुआ था। उसी समय उसकी गम्भीर आकृति देखकर उसकी मानसिक विकलता का उसने अनुमान कर लिया था। वह स्वयं अपनी स्थिति से उसकी तुलना करने लगा था। जेरुजेलम मित्रों से अलग रहकर एकान्त स्थान में बैठा दिखाई पड़ता। मार्ग में गेटे से जब उसकी भेंट होती तो दोनों दिल खोलकर बातें करते। गेटे ने उसके चरित्र को बड़े स्वाभाविक रूप में अपने उपन्यास में उपस्थित किया है।

जेरुजेलम की आत्महत्या का समाचार पढ़कर गेटे ने अपने उपन्यास का अन्त भी वैसे ही किया।

१८वीं शती के असफल प्रेमियों के सम्मुख आत्महत्या ही एकमात्र प्रयोग था। गेटे के इस उपन्यास ने संसार में कितने युवक-युवतियों को आत्म-हत्या की ओर अग्रसर किया, इसका अनुमान करना कठिन है।

'वेर्टेर' उपन्यास का शीघ्रता से प्रचार हुआ। कुछ आलोचकों ने इसका तीव्र विरोध किया। इसके दूसरे संस्करण में स्वयं लेखक ने स्पष्ट किया है कि इस उपन्यास के पात्र का उदाहरण रखकर पाठक स्वयं कदापि न चलें।

१७७४ ई० में 'वेर्टेर' प्रकाशित हुआ था। लेखक ने अनेक पुस्तकें लिख डाली थीं। इस समय तक फास्ट के कई अंक लेखक ने लिख लिये थे; किन्तु उस समय उसकी पुस्तकों को प्रकाशित करनेवाला कोई प्रकाशक नहीं दिखाई पड़ता था। गेटे ने अपने पैसों से अपना नाटक 'गोट्ज' छपाया था। उसके सम्मुख अर्थाभाव का भी प्रश्न प्रायः रहता था।

गेटे के भाग्य की रेखाएँ उज्ज्वल हो उठीं। वेईमार के ड्यूक कार्ल

अगस्त से उसका परिचय हुआ। घनिष्ठता बढ़ती गई। अन्त में गेटे कोन्सिलर नियुक्त हुआ। अब वह शासन की व्यवस्था में व्यस्त हुआ। उसने बड़ी योग्यता से शासन-प्रबन्ध किया। उसकी ख्याति निरन्तर बढ़ती ही गई। वह अपने अवकाश के समय बराबर साहित्य-निर्माण में तत्पर रहा।

कार्ल अगस्त ने गेटे को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की सुविधा प्रदान की थी। वह अपनी इच्छानुसार सब कार्य करता था। कभी वह चाँदी की खान का संचालन करता, कभी पुस्तकालयों की स्थापना में व्यस्त रहता। कभी ड्यूक के लिए नवीन विशाल भवन बनवाने में उलझा रहता। शासन के जिस विभाग में शिथिलता दिखाई पड़ती ड्यूक गेटे को उसका भार सौंप देता था। गेटे जिस कार्य को लेता, उसे अपनी विलक्षण प्रतिभा से, बड़ी निपुणता से संचालित करता।

गेटे का समस्त जीवन राजा, राजकुमार और सामन्तों से घिरा हुआ था। रानियों, राजकुमारियों और महिलाओं के मध्य में वह सदैव प्रसन्नता अनुभव करता और कुछ ही समय में उनका अत्यन्त प्रियपात्र बन जाता था।

गेटे के समस्त जीवन में मित्रता और प्रेम की निर्मल धारा बहती दिखाई पड़ती है। वह अपने साहित्यिक मित्रों के प्रति उदार और निष्कपट रहा। उसकी रुचि कला के सभी अंगों की ओर थी। अवस्था ढलने पर चित्र-कला का पूर्ण अध्ययन करने के लिए वह रोम गया था। अपने जीवन में अनेक बार गेटे ने इटाली और स्विजरलैंड का भ्रमण किया था। उसकी रचनाओं में प्राकृतिक दृश्यों का अपूर्व सौन्दर्यमय चित्रण है।

१८०६ ई० में अपने अगणित प्रेम-सम्बन्धों के पश्चात् गेटे ने क्रिश्चियाना वुल्पस से अपना विवाह किया। उसी से इसका पुत्र आगस्ट उत्पन्न हुआ था। इस विवाह से वह समाज और मित्रों के व्यंग्य का कारण बना; किन्तु उसने बड़ी धीरता से अपने कर्तव्य का पालन किया था। उस समय गेटे कीर्ति और यश के शिखर पर था।

युवावस्था में आरम्भ किया हुआ 'फास्ट' का प्रथम भाग १८०८ ई० में प्रकाशित हुआ। गेटे को विश्वास था कि उसकी समस्त रचनाओं में फास्ट ही उसकी सर्वोत्तम कृति होगी। यही कारण था कि भावनाओं के सुन्दरतम क्षणों में वह उसकी रचना करता था।

फास्ट की प्रस्तावना में पहले स्वर्ग का दृश्य दिखलाया जाता है। वहाँ से मृत्युलोक का दृश्य सामने आता है। मानव का जीवन ईश्वर और शैतान दोनों देखते हैं। इसके पश्चात् मानव का किस रूप में विकास

होगा, इसका वर्णन होता है। मेफिस्टोफेलस यद्यपि निराशावादी है, फिर भी उसकी निराशा उसकी चातुरी और हँसोड़पन से कुछ सरल हो जाती है। वह कहता है कि बहुत दिन हुए ईश्वर हँसना भूल चुका है। फास्ट के स्वभाव की अशान्ति पहले दिखाई गई है। ईश्वर कहता है कि जब तक मानव कठिनाइयों से युद्ध करता रहेगा, तब तक कुमार्ग पर चलने का खतरा जरूर उत्पन्न किया जाता रहेगा। प्रस्तावना का यह कथोपकथन कुछ समय तक नास्तिकतापूर्ण समझा जाता रहा।

प्रथम दृश्य में फास्ट अपने कमरे में दिखाई पड़ता है। वह विज्ञान की दुर्बलता से चिन्तित है, फिर वह जादू की ओर आकर्षित होता है। जब जादू भी उसे शान्ति और चैन नहीं दे पाता तब वह निराश होकर मानव-जीवन के दुःखों और कष्टों पर विलाप करता है। उसे नश्वरता के भीतर बन्दी आत्मा के भार का अनुभव होता है।

फास्ट आनन्द प्राप्त करने के बदले में अपनी आत्मा को मेफिस्टोफेलस को अर्पित कर देता है। वह अपने विज्ञान-ज्ञान को विफल देखता है। फिर वह जादूगरनियों के रसोईघर में जाकर वासना और व्यभिचार में निमग्न हो जाता है। बाद में मार्गरेट नाम की एक लड़की उसे मिलती है। उसके वास्तविक प्रेम में पड़कर उसका जीवन एक निश्चित मार्ग पर आ लगता है। यह प्रेम अधिक दिनों तक चलता है और फास्ट को सच्चे प्रेम की अनुभूति प्रदान करता है। मार्गरेट का संयोग मानो फास्ट के लिए ईश्वरीय मिलन सिद्ध हुआ। अन्त में मार्गरेट का देहान्त हो जाता है। इसके पश्चात् फास्ट का विलाप, एक हृदय को प्रकम्पित करनेवाले दृश्य में, सामने उपस्थित होता है। इस विलाप को विभिन्न समालोचकों ने बहुत बड़ा आध्यात्मिक महत्त्व प्रदान किया है। फास्ट के प्रथम भाग की कथा का यही सारांश है।

गेटे का कवि-हृदय बड़ा कोमल था। १८०५ ई० में अपने अभिन्न मित्र शिलर की मृत्यु पर गेटे फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी सिसकियाँ बँध गई थीं और कई दिनों तक वह मौन और व्यथित रहा। शिलर जर्मनी का महान् कवि था। १७९४ ई० में गेटे से उसकी मित्रता हुई थी। तब से बराबर दोनों मिलकर साहित्यिक कार्य करते रहे। शिलर गेटे को सदैव उत्साहित करता रहा। उसने गेटे के एक अधूरे रूपक को भी पूर्ण किया था।

१८०८ ई० में सम्राट् नेपोलियन से गेटे की भेंट हुई थी। नेपोलियन ने बड़े आदर से कवि से बातें कीं। उसने वेर्टेर उपन्यास में असफल प्रेमी

की आत्महत्या को अस्वाभाविक बतलाया। उन दिनों प्रचलित दुःखान्त नाटकों में भाग्य-चक्र का जो सूत्र बँधा था, उसके सम्बन्ध में पूछते हुए नेपोलियन ने कहा—राज्यशासन-पद्धति ही भाग्य है।

संध्या समय नाटक देखने के पश्चात् नेपोलियन ने गेटे से कई बार बातें कीं। उसने प्रसन्नतापूर्वक गेटे से कहा कि यदि सीजर की हत्या न की गई होती तो मानवता के भाग्य की कितनी उन्नति हुई होती? इस कथानक पर आप अपनी रचना प्रस्तुत कीजिए।

गेटे ने सम्राट् को विदित किया कि युवावस्था में यह कथानक उसके मस्तिष्क में मँडरा रहा था।

नेपोलियन ने गेटे से सम्मानपूर्वक आग्रह किया कि वह पेरिस में आकर इस सम्बन्ध में सामग्री एकत्र करे।

एक सप्ताह बाद नेपोलियन ने गेटे को फ्रांस की अत्यन्त सम्मानित उपाधि 'लेजेन आफ आनर्स' प्रदान की। रूस का सम्राट् अलिक्जेण्डर जब वेईमार आया तब गेटे की विद्वत्ता पर मुग्ध होकर उसने भी 'आर्डर आफ सेण्ट ऐनी' से गेटे को विभूषित किया।

१८१६ ई० में गेटे की पत्नी का देहान्त हुआ। गेटे की भावुकता का परिचय इसी से मिलता है कि वह अपनी पत्नी की शय्या के समीप बैठा हुआ बिलखकर रो रहा था और कह रहा था—नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि तुम मुझे छोड़कर चली जाओ। अन्तिम समय में जब उसने उसके मस्तक पर हाथ फेरा, उस समय उसकी आँखें खुल गई थीं, किन्तु वह बोल नहीं सकती थी।

गेटे के पुत्र का विवाह हो चुका था। गेटे अपनी पुत्र-वधू को बहुत स्नेह करता था। वह गेटे को सदैव प्रसन्न रखने की चेष्टा करती। वह उसे उसकी ही कविताएँ गाकर सुनाती तथा पुस्तकें पढ़कर उसका मनोरंजन करती। कुछ समय बाद गेटे का पौत्र उत्पन्न हुआ। गेटे का पारिवारिक जीवन सुखी था। मित्रों और परिचितों से वह घिरा रहता था। उसका घर साहित्यिकों के लिए एक तीर्थ-स्थान बन गया था। उसने राजकीय कार्यों से अवकाश ग्रहण कर लिया था; लेकिन स्वयं ग्रैण्ड ड्यूक और डचेज सप्ताह में एक बार उससे मिलने आती थीं।

१८२४ से १८३० ई० तक का समय गेटे के लिए बहुत व्यस्त और दुखमय था। वह अपनी पुस्तकों के नवीन संस्करणों के लिए व्यस्त था। उसकी पुस्तकों से उसे काफी धन प्राप्त हुआ था। उसके समस्त ग्रन्थों का चालीस भागों

में नवीन संस्करण प्रकाशित होनेवाला था। गेटे की विपत्ति के बादल आकाश में छा गये थे। पहले उसकी प्रेयसी चारलोटी-बोन-स्टीन की मृत्यु हुई, फिर उसके अत्यन्त प्रिय ड्यूक कार्ल आगस्ट का स्वर्गवास हुआ और उसके बाद उसका पुत्र भी अपने नश्वर शरीर को छोड़कर चला गया। इन घटनाओं का प्रभाव कवि के ऊपर कैसा पड़ा होगा, इसका अनुमान सहृदय पाठक स्वयं कर सकते हैं।

गेटे अपने जीवन से निराश हो चुका था, फिर भी उसके सम्मुख अपनी अधूरी रचनाओं को पूर्ण करने की अभिलाषा थी। उसको अपनी समस्त रचनाओं के प्रकाशन से जो कुछ लाभ होता उसका अधिकारी उसने अपने पुत्र को बना दिया था। उसे विश्वास था कि वह योग्यता से सब व्यवस्था कर लेगा; किन्तु अब उसके चले जाने पर गेटे को अपना इच्छापत्र लिखना पड़ा। उसने अपने जीवन के सभी पत्र-व्यवहारों का एक निश्चित क्रम बनाया।

१८३१ ई० में गेटे ने फास्ट का दूसरा भाग समाप्त किया। इसे पूर्ण करने पर उसे हार्दिक प्रसन्नता थी। उसने अपने एक साहित्यिक सहयोगी से कहा—मेरी तरह एक अस्सी वर्ष की अवस्था वाले व्यक्ति को सदैव चलने के लिए तैयार रहना चाहिए और अपने जीवन के अपूर्ण कार्यों को पूर्ण कर अपने गृह को व्यवस्थित कर लेना आवश्यक है।

फास्ट के दूसरे भाग की शृंखला पहले भाग से नहीं मिल पाती। प्रथम दृश्य में एक बड़ा मैदान दिखाया जाता है। फास्ट एक ज्वर वाली नींद से उठता है और प्रतिज्ञा करता है—'जीवन की श्रेष्ठतम निधि प्राप्त करने के लिए कोई भी प्रयत्न शेष नहीं छोड़ूँगा।' यही नाटक के द्वितीय भाग का पूर्ण आख्यान है। इस आदर्शवादी प्रतिज्ञा के कारण शैतान के साथ जो शर्त बदी गई है, वही खतरे में पड़ जाती है। इस प्रतिज्ञा को देख-कर शैतान फास्ट के मार्ग में नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित करता है। फास्ट अपने प्रयत्न से विमुख नहीं होता। शैतान का प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है। शैतान को जब कभी अपने प्रयत्नों की सफलता की झलक दिखाई पड़ती है, तब वह समझता है कि अब फास्ट को भ्रम में डाल दूँगा, किन्तु अन्त में यह एक भ्रम ही सिद्ध होता है।

फास्ट का हेलेन नाम की एक युवती से साक्षात् होता है। उसे वह एक अर्द्ध देवी राजकुमारी सी प्रतीत होती है। जहाँ फास्ट हेलेन के प्रेम-बन्धन में आता है, वहाँ नाटक का चरम उत्कर्ष माना जाता है। फास्ट के सामने उसका प्रतिद्वन्द्वी मेफिस्टोफेलेस एक दुष्ट और झक्की ही ठहरता है और अन्त में कुछ शैतानी करता दिखाई पड़ जाता है।

फास्ट पहले की ही भाँति नाना प्रकार के कष्ट झेलता है; किन्तु हताश न होकर क्रमशः आगे ही बढ़ता जाता है। मेफिस्टोफेलेस के सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं। अन्तिम भाग की रचना को गेटे ने अन्योक्ति-प्रधान कर दिया है। इस भाग में, आगे चलकर, नाटकत्व तिरोहित हो जाता है; केवल रचना का स्वरूप ही नाटकीय रह जाता है। उसमें काव्य की छटा ही सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इसका अन्त दुःखान्त न होकर सुखान्त ही होता है। रचना आध्यात्मिक रूप लेकर समाप्ति पर पहुँची है। दार्शनिक दृष्टि से इस अंश का विशेष महत्त्व माना जाता है।

प्रकृति-प्रेम और कल्पनाप्रियता ने स्वाभाविक स्वच्छन्दता-वाद को जन्म दिया। प्रकृति की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा पश्चिम में रूसो द्वारा प्राप्त हुई। प्रसिद्ध जर्मन कवि हर्डर गेटे का अन्तरंग मित्र था। फ्रांस की क्रान्ति ने समस्त पश्चिमी साहित्य में परिवर्तन उपस्थित कर दिया था। काव्य अथवा साहित्य-क्षेत्र में मौलिकता की ओर लेखक अग्रसर हुए। गेटे की कृतियों ने नेतृत्व किया।

गेटे ने दैनिक जीवन से प्रेरणा ली और अपना एक अलग पंथ निकाला। उसने व्यक्तिवाद और राजनीतिक कपटाचार के बीच संघर्ष का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। उस युग में व्यक्ति विद्रोही हो उठा था। वह जीवन के मानों को बदल देने के लिए कटिबद्ध था। कवि साहित्य के विषय और स्वरूप में परिवर्तन लाकर विश्व को चमत्कृत कर देना चाहते थे। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं को चुनौती दे दी थी। वे असाधारण को साधारण और अपराधी को वीर मानने लगे थे। यह भावना केवल कुछ ही वर्षों तक रही।

गेटे ने अधिक अवस्था प्राप्त की थी, इसलिए वह शास्त्रीय और रोमैण्टिक दोनों युगों का नेता माना जाता है। जर्मन साहित्य में शिलर का मृत्युकाल 'क्लासिक' युग का भी अन्तकाल माना जाता है। गेटे के फास्ट का दूसरा भाग जब पूर्ण हुआ तब जर्मन साहित्य में स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का साम्राज्य था। इसलिए फास्ट के अन्तिम भाग में स्वच्छन्दतावाद का ही स्वरूप दिखाई पड़ता है।

यह स्वच्छन्दतावाद धीरे-धीरे जर्मन साहित्य में प्रकृतिवाद का रूप ग्रहण कर रहा था। गेटे की रचनाओं में प्रकृति की बड़ी ही मनोरम झाँकी मिलती है। फास्ट के अन्तिम भाग में प्रकृति का अपना एक विशिष्ट स्थान दिखाई पड़ता है।

गेटे एक महान् नाटककार के रूप में प्रख्यात है, फिर भी वह प्रथम श्रेणी का गीतिकार था। विश्व के प्रथम कोटि के गीतिकारों में गेटे का स्थान गौरवपूर्ण है।

जीवन के अन्तिम दिनों में गेटे की यह धारणा हो गई थी कि 'अधिक आयु ही वियोग का कारण बनती है।' वह कहता था--'कब्र के लिए आगे बढ़ो।' अपने साहित्यिक कार्यों को समाप्त कर लेने पर अपने शेष जीवन को वह ईश्वरीय उपहार समझता था।

१८३२ ई० में स्वर्ग से गेटे की पुकार हुई। एक विजयी सैनिक की भाँति वह अपने पग आगे बढ़ा रहा था। अचानक एक दिन उसकी गति शिथिल हो गई। अपनी रुग्णावस्था में पुत्रवधू को अपने समीप बिठाकर वह प्रसन्नतापूर्वक बातें करता रहा। उसका स्वर क्षीण होने लगा और अन्त में वह मौन हो गया। इसके पश्चात् उसने संकेतों से कार्य लिया। जब उसके हाथ भी शक्तिहीन हो गये तब वह सहसा उठकर स्वयं आरामकुर्सी पर बैठ गया। वहीं उसने शान्ति-पूर्वक अपने जीवन से विदा ली।

उसकी समाधि उसके प्रिय मित्र शिलर की बगल में ही है और इसके सामने उसके परिश्रमी और विजयी जीवन के उदार साथी कार्ल आगस्ट और उसकी पत्नी की काँसे की चमकती हुई समाधियाँ हैं।

आज भी काल्पनिक और स्वप्नलोक में विचरण करनेवाले कलाकार जर्मनी के उस अमर महाकवि की समाधि के सम्मुख नतमस्तक होकर सम्मान प्रकट करते हैं।

स्काट

(१७७१–१८३२ ई०)

तीन वर्ष की छोटी अवस्था में बालक स्काट अपने मकान में कविता पढ़ता हुआ सुनाई पड़ता था। वह डेढ़ वर्ष का था तभी उस पर लकवा का आक्रमण हुआ और उसका दाहिना पैर सदैव के लिए शून्य हो गया।

एक दिन स्काट अपनी माता को एक कविता सुना रहा था। उसमें एक तूफान में जहाज के नष्ट होने का वर्णन था। उसी समय उसकी माँ की चचेरी बहिन मिलने आई। बालक ने संकुचित होकर कहा—यह कविता विषादमय है, मैं कुछ मनोरंजक सुनाऊँ?

महिला उससे कुछ बातें करना चाहती थी। उसने मिल्टन के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किया। स्काट का उत्तर पाकर वह सन्तुष्ट हुई। उसे आश्चर्य था कि इतनी छोटी अवस्था में बालक इतना प्रतिभावान् है।

स्काट का पिता राज्य-कर्मचारी था और माता एक प्रोफेसर की कन्या थी। उसे एक उच्च कुल में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त था। बचपन से ही वह पवन की भाँति चंचल था। एक पादरी का कथन था कि जहाँ वह बालक है वहाँ किसी को तोप के मुख से बोलना होगा। उसका तात्पर्य यह था कि उसके सम्मुख किसी का बोलना असम्भव था।

स्कूल के सहपाठी उसके लँगड़े होने के कारण व्यंग्य किया करते; किन्तु वह इतना साहसी था कि लड़कर उन्हें पराजित कर देता था। अन्त में वे मित्रता कर उसकी कहानियाँ सुनते थे। स्काट बाल्यकाल से ही कहानियाँ कहने में निपुण था।

स्काट ने कालेज में कानून की शिक्षा ग्रहण की, लेकिन उस विषय में उसकी रुचि नहीं थी। परीक्षा पास करने के बाद वह अपने पिता के दफ्तर में प्रतिलिपि करने के कार्य में नियुक्त हुआ।

युवावस्था में वह कविताओं की रचना करने लगा। उसका पिता इसे व्यर्थ का कार्य समझता और कहता कि कविता करने से कोई लाभ की सम्भावना नहीं है; किन्तु स्काट कभी निराश नहीं हुआ। वह अपनी गति में निरन्तर बढ़ता ही गया। उसका पिता वकालत करता था, अतएव स्काट को प्रायः अपने पिता के मुवक्किलों से बाकी पैसे वसूल करने के लिए हाईलैण्ड जाना पड़ता था। इस लघु भ्रमण में उसे अनेक आकर्षक चरित्रों से परिचय प्राप्त हुआ। उसने अनेक हृदयग्राही कहानियाँ सुनीं। वह स्वयं एक कुशल कहानी कहनेवाला था। अतएव उसने सावधानी से उनका अध्ययन किया। आगे चलकर उन्हीं कथाओं के आधार पर उसकी कविता और उपन्यासों की सृष्टि हुई।

स्काट के सम्बन्ध में विवरण मिलता है कि वह स्वभाव का सरल, हँसमुख और मिलनसार था। उसके व्यवहार से सभी प्रसन्न रहते थे। उसने अभिमान तनिक भी नहीं था।

१७९७ ई० में स्काट ने अपना विवाह एक फ्रेंच स्त्री से किया। उसका पारिवारिक जीवन सुखी था। उसने आरम्भ में अनेक जर्मन कविताओं का अनुवाद किया। आरम्भ में साहित्य द्वारा जीविका उपार्जित करने की उसकी अभिलाषा नहीं थी। उस समय तक वह अपने पिता के विचारों से सहमत था कि साहित्य-साधना से धन प्राप्त नहीं हो सकता है। उसने वकालत करना आरम्भ किया। उसकी योग्यता के कारण ही उसे जिले के हाकिम का पद प्राप्त हुआ। इस पद पर उसे विशेष आय थी और समय भी कम देना पड़ता था। न्यायालय में वकालत करने की उसे स्वतन्त्रता भी थी। अवकाश के समय साहित्य उसके मनोरंजन का एक साधन था।

स्काट की प्रथम मौलिक कविता की पुस्तक 'दी ले आफ दी लास्ट मिनिस्ट्रल' प्रकाशित हुई। इसमें उसे पूर्ण सफलता मिली। इस आर्थिक लाभ के कारण उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। अब, ३४ वर्ष की अवस्था में, उसे विश्वास हुआ कि कानून नहीं साहित्य ही उसके जीवन का अवलम्ब है। उसके दूसरे काव्य ग्रन्थ 'मारमीअन' ने उसे ख्याति के मार्ग पर अग्रसर किया। जनता ने मुग्ध होकर उसकी वन्दना की। १८१० ई० में उसकी

तीसरी काव्य-कृति 'दी लेडी आफ दी लेक' प्रकाशित हुई। उसकी बीस हजार प्रतियाँ तत्काल ही बिक गई।

देखते-देखते उसकी काव्य-पुस्तकों के अनेक संस्करण हो गये। कवि को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। उसके जीवन का एक स्वप्न था कि किसी ग्रामीण स्थान पर वह अपने रहने योग्य गृह बनवाकर उसी में निवास करेगा। अब उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई। एक जमीदारी खरीदकर वहीं वह निवास करने लगा। उसने एक विशाल भवन बनवाया। अतिथियों और मित्रों के लिए उसका द्वार सदैव खुला रहता था। सामन्त से लेकर साधारण कृषक तक उसके यहाँ आदर सत्कार प्राप्त करते थे।

स्काट के सम्मुख अपनी सन्तानों के भविष्य का भी प्रश्न था। इस समय तक उसके चार सन्तानें उत्पन्न हो चुकी थीं। उसने अपने धन को एक मित्र के प्रेस में लगाया। इस प्रेस का वह हिस्सेदार बना। प्रतिवर्ष वह अपनी आय उसी में लगाता चला जाता; किन्तु दुर्भाग्य से उस छापेखाने में घाटा ही होता रहता।

स्काट अपनी रचनाओं की सफलता में अभिमान का अनुभव नहीं करता था। स्वयं उसकी सन्तान उसकी कृतियों से अपरिचित थी। स्काट की पुत्री सोफिया तेरह वर्ष की हो चुकी थी। एक दिन स्काट के एक मित्र ने उससे पूछा—तुम्हें 'लेडी आफ दी लेक' की कविताएँ कैसी रुची? उसने उत्तर दिया कि 'पापा' ने आदेश दिया है कि युवावस्था में खराब कविता पढ़ना सबसे अधिक हानिकारक है। इसी लिए मैंने उसे नहीं पढ़ा। उस मित्र ने सोफिया का यह उत्तर स्काट को सुनाया, तब वह केवल मुस्कराया। स्काट कभी आलोचनाओं से विचलित नहीं होता था।

१८०५ ई० में स्काट ने एक उपन्यास के कुछ परिच्छेद लिखने का प्रयत्न किया था; किन्तु लोगों को रुचिकर न होने के कारण वह वैसे ही पड़ा रहा। १८१३ ई० में अकस्मात् एक दिन उसकी पांडुलिपि उसे मिली। उसने उसे समाप्त करने का निश्चय कर लिया।

१८१४ ई० में उसके लिखे 'वेवरली' उपन्यास तीन भागों में प्रकाशित हुए। स्काट ने ऐतिहासिक रोमांस को वास्तविक स्वरूप दिया। उसके पहले ही उपन्यास में उसके निर्मित चरित्र अपनी स्वाभाविक भाषा में बोलते दिखाई पड़ते हैं। स्काट ने अपने आरम्भिक उपन्यासों में अपना कल्पित नाम दिया। उसने अपना नाम देना उचित नहीं समझा, कारण वह जानता था कि वकालत की वृत्ति ग्रहण कर उपन्यास-लेखक बनने में कोई

महत्त्व नहीं है। उसके रहस्यपूर्ण और घटनात्मक उपन्यास शीघ्रता से प्रचलित हुए। पाठक अत्यन्त उत्सुकता से स्काट की नवीन रचनाओं की प्रतीक्षा में रहते थे। जनता को कल्पित नाम के लेखक का वास्तविक नाम जानने में श्रम नहीं हुआ। उसे लेखक का पता लग गया।

स्काट ने केवल छः सप्ताह में 'गे मेनरिङ्ग' लिखा। इसके बाद कई उपन्यास प्रकाशित हुए। १८१८ ई० में 'दी हर्ट आफ मिडलोथियन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह स्काट के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

१८२६ ई० में लेखक को भयानक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जिस प्रेस में वह हिस्सेदार था, उसका अन्त हो गया। उसके मित्र जेम्स बेलेन्टेनी की मूर्खता से दिवाला घोषित करना पड़ा। स्काट भी उसमें सम्मिलित था, अतएव एक लाख तीस हज़ार पौंड का ऋण उसके ऊपर था। उसके अनेक शुभचिन्तकों ने सम्मति दी कि वह अपने को दिवालिया घोषित कर दे। कानून का पंडित होने के कारण अपने अनेकों मुवक्किलों को उसने इसी तरह का परामर्श दिया था; लेकिन वह स्वयं इस अपमान को ग्रहण नहीं करना चाहता था। उसने कहा—मैं एक-एक पैसा सब का चुकता करूँगा।

ढली अवस्था में विलक्षण शक्ति से स्काट ने उपन्यास प्रस्तुत करना आरम्भ किया। वह एक जीवित मशीन बन गया। अपना सम्पूर्ण ऋण चुकाने के लिए वह निरन्तर परिश्रम करता रहा। ढाई वर्षों में उसने पाँच उपन्यासों की रचना की।

लोकहार्ट स्काट का जामाता था। उसने स्काट का जो जीवनचरित्र लिखा है, बासवेल के बाद उसका दूसरा स्थान अंग्रेजी जीवन साहित्य में माना जाता है। उसमें उसने स्काट के लिखने का एक स्थान पर वर्णन किया है।

लोकहार्ट एक दिन अपने एक मित्र से मिलने गया था। उसका मकान स्काट के गृह के सामने ही था। जब लोकहार्ट ने अपने मित्र के कमरे में प्रवेश किया तो उसने देखा कि खिड़की के समीप वह उदासीन होकर बैठा है।

लोकहार्ट ने पूछा—क्या तुम अस्वस्थ हो?

अपने स्थान से उठकर वह लोकहार्ट के समीप बैठ गया और कहने लगा—मेरी दृष्टि के सामने एक शैतान की आकृति दिखाई पड़ती है, वह एक के बाद दूसरा पृष्ठ लिखता ही जाता है। उसकी गति कभी शिथिल नहीं होती। मोमबत्ती समाप्त होती है और दूसरी फिर जलाई जाती है।

भगवान् जाने कब उसका कार्य समाप्त होगा, क्योंकि रात्रि में नियमित रूप से वह लिखता ही रहता है, सम्भवतः कोई शैतान क्लर्क है।

वह शैतान क्लर्क नहीं वाल्टर स्काट था जो अपने ऋण से मुक्त होने के लिए कठिन परिश्रम कर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि वह रुग्ण हो गया। उसका कथन था कि वीरों का कार्य यही है कि दुःखद यंत्रणा में भी अपना कार्य करते रहें। रुग्णावस्था में वह शय्या पर पड़ा हुआ बोलकर लिखाता जाता था। पीड़ा से व्यथित होकर उसके दाँत चमक उठते थे। कष्ट से मुक्त होते ही फिर वह कार्य करने लगता। इस तरह वह अपने ऋण का तीन भाग समाप्त कर चुका था।

जीवन के उलझे दिनों में उसकी पत्नी भी उसका साथ छोड़कर चल बसी। पत्नी का देहान्त होने पर जीवन उसे एकाकी प्रतीत होने लगा; किन्तु वह अपने कार्य से कभी विमुख नहीं हुआ। वह उपन्यास, कविताएँ और जीवन-चरित्र आदि लिखता गया। दिन पर दिन उसका शरीर क्षीण हो रहा था। मित्रों ने उसे समुद्र-यात्रा के लिए भेजा। जहाज पर भी उसने अपने दो नवीन उपन्यास लिखने आरम्भ किये। 'मृत्यु के पहले मुझे कुछ करते रहना चाहिए'—यही उसका वाक्य था।

एक दिन उसे समाचार मिला कि जर्मनी के महाकवि गेटे का स्वर्गवास हो गया। उसने जहाज के कप्तान से कहा—देखो गेटे की मृत्यु उसके जन्म-स्थान पर ही हुई, मुझे भी मेरी जन्म-भूमि पर पहुँचा दो।

घर पहुँचने पर उसे चलने का सामर्थ्य नहीं था। वह कुर्सी पर बैठा दिया गया। उसने अपनी लेखनी माँगी। उसकी पुत्री ने जब लेखनी दी, उस समय उसकी उँगलियाँ लेखनी पकड़ नहीं सकीं।

वह शय्या पर दो मास तक पड़ा रहा और अन्त में सदैव के लिए उसकी आँखें बन्द हो गईं। अनन्त शान्ति से उसने मृत्यु का आलिंगन किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पुस्तकों की आय से उसके ऋण का एक-एक पैसा चुकता किया गया।

बायरन

(१७८८-१८२४)

अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि बायरन अपनी विलक्षण प्रेम-कहानियों के लिए विख्यात है। वह योरोपीय साहित्य में स्वच्छन्दतावाद का जन्मदाता माना जाता है। रोमैण्टिक योरोप के अन्य देशों के लेखकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा और वे लोग उसके अनुयायी बने थे। फ्रांस का समूचा रोमैण्टिक सम्प्रदाय बायरन से प्रभावित था। इसके अतिरिक्त रूस में पुश्किन और लर-मोनटोफ, जर्मनी में हेनी, स्पेन में इसप्रोनथेडा और इटाली में लिओपार्डी आदि बायरन को अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे।

बायरन का पिता दुष्ट मनोवृत्ति का व्यक्ति था। वह ऋण लेने में बड़ा कुशल था। वह स्त्रियों को धोखा देकर उनकी सम्पत्ति नष्ट कर डालता था। अपनी प्रथम पत्नी का सब धन उड़ा देने पर वह उसके साथ दुर्व्यवहार करता रहा। उससे उसे आगास्टा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। इसके पश्चात् कैथराईन गोर्डन से उसने अपना विवाह किया। इसका सर्वनाश करके वह चल बसा। बायरन इसी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। पति की नीचता और दुर्व्यवहारों का दुष्परिणाम यह हुआ कि वह अपने पुत्र से भी घृणा करने लगी।

बायरन जब तीन वर्ष का था तब उसके पिता का देहान्त हुआ। मूर्च्छा का रोग, अर्थाभाव और पति का दुराचार इन सभी बातों ने बायरन की माँ का मस्तिष्क बिगाड़ दिया था। वह क्रोध में उत्तेजित होकर बायरन को खूब पीटती और जोरों से चिल्लाती थी। उसने अपने पुत्र की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसकी उदासीनता के कारण बायरन का छोटी अवस्था में चरण स्थूल हो गया, जिसके कारण वयस्क होने पर उसे समाज के सम्मुख लज्जित होना पड़ता था। बायरन का बचपन दुःखमय व्यतीत हुआ।

बायरन की अवस्था जब दस वर्ष की हुई तब उसके चचेरे पितामह का देहान्त हुआ। वह लार्ड था। वह जीवन भर अपने महल में निर्वासित-जीवन व्यतीत करता रहा। उसने एक बार एक व्यक्ति की हत्या कर दी थी, इसके दण्ड में उसे मृत्युदण्ड न मिलकर आजन्म अपने महल से

बाहर न निकलने की आज्ञा हुई थी। वह बहुत नीच मनोवृत्ति का व्यक्ति था। उसने अपनी अधिकांश सम्पत्ति बेच दी थी। वह विक्षिप्त था। सौभाग्य से बायरन उसका उत्तराधिकारी हुआ।

लार्ड की उपाधि और निवास के लिए एक विशाल महल बायरन को प्राप्त हुआ। उस समय वह स्कूल में पढ़ता था। उसकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया और बाद में बायरन केम्ब्रिज कालेज में शिक्षा ग्रहण करने लगा। राजनीति में उसने विशेष ध्यान दिया और उसका विचार था कि 'हाउस आफ लार्डस्' में वह एक कुशल वक्ता और लिबरल नेता बनेगा।

बायरन के बाल्यकाल की कविताओं का एक संग्रह 'आवर्स आफ आइडिलनेस' प्रकाशित हुआ। उसकी बड़ी कटु आलोचना हुई। खिन्न होकर बायरन ने व्यंग्यात्मक कविताओं की पुस्तक प्रकाशित की। जनता इस पुस्तक से आकर्षित हुई। इसके बाद वह स्पेन, ग्रीस और एशिया माइनर का भ्रमण करने के लिए निकला। दो वर्षों के बाद वह फिर अपने महल में ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करने लगा।

जनता को मुग्ध कर देनेवाली बायरन की कृति 'चाइल्ड हेराल्ड' १८१२ ई० में प्रकाशित हुई। इसे उसने सात वर्षों के परिश्रम से प्रस्तुत किया था। अपने भ्रमण और व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर काव्य में उसने एक अर्द्ध आत्मकहानी के रूप में ही इसकी रचना की थी। केवल दो मास के भीतर इस पुस्तक के सात संस्करण प्रकाशित हुए। बायरन ने स्वयं कहा था कि *एक दिन प्रातःकाल निद्रा से उठने पर मैंने देखा कि मैं विख्यात हो गया हूँ।* सचमुच समाज का प्रत्येक व्यक्ति बायरन के नाम से परिचित हो गया था।

बायरन एक सुन्दर पुरुष था। अपनी प्रतिभा और ऐश्वर्य के कारण समाज में उसका आदर था। सभ्य और उच्च कोटि के समुदाय में वह प्रायः आमंत्रित होता। उसे जीवन के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करने का पर्याप्त अवसर मिला था। बचपन से जीवन के प्रति जो उदासीनता उसके हृदय में व्याप्त थी, उसी ने उसमें, समाज और मानव के आडम्बर और नियमों के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न की।

बायरन क्रान्ति का उपासक था। उसने रूसो के सिद्धान्तों का अवलम्बन किया। उसे विश्वास था कि समाज ही मानव की दुर्गति का मूल कारण है। उसका कवि-हृदय पवन की भाँति स्वच्छन्द था। उसकी अस्थिर भावुकता ने अगणित अपवादों को जन्म दिया। सभ्य और शिक्षित लोग

अपने अपराधों पर आवरण डाले रहते हैं, किन्तु बायरन अपनी सभी भावनाओं का चित्रण अपनी कविताओं में करता था। यही उसकी विशेषता थी।

१८१५ ई० में बायरन ने इसाबेला मिलबेंक नाम की एक धनी महिला से विवाह किया। इस विवाह के बन्धन में मूल लक्ष्य एकमात्र धन ही था। कारण दोनों की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न थी और आपस में सदैव अनबन रहती थी। इसाबेला को बायरन की कविताएँ रुचिकर नहीं प्रतीत होती थीं। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति उसका सम्बन्ध भी प्रधान कारण था। एक वर्ष में ही एक कन्या उत्पन्न हुई। इसके बाद बायरन की पत्नी सदैव के लिए उसका साथ छोड़कर अपने पिता के घर चली गई। इस सम्बन्ध से बायरन को लाभ यही हुआ कि पत्नी की वार्षिक आय में उसे आधा हिस्सा मिलता था।

मित्र, समाज और समाचारपत्रों में बायरन के चरित्र पर आक्षेप होने लगा। जिस तरह प्रसिद्धि उसे प्राप्त हुई थी, उसी भाँति उसकी अप-कीर्ति भी सर्वत्र फैल गई। लन्दन नगर में उसका रहना कठिन हो गया। अन्त में सदैव के लिए लन्दन छोड़ने का विचार कर वह स्विजरलैंड गया। वहाँ कवि शेली से उसकी भेंट हुई। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हुई। वे दोनों एक दूसरे को प्रसन्नतापूर्वक अपनी रचनाएँ सुनाते। बड़े चैन से दिन कटने लगे। बायरन ने शेली के गृह के समीप ही एक सुन्दर बँगला खरीद लिया था। उन दिनों गेटे के 'फास्ट' से प्रभावित होकर उसने 'मैन-फ्रेड' काव्य-नाटक की रचना की।

बायरन ने अपना महल विक्रय कर दिया। इससे उसे पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उसे अपनी पुस्तकों की रायल्टी का सात हजार पौण्ड प्राप्त हुआ और पत्नी की आय का आधा भाग तो वह प्राप्त कर ही चुका था। उसने अपना सब ऋण चुका दिया था। इसके बाद भी उसके पास बहुत धन था। धन का मद भी उसके मस्तिष्क को स्थिर रखने में बाधक सिद्ध हुआ।

वह अपनी क्षणिक बुद्धि के कारण एक स्थान पर अधिक समय नहीं व्यतीत कर सकता था। वहाँ से वह वेनिस गया। वेनिस में विलासिता की चरम सीमा पर पहुँचकर वह अपनी वासनाओं के साथ नृत्य कर रहा था। वह इटाली के एक नगर से दूसरे नगर में जाता रहा। उसे कहीं शान्ति नहीं मिलती थी। उस समय उसने 'चाइल्ड हेराल्ड' के आगे का अंश, 'डोन जुआन', 'केन' आदि अपनी अमर कृतियों की रचना की थी।

अचानक नाव-दुर्घटना में शेली की मृत्यु का समाचार मिला। बायरन

के ऊपर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। वासनाओं की प्रतिक्रिया ने उसे सचेत किया। वीरता का गान करनेवाले कवि-हृदय ने जीवन को सार्थक करने की अभिलाषा में यूनानियों के स्वतन्त्रता-युद्ध में भाग लिया।

बायरन ने धन एकत्र कर दो मस्तूल का एक अंग्रेजी जहाज खरीदा और अपने दल के साथ जिनेवा से ग्रीस के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि यूनानियों का संगठन व्यवस्थित रूप में नहीं था। वह लेपान्टो में तुर्कों के विरुद्ध लड़नेवाली सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया।

परिश्रम और खराब मौसिम के प्रभाव के कारण बायरन के ऊपर ज्वर का आक्रमण हुआ। उससे वह मुक्त नहीं हो सका और, ३६ वर्ष की अवस्था में, उसके जीवन का अन्त हो गया। वहाँ पर सम्मान से उसका शव-संस्कार हुआ।

बायरन की मानसिक वेदनाओं का परिचय उसकी कविताओं में मिलता है। जीवन के पिछले समय वह अपने जीवन से हताश हो गया था। उसकी एक कविता की चार पंक्तियों का भावार्थ है—मेरे दिन पीली पत्तियों में हैं, प्रेम के पुष्प और फल सब नष्ट हो चुके हैं। पश्चात्ताप, घाव और व्यथा ही एकमात्र मेरी हैं।

बायरन की कविताएँ सरल हैं। उसमें प्रकृति के अंकन की अपूर्व योग्यता थी। मृत्यु के बाद बायरन की रचनाओं का निरन्तर प्रचार हुआ। उसके सम्बन्ध में सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उसकी कृतियाँ और उसका चरित्र आज तक साहित्यिकों के अनुसंधान का विषय है। अपने विलासी-जीवन से हटकर उसने सहसा वीरता के कृत्यों से संसार को चकित कर दिया था।

बालजाक

(१७९९–१८५० ई०)

अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स का कहना था कि बालजाक हम सब उपन्यासकारों का पिता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विश्व के उपन्यासकारों में बालजाक एक सम्राट् की भाँति दिखाई पड़ता है।

बालजाक ने आरम्भ में कानून का अध्ययन किया था; लेकिन उसकी रुचि उस ओर नहीं थी। उसने पहले ही से यह उच्चाकांक्षा बना ली थी कि वह पेरिस को अपनी साहित्यिक प्रतिभा से जीत लेगा। उसने अपने पिता से एक प्रस्ताव किया जो अन्त में स्वीकृत हो गया। उसके पिता ने स्वीकार कर लिया कि जब तक वह अपनी प्रतिभा की परीक्षा करेगा, तब तक वह उसकी आर्थिक सहायता करेगा। यदि वह अपनी साहित्यिक आय से जीवन यापन कर सके तो वह इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है अन्यथा उसे कानून का पेशा ग्रहण करना पड़ेगा।

२१ वर्ष की अवस्था में पेरिस की एक तंग कोठरी में वह किसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। उसकी आरम्भिक रचनाओं को सफलता नहीं मिली। उस समय उसने अनेक उपन्यास लिख डाले थे; किन्तु उनसे विशेष आय नहीं हुई। उसका कमरा सर्द और असुन्दर था। सामान बहुत कम थे। फिर भी चादर में लिपटा हुआ वह रात-दिन काम करता रहा। उसका भोजन अत्यन्त साधारण था। कभी-कभी वह केवल काफी पीकर ही रह जाता और भोजन करने बैठता तो इतना खा जाता कि अजीर्ण हो जाय।

बालजाक की एकमात्र अभिलाषा थी कि उसे ख्याति और प्रेम प्राप्त हो। वह इतना परिश्रमी था कि १८२१ से १८२४ ई० तक उसने ३१ पुस्तकों की रचना की थी। उसने देखा कि पुस्तकें लिखकर वह विशेष धन नहीं प्राप्त कर सकेगा, अतएव उसने पुस्तकों के प्रकाशन का व्यवसाय आरम्भ किया। उसमें उसे हानि उठानी पड़ी। इसके बाद वह मुद्रक और टाइप-फाउण्डर बनकर अपना व्यवसाय चलाने लगा। इसमें भी हानि हुई। व्यवसाय के लिए जो कुछ कर्ज लिया था उसे बालजाक चुका नहीं सका और अन्त में, एक दिवालिये की भाँति, सबके सम्मुख अपराधी समझा गया। उस समय उसकी अवस्था २९ वर्ष की थी और उसे चार हजार पौंड कर्ज चुकाना था।

कुछ वर्षों के बाद बालजाक को सफलता मिलने लगी। वह १५ से १८ घंटे दिन-रात में काम करता था। इस तरह वह सदैव धन उपार्जित करने में व्यस्त था। वह अपूर्व धनराशि की कल्पना में सदा लीन रहता था।

१८३० ई० से विलासिता और ऐश्वर्य की ओर उसकी प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। इस समय उसका जीवन कम दुःखमय था। वह कर्ज लेने में अभ्यस्त हो गया था और ज्यों-ज्यों कर्ज बढ़ता, उसी भाँति उसका परिश्रम भी बढ़ता जाता था।

१८३३ ई० में एक बड़ी आकर्षक घटना बालजाक के जीवन में हुई। पोलैण्ड की एक महिला मैडम-हन्सका ने उसकी रचना की प्रशंसा में एक पत्र लिखा। इस पत्र को पढ़ते ही बालजाक के हृदय में प्रेम की लहरें उठने लगीं और उसने बड़ी भावुकता से उसका उत्तर दिया। इस तरह पत्र-व्यवहार द्वारा प्रेम का उज्ज्वल रूप दिखाई पड़ने लगा। मैडम-हन्सका विवाहित स्त्री थी और उसका पति धनी काउण्ट था। केवल पत्र द्वारा ही दोनों अपनी भावनाओं को व्यक्त करते रहे। वर्षों के बाद जिनेवा में दोनों की भेंट हुई। अनेक वर्षों के बाद हन्सका के पति की मृत्यु हुई। बालजाक ने हन्सका से विवाह का प्रस्ताव किया और १७ वर्ष बाद उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई।

बालजाक की यह प्रेम-कहानी बड़ी विस्तृत है। उसकी रचनाओं में उसके जीवन के इस रोमांस की छाप स्पष्ट अंकित हुई है। दोनों के पत्र-व्यवहार को देखने से भली भाँति विदित होता है कि इस प्रेम-सम्बन्ध के कारण बालजाक के जीवन का स्तर निरन्तर विकसित होता गया और धन की लालसा एवं ऐश्वर्य के मार्ग पर वह सदैव आगे बढ़ता गया।

बालजाक ने देखा कि परिश्रम करते-करते जीवन ही समाप्त हो

जायगा और फिर भी अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी। अतएव वह सार्डिनिया की चाँदी की खान खुदवाने के प्रयोग में वहाँ गया; लेकिन उसने अपने इन विचारों को एक इटालियन व्यवसायी के सम्मुख प्रकट कर दिया था और उसने इससे विशेष लाभ उठाया। बालजाक अन्त में निराश हुआ।

इसके पश्चात् उसने पेरिस से पाँच मील दूर कुछ जमीन खरीदी और वहाँ वह फलों का एक बड़ा बगीचा लगाना चाहता था। अरेबियन नाइट्स के 'हीरो' की भाँति बालजाक भी कल्पना-लोक में विचरण करने लगा। उस जमीन में पेड़ लगेंगे, फल होगा, पेरिस में बिकेगा और इस तरह १६ हजार पौंड प्रतिवर्ष उसे आय होगी।

अपनी प्रेमिका हन्सका को एक पत्र में उसने लिखा था कि असफलताओं से युद्ध करते हुए अब फिर आशा का संचार हुआ है। इस भूमि के द्वारा मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी और समस्त जीवन मैं सुख से यहाँ व्यतीत करूँगा। इसकी आय इतनी होगी कि बड़ी सरलता से मैं अपने ऋण से भी मुक्त हो जाऊँगा।

१४ मार्च १८५० में बालजाक का विवाह हन्सका के साथ हुआ। काउण्टेस ईव अब मैडम-डी-बालजाक हो गई। बालजाक की हार्दिक कामना सफल हुई। लेकिन उसका अन्त कितना कारुणिक है। इतने बड़े उपन्यासकार का अन्तिम जीवन ही एक हृदय-विदारक उपन्यास की भाँति दिखाई पड़ता है।

विवाह के पूर्व बालजाक ने एक बड़ा सुन्दर भवन बनवाया था। उसमें सभी वस्तुएँ प्रथम श्रेणी की रखी गई थीं। कहते हैं कि राजाओं की भाँति उसका भवन अत्यन्त सुन्दर सामग्रियों से सुसज्जित था। बालजाक की कामना थी कि अपनी पत्नी के साथ वह आनन्द से दिन व्यतीत करेगा। लेकिन विधाता का विधान विचित्र होता है। बालजाक का स्वास्थ्य जीर्ण अवस्था में था। उसकी पत्नी भी गठिया के रोग से ग्रस्त थी। जीवन की प्रसन्नता का बसन्त आपत्ति और संकट का आलिंगन करता हुआ बालजाक का भाग्य बना हुआ था। वह एक मरणासन्न पुरुष की भाँति जीवित था।

बालजाक प्रजातान्त्रिक और पूँजीवादी औद्योगिक समाज का प्रथम प्रशंसक था। उसकी मुख्य भावना धन के एकत्रीकरण से सम्बद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकारों में केवल बालजाक और स्टेन्ठाल ने ही धन से घृणा नहीं प्रकट की है। बालजाक को विश्वास था कि सम्पत्ति,

सुखी जीवन और उपभोग्य वस्तुओं का सुखोपभोग शान्तिपूर्ण व्यापार द्वारा ही सम्भव है। वह समझता था कि व्यक्ति को अपनी प्रतिभा से अपने मानसिक और शारीरिक सुख का सम्पादन करना चाहिए। इसके लिए उसे अपने पास-पड़ोस के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, यह नहीं कि दूसरों की उत्पादित वस्तुओं को लूटें-खसोटें।

बालजाक ने अपने जीवन में देखा कि दूषित प्रवृत्ति के कारण उनके अधीन लोग विपन्नावस्था में रहेंगे। उसने यह भी देखा कि धन के बल से लोग राजनीतिक शक्ति अपनाने जा रहे हैं। उसने देखा कि सम्पत्ति के आधार पर नये-नये वर्ग और श्रेणियाँ उत्पन्न होने जा रही हैं। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी वह दूसरे मध्यमवर्गीय लेखकों की भाँति धन से घृणा नहीं दिखाता था। वास्तव में लेखक के रूप में वह धन एकत्र करना चाहता था। ख्याति से अधिक उसका लक्ष्य धन ही था। पर वह सफल नहीं हुआ। वह जन्म भर ऋण चुकाने में व्यग्र रहा और अन्त में जब कुछ धन एकत्र कर सका तब उसकी मृत्यु हो गई।

बालजाक ने अपने समय के समाज का पूरा चित्र उपस्थित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के पेरिस के जीवन के लिए इतिहास के विद्यार्थी इतिहास से अधिक बालजाक के उपन्यासों से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

१८४२ ई० में बालजाक का 'ला कोमेजी हूमेन' लिखने का विचार हुआ जो उसकी प्रमुख कृति है। इस रचना का उद्देश्य लेखक के शब्दों में 'मनुष्य के हृदय की सभी भावनाओं को जानना और सामाजिक इतिहास के सभी अङ्गों का अध्ययन करना था', अर्थात् उसके समय के जीवन का विस्तृत अध्ययन ही उसका लक्ष्य था।

बालजाक की उक्त रचना को भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित किया गया है। उदाहरणार्थ, व्यक्तिगत जीवन, प्रादेशिक जीवन, नगर का जीवन, राजनीतिक और सैनिक जीवन, दार्शनिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन इत्यादि। लेखक की योजना के अनुसार यह रचना १३३ भागों में प्रकाशित होनेवाली थी, पर इसके बहुत से भाग अलिखित ही रह गये। किसी भी उपन्यासकार ने इतनी बड़ी योजना नहीं बनायी, न किसी ने इतना लिखा ही।

बालजाक की रचनाओं में स्त्री-जाति को प्रमुखता दी गई है। उसने यथार्थवाद को जन्म दिया। वह सत्य के अतिरिक्त और किसी बात की चिन्ता नहीं करता था। वह जीवन के अच्छे और आकर्षक पक्ष की अपेक्षा बुरे और घृणित पक्ष को सामने रखने में अधिक सफलता प्राप्त करता था।

बालजाक, विक्टर ह्यूगो से अत्यधिक प्रभावित था; लेकिन रोमैण्टिक धारा के उपन्यासकारों को वह हवा में उड़नेवाले घुड़सवार कहा करता था। आलोचकों का कथन है कि वह स्वयं अपने को रोमैण्टिक प्रभाव से बचा नहीं सकता था और बार-बार उसमें फँस जाया करता था।

बालजाक को लिखने के अतिरिक्त कभी अवकाश नहीं मिलता था। एक बार एक धनी व्यक्ति लार्ड हर्टफोर्ड ने बालजाक से मिलने के लिए समय निर्धारित किया, पर हर्टफोर्ड को बताया गया कि वह अपने घर से इस समय नहीं निकल सकता क्योंकि ऋण न चुका सकने के कारण पुलिस उसको गिरफ्तार करने के लिए तैयार है। इस पर हर्टफोर्ड ने पूछा—उसे कितना ऋण चुकाना है? उत्तर मिला—चालीस या पचास हजार फ्रेंक।

हर्टफोर्ड ने कहा—वह यहाँ आ जाय; मैं उसका ऋण चुका दूँगा।

बालजाक को ये सब बातें ज्ञात हुईं; लेकिन फिर भी वह उससे मिलने नहीं गया।

जिस वर्ष बालजाक का विवाह हुआ, उसी वर्ष उसकी जीवन-कहानी भी समाप्त हुई। उसके मरने के बाद उसके ऋण की एक-एक पाई चुकता कर दी गई थी। उसकी पत्नी उसकी मृत्यु के बाद ३२ वर्ष तक जीवित थी।

२० वर्ष निरन्तर लिखने के बाद उसने पचासी उपन्यास समाप्त किये। उसने दो हजार चरित्रों का निर्माण किया। उसकी जीवन-कहानी ही अतृप्त मानव की उज्ज्वल आकांक्षाओं का रहस्यमय इतिहास है।

पुश्किन

(१७९९–१८३७ ई०)

रूसी-साहित्य को नव-जीवन देने का सबसे अधिक श्रेय पुश्किन को है। रूसी लेखक आज तक उसी के पदचिह्नों पर चले आ रहे हैं। रूस के नवीन यथार्थवादी साहित्य का इतिहास ही पुश्किन से आरम्भ होता है।

उस समय शास्त्रीय साहित्य के नियमों का पालन होता था। रूसी भाषा का स्वरूप अपने शिशुकाल में था। पुश्किन ने अपनी रचनाओं द्वारा रूसी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया।

योरोप के सभी देशों के साहित्य में जीवन के स्वाभाविक स्वच्छन्दता-वाद को महत्त्व दिया जा रहा था। इँग्लैण्ड में बायरन, जर्मनी में गेटे और फ्रांस में फ्लोबेयर ने साहित्य को शास्त्रीय नियमों के बन्धनों से मुक्त किया था। पुश्किन के ऊपर बायरन का प्रभाव पड़ा था।

पुश्किन की कविताएँ जब प्रकाशित हुई तब साहित्य में उसका जोरों से विरोध होने लगा, किन्तु कवि ने सर्वसाधारण में बोली जानेवाली सरल भाषा को सुन्दर आवरण में प्रस्तुत किया, अतएव वह जनता में प्रचलित हो गया।

पुश्किन का जन्म मास्को के एक सभ्य कुल में हुआ था। उसका पिता धनी था। पैसेवालों की दुनिया में उसका आदर था। ऐश्वर्य से परिपूर्ण उसका जीवन व्यतीत हुआ। उस युग के प्रायः सभी प्रतिष्ठित साहित्यिकों का उसके यहाँ सत्कार होता था।

पुश्किन का चाचा भी कवि था और उसने हास्यरस की कविताएँ लिखकर ख्याति प्राप्त की थी। इसमें सन्देह नहीं कि पुश्किन-परिवार का साहित्यिक वातावरण भी बालक पुश्किन को उस ओर आकर्षित करने में सहायक हुआ। पुश्किन आठ वर्ष की अवस्था में कविता करने लगा था।

बाल्यकाल में पुश्किन को अपनी दादी और एक दाई द्वारा रूसी भाषा का ज्ञान प्राप्त हुआ था। शरत् काल की विस्तृत रात्रि में लोक-गीत और कहानियाँ उनसे सुनकर उसकी प्रतिभा प्रखर हुई थी। अपने इसी ज्ञान के बल पर आगे कर पुश्किन ने अपनी कृतियों को रूसी स्वरूप प्रदान किया था। स्कूल छोड़ने के पहले ही वह एक सफल कवि माना जाता था।

कालेज छोड़ने के बाद पुश्किन का जीवन कुछ समय तक सभ्य समाज के संसर्ग में अव्यवस्थित व्यतीत हुआ। उसके उग्र स्वभाव के कारण प्रायः मित्रों से उसकी अनबन हो जाया करती थी। यही कारण था कि कभी-कभी वह अपने साहित्यिक और क्रान्तिकारी विचारों के मित्रों से अलग होकर धनी, आलसी और विलासी युवकों की मंडली में अपने को खो बैठता था। इससे भी लेखक को लाभ ही हुआ, क्योंकि उसने अपनी रचना 'इवगिन आनजिन' में ऐसे पात्रों का सजीव चित्रण उपस्थित किया है।

१८१४ ई० में पुश्किन की कविताएँ मासिक पत्रिका में प्रकाशित होने लगी थीं। उसने परियों की कहानी के रूप में अपनी प्रथम कृति 'रूसनल और लूडमिला' कविता में प्रस्तुत की। प्रकाशित होते ही उसका प्रचार बढ़ने लगा। कवि जनप्रिय हुआ।

पुश्किन की श्रेष्ठ रचना 'इवगिन ओनजिन' पद्य में एक उपन्यास है। यह सत्य ह कि बायरन के 'चाईल्ड हेराल्ड' से उसे अपनी पुस्तक की आकृति बनाने में सहायता मिली थी; किन्तु उसकी यह रचना पूर्ण रूप से रूसी थी। उसमें रूसी जीवन का अत्यन्त मार्मिक वर्णन हुआ है। पुश्किन ने राजधानी से लेकर रईसों की छोटी जमींदारी तक के जीवन का वास्तविक चित्रण करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की थी।

सांसारिक जीवन में प्रविष्ट होने पर समाज के भिन्न-भिन्न अङ्गों का अध्ययन करने का पुश्किन को अवसर मिला। जार निकोलस प्रथम का शासनकाल था। पूँजीवादी अपनी विलासिता में लीन थे। दूसरी ओर बन्धक-दासों के साथ वे अत्याचार कर रहे थे। शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला धधकती; लेकिन वह तत्काल ही बुझा दी जाती और अनेक देशभक्त वीर बलिदान हो जाते थे। पुश्किन ने स्वयं अपनी आँखों से सब कुछ देखा था।

ओनजिन उस युग के युवक समाज का व्यंजक प्रतिनिधि था। उसकी शिक्षा कभी जर्मन और कभी फ्रेंच शिक्षक द्वारा हुई थी। उन्नीस वर्ष की अवस्था में वह एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक होता है। इस वैभव में उसे बन्धक-दास भी मिलते हैं, जिनकी ओर वह कुछ ध्यान नहीं देता। वह

पीटर्सबर्ग के उच्च जीवन में प्रविष्ट होता है। वह प्रीतिभोजों में सम्मिलित होता है। नाट्य-गृहों में भी वह बराबर जाता है। नृत्य-गृह में वह बड़े उत्साह से भाग लेता है; किन्तु वह जीवन से एक निराश युवक की भाँति दिखाई पड़ता है, जिसके ऊपर पूर्ण रूप से 'बायरनिज्म' का प्रभाव पड़ता है।

वह अपनी जमींदारी पर ग्रीष्मकाल व्यतीत करने के लिए बाध्य होता है। वहीं पर एक युवक कवि से उसका परिचय होता है। उस कवि की शिक्षा जर्मनी में हुई थी और उस पर जर्मन स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण प्रभाव था, वे दोनों अपने एक पड़ोसी परिवार से भी परिचित हुए थे। इस परिवार में एक वृद्ध महिला थी। उसकी दो पुत्रियाँ ओल्गा और टाटियाना स्वभाव में एक दूसरी से भिन्न थीं। ओल्गा एक कलाहीन युवती थी जो किसी भी प्रश्न में उलझी नहीं दिखाई पड़ती थी और प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही थी। कवि उसके प्रेम में उन्मत्त था और दोनों का विवाह शीघ्र ही होनेवाला था।

टाटियाना एक भावुक युवती थी और पुश्किन ने अपनी कला के पूर्ण सौन्दर्य से उसे एक आदर्शमय महिला चित्रित किया है। ओनजिन आरम्भ मे उससे प्रभावित होता है। वह उससे प्रेम करने लगती है। लेकिन ओनजिन राजधानी के उच्च वर्ग में अपनी अगणित सफलताओं क परिणाम में एक निराश और अस्त-व्यस्त जीवन ही प्राप्त करता है। वह टाटियाना जैसी ग्रामीण युवती के प्रति विशेष ध्यान नहीं देता। वह अपना प्रेम और भावनाएँ बड़े सरल और स्पष्ट शब्दों में एक पत्र द्वारा उसे सूचित करती है; लेकिन ओनजिन केवल उसका उपहास करता है।

एक दिन एक नृत्य-समारोह में ओनजिन ओल्गा के साथ मजाक करता है। ओल्गा अपने प्रति ओनजिन की उत्सुकता देखकर प्रसन्न होती है। उसका प्रेमी कवि अपमान अनुभव करता है और अपने मित्र ओनजिन को 'डुएल' लड़ने के लिए प्रस्तुत करता है। ओनजिन द्वन्द्व करता है। कवि की हत्या होती है। अपने कवि मित्र की हत्या करने के पश्चात् ओनजिन उस प्रदेश से चला जाता है।

कई वर्ष बीत जाते हैं। बीमारी से उठने के बाद एक दिन टाटियाना उस गृह में जाती है जहाँ ओनजिन ठहरा हुआ था; लेकिन जीवन के प्रति टाटियाना का कोई आकर्षण नहीं रहता। टाटियाना अपनी माँ के आग्रह पर मास्को जाती है और वहाँ वह एक वृद्ध सेनापति से विवाह कर लेती

है। विवाह के पश्चात् वह पीटर्सबर्ग आती है और अधिकारी वर्ग में अपना एक विशेष स्थान बना लेती है। इस वातावरण में ओनजिन उसे देखता है और पहचान नहीं पाता, किन्तु वह उसके प्रेम में लीन हो जाता है। वह उसकी ओर ध्यान नहीं देती और उसके पत्रों का कोई उत्तर भी नहीं देती है।

एक दिन ओनजिन टाटियाना के घर जाता है। वह देखता है कि टाटियाना उसके पत्रों को पढ़ रही है और आँखों में अश्रु भरे हैं। उसने जो उत्तर दिया था वह इतना मार्मिक और कारुणिक है कि रूसी-साहित्य में इसका विशेष महत्त्व माना जाता है।

'ओनजिन! उस समय मैं युवती थी और सुन्दरी थी और मैंने तुम्हें प्यार किया था। लेकिन एक ग्राम्य-बाला का प्रेम ओनजिन के लिए तुच्छ था। तुमने मेरी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया; लेकिन अब एक-एक पग पर तुम मेरा पीछा कर रहे हो, यह इसलिए कि मैं एक धनी महिला के रूप में हूँ और उच्च समाज में मेरा आदर है।'

टाटियाना यह स्वीकार करती है कि वह ओनजिन को प्यार करती है; किन्तु अब जिसके साथ वह वैवाहिक बन्धन में पड़ गई है, उसके प्रति वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होगी।

पुश्किन ने टाटियाना के चरित्र को इतना उज्ज्वल और आदर्शमय चित्रित किया ह कि आगे चलकर सभी रूसी लेखक इस चरित्र से प्रभावित हुए हैं। टाटियाना जैसी युवती के स्वरूप का विकास ही तुर्गनेव और अन्य रूसी लेखकों की रचनाओं में भली भाँति दिखाई पड़ता है।

पुश्किन ने 'बोरिस गोडोनोफ' नाम का एक ऐतिहासिक नाटक लिखा था। उसने 'कैप्टन्स डाटर' उपन्यास गद्य में लिखा था। रूसी-साहित्य के इतिहास में इस पुस्तक का विशेष महत्त्व माना जाता है।

पुश्किन की स्वतन्त्र विचारधारा किसी बन्धन में नहीं रह सकती थी। पुश्किन ने 'ओड टू लिबरटी' और अन्य अनेक छोटी कविताओं में अपने क्रान्तिकारी विचारों को व्यक्त किया। उसने शासक के प्रति भी व्यंग्य किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि १८२० ई० में केवल २० वर्ष की अवस्था में, दक्षिण रूस में वह निर्वासित कर दिया गया। उस समय उसका जीवन अनियंत्रित था और अपनी भावुकता में, कुछ समय के लिए वह भ्रमण करनेवाली 'जिप्सी' जाति की मंडली में सम्मिलित हो गया था। इसके बाद उसे क्रीमिया और काकेशस की यात्रा

करने की आज्ञा मिली। इस काल में कवि ने अपनी उत्कृष्ट गीतात्मक कविताओं को जन्म दिया।

१८२४ ई० में ओडेसा में उसका रहना कठिन हो गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि वहाँ से वह ग्रीस की स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने के लिए बायरन के साथ सम्मिलित होना चाहता था। इस घटना से अंग्रेज कवि बायरन से उसकी घनिष्ठता का परिचय मिलता है। जार द्वारा तत्काल ही उसे आज्ञा मिली कि वह मध्य रूस में अपनी जमींदारी के स्थान पर निवास करे। पुश्किन ने उस समय अपनी सुन्दर रचनाओं का निर्माण किया।

दिसम्बर १८२५ ई० में जब सेण्ट पीटर्सबर्ग में विद्रोह फैला, उस समय पुश्किन अपनी जमींदारी में ही रहता था, अन्यथा अपने अनेक मित्रों के साथ उसका जीवन भी साइबेरिया के निर्वासन में ही समाप्त हो जाता। उसने अपने निवासस्थान पर गुप्त पुलिस के पहुँचने के पहले ही सावधानी से अपने सभी पत्रों को अग्नि की गोद में समर्पित कर दिया था। इसलिए उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिल सका। इस घटना का प्रभाव जार के ऊपर ऐसा पड़ा कि प्रसन्न होकर उसने उसे सेण्ट पीटर्सबर्ग आने का आदेश दिया। पुश्किन मुक्त तो हुआ, किन्तु उसकी कविताओं का परीक्षण स्वयं जार करता था कि कहीं उनमें कोई आपत्तिजनक भावनाएँ तो नहीं हैं। कुछ समय बाद राजभवन में उसे एक अधिकारी का पद प्राप्त हुआ; किन्तु पुश्किन वहाँ के जीवन से सन्तुष्ट नहीं था।

पुश्किन को आरम्भ से ही उच्च वर्ग के लोगों का जीवन अध्ययन करने का अवसर मिला था, किन्तु जीवन-यात्रा समाप्त करने के पूर्व उसकी विचार-धाराएँ परिवर्तित हो गई थीं। धनी और सभ्य लोगों के विलासी-जीवन का वर्णन कैसे शोभा देता जब कि उस वर्ग के लोगों द्वारा बन्धक-किसान दासों के ऊपर भयानक अत्याचारों का आक्रमण हो रहा था। दूसरी ओर शासन की निरंकुशता ने जनता को भयभीत और त्रस्त कर दिया था।

पुश्किन ने केथराइन द्वितीय के शासनकाल में होनेवाले किसान-विद्रोह का जब ऐतिहासिक विवरण लिखा, उस समय किसानों का वास्तविक जीवन और उनकी विपत्तियों का भी वह अनुभव करने लगा था। राष्ट्र के भविष्य का प्रश्न उसे पहले से अधिक विस्तृत दिखाई पड़ा। उसका विश्वास था कि वह समय आवेगा जब रूस अपनी निद्रा से जागरित होगा और प्रसन्नता का प्रभात उसके सम्मुख होगा।

पुश्किन के 'केपटनस् डाटर' और 'हिस्ट्री आफ पगाचेव' नाम की अपनी लिखी दोनों पुस्तकों में किसान-विद्रोह का ऐतिहासिक वर्णन किया है। पुश्किन ने ही गोगल की 'डेड सोल्स' का कथानक बतलाया था।

पुश्किन ने जीवन का अन्त बहुत रहस्यपूर्ण रहा। वह एक 'डुएल' में मारा गया। इस सम्बन्ध में दो मत हैं। एक का कथन है कि अपनी पत्नी के कारण उसे द्वन्द्व में लड़ना पड़ा। दूसरे का विश्वास है कि जार के कुचक्रों द्वारा उसे इस द्वन्द्व में अपना जीवन समर्पित करना पड़ा। जनता में उत्तेजना न फैले इसलिए जार ने आज्ञा दी थी कि उसका शव-संस्कार गुप्त रूप से ही किया जाय। जो हो, केवल ३७ वर्ष की अवस्था में पुश्किन इस संसार से चला गया था।
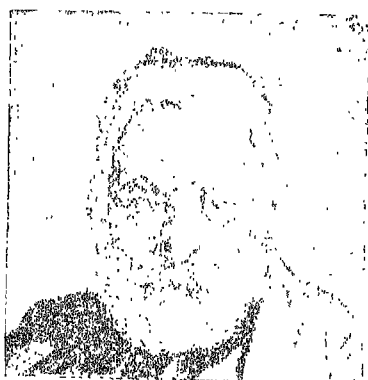
(१८०२–१८८५ ई०)

विक्टर ह्यूगो का पिता नेपोलियन की सेना में जेनरल था। विक्टर ह्यूगो जब ग्यारह वर्ष का था उस समय उसने नेपोलियन को पेरिस की सड़कों से जाते हुए देखा था। उसने लिखा है कि उस समय मेरा आकर्षण उस जनता के प्रति नहीं था जो गाती-बजाती हुई बादशाह के साथ चल रही थी, बल्कि अपनी वीरता से परिपूर्ण स्वयं शासक का व्यक्तित्व ही मेरे आकर्षण का विषय था।

ह्यूगो की माता का राज-वंश के प्रति विशेष आदर और सम्मान था। यही कारण था कि माता और पिता का प्रभाव बालक पर भी पड़ा और विक्टर ह्यूगो राज्य के प्रति प्रेम रखने लगा।

माता-पिता के अव्यवस्थित जीवन के कारण बालक विक्टर ह्यूगो की शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं हुई। वह एक नगर से दूसरे नगर में शिक्षा पाता रहा। इस तरह पेरिस, बोर्डो और मेडरिड में उसका अध्ययन चलता रहा। सरकारी नौकरी के कारण विक्टर ह्यूगो के पिता की बदली एक स्थान से दूसरे स्थान पर होती रही। मेडरिड के गवर्नर होने के पश्चात जब उसका पिता पेरिस में एक सम्मानित जेनरल के पद पर आया तभी से विक्टर ह्यूगो की शिक्षा व्यवस्थित रूप से हो सकी। परिणाम यह हुआ कि निश्चित रूप से किसी विषय का अध्ययन न कर प्रत्येक विषय का साधारण ज्ञान उसे प्राप्त हुआ। उसकी माता ने अपनी एक परिचिता से कहा—सचमुच यह सभी विषयों का साधारण ज्ञान रखता है।

विक्टर ने तेरह वर्ष की अवस्था में महाकवि वर्जिल की कुछ कविताओं का अनुवाद किया था। स्कूल की काव्य-प्रतियोगिता में उसे प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। उसने अपने विद्यार्थी-जीवन में ही वीर-काव्य, एक नाटक और एक उपन्यास लिख डाला था। उसके शिक्षकों का विश्वास था कि वह असाधारण प्रतिभावान् है।

१९ वर्ष की अवस्था में एडली नाम की एक युवती से उसका विवाह हुआ। विवाह के बाद ही उसके जीवन में रोमांस आरम्भ हुआ। सुख-दुःख में उलझी हुई उसकी भावुकता विकसित होती रही। विक्टर ह्यूगो के नाटक 'हेरनानी' ने अत्यन्त कोलाहल उत्पन्न' किया। इस नाटक के प्रदर्शन के बाद मनःकल्पित साहित्य के समर्थक और शास्त्रीय साहित्य के पक्षपातियों में युद्ध छिड़ गया। ह्यूगो ने इस नाटक के सम्बन्ध में घोषणा की—मैंने इस नाटक में सभी प्राचीन नियमों और सिद्धान्तों का उल्लंघन किया है। मैंने सौन्दर्य पर ढँके हुए पुराने आवरण को नष्ट कर दिया है और अब, आगे चलकर, लेखक स्वतन्त्र होंगे। उन्हें नियमों के बन्धन में न पड़ना होगा।

ह्यूगो का यह नाटक अत्यन्त सफल हुआ। वह जनता में विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। इसके बाद उसने 'नात्री-डेम-डी-पेरिस' नाम का उपन्यास लिखा। केवल छः मास में ही उसने इस उपन्यास को लिखकर समाप्त किया था।

१९३० ई० की राज्यक्रान्ति में परिवर्तन हुआ। चार्ल्स दशम को राज्यत्याग करना पड़ा। लुइस फिलिप गद्दी पर बैठा। इसी समय से ह्यूगो लोकतन्त्री बना। उसने जनता का सक्रिय पक्ष लिया। १८४८ ई०

की क्रान्ति में उसने भाग लिया था। उस समय उसने अपने जीवन तक की परवाह न की थी। तीन रातें उसने जगकर भूख-प्यास से त्रस्त होकर व्यतीत की थीं। उधर वह जनता के विद्रोह में सम्मिलित था, इधर स्वयं उसके मकान पर जनता ने आक्रमण कर दिया था। विद्रोहियों के नेता ने जब विक्टर ह्यूगो के कमरे में प्रवेश किया तो 'ला मिजरेबल' के कुछ हस्तलिखित पृष्ठ बिखरे पड़े थे। उसे पढ़कर ही उसे विश्वास हुआ कि लेखक भी उसी के पथ का है।

ह्यूगो ने 'ला मिजरेबल' उपन्यास को पेरिस में लिखना आरम्भ किया था; लेकिन कुछ ही समय बाद नेपोलियन तृतीय के प्रति विद्रोह करने के कारण वह गुर्नसी नाम के टापू में निर्वासित कर दिया गया और वहीं पर उसने उसे समाप्त किया। दुर्भाग्य ने एक साथ ही आक्रमण किया था। उसकी एक लड़की नदी में डूबकर मर गई थी और दूसरी का असमय में ही देहान्त हो गया। उसकी तीसरी पुत्री अपने असफल प्रेम में पागल हो गई थी। इस तरह की पारिवारिक दुर्घटनाओं के वातावरण में 'ला मिजरेबल' की रचना हुई।

'ला मिजरेबल' मानव जीवन की अत्यन्त कारुणिक कहानी है। लेखक ने मृत्यु के आतंक के मध्य में जीवन-कुसुम प्राप्त किया था।

जीवन-कुसुम, आशाहीनों की आशा, निरीहों का जीवन-गान और विपदाग्रस्तों के प्रति भगवान् का असीम प्रेम—यही उसके उपन्यास की आधारशिला है। यंत्रणा का दया में और दया का प्रेम में परिवर्तन ही उसकी विशेषता है। जिस दिन यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था, कुछ ही घण्टों में उसकी पचास हजार प्रतियाँ पेरिसवालों ने खरीद ली थीं। इसमें सन्देह नहीं कि विक्टर ह्यूगो लेखक के रूप में अपने जीवन में पर्याप्त यशस्वी हुआ। उसकी रचनाओं से उसे अत्यधिक धन प्राप्त हुआ।

वृद्धावस्था में भी ह्यूगो की शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। वह कहता था—'मेरे उज्ज्वल केशों में वसन्त का प्रेम निवास करता है।' उसका सिद्धान्त था कि दुःख ही सुख के आरम्भ का गायन है। उसके दो पुत्रों का देहान्त हुआ। पत्नी भी चल बसी। इस तरह भयानक आघातों के कारण वह कर्तव्यशून्य नहीं हुआ। १८७० ई० में जर्मनी ने फ्रांस पर आक्रमण किया। ह्यूगो निर्वासन में था। उसने बड़े ओजस्वी और प्रभावशाली शब्दों में जनता को युद्ध का सामना करने के लिए उत्साहित किया।

अस्सी वर्ष की अवस्था में ह्यूगो का जन्मदिवस पेरिस में बड़े समारोह

से मनाया गया था। फूलों से लदी गाड़ियाँ चली आ रही थीं। पचास हजार बालक-बालिकाएँ गाती और नृत्य करती अपने बूढ़े दादा ह्यूगो के सम्मान में प्रदर्शन कर रही थीं और हजारों मजदूर लेखक का विख्यात राष्ट्रीय गान गा रहे थे।

ह्यूगो की ख्याति और यश अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उसकी चिर-प्रेयसी जुलियट भी वृद्धावस्था में उसका साथ छोड़कर चली गई। अब उसकी एक पगली पुत्री जीवित थी। बूढ़ा लेखक अपने पौत्रों के बीच में घिरा हुआ दिन काट रहा था। जब उसे मृत्यु का आमंत्रण मिला तो उसने बच्चों से कहा—मेरे प्यारे बच्चो, अब मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ। मैं अब स्वर्ग के अपने उन स्वर्गीय कुसुमों को देखने जा रहा हूँ। तुम मुझे नहीं देखोगे, लेकिन मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा और तुम्हें आशीर्वाद दूँगा।

मृत्यु के बाद उसके मित्र उसका शव-संस्कार राजकीय सम्मान के साथ करना चाहते थे, लेकिन ह्यूगो की अन्तिम आकांक्षा थी कि वह गरीबों के कब्रिस्तान में ही दफन किया जाय। उसने अपना पचास हजार फ्रैंक गरीबों के लिए अर्पित किया था।

उसका अन्तिम विश्वास था—'मेरे शव-संस्कार के समय चर्च की सभी प्रार्थनाओं का बहिष्कार किया जाय। मैं एकमात्र भगवान् में विश्वास करता हूँ।'

फ्रांस में गणतन्त्र का गान करनेवाली आत्मा सदैव के लिए विलीन हो गई।

विक्टर ह्यूगो फ्रेंच साहित्य का महारथी था। उसने साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति की थी। अपने समय में वह पेरिस में सबसे सुन्दर युवक था। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उसका कवि-हृदय अत्यन्त भावुक और काल्पनिक था।

इँग्लैण्ड के युगान्तरकारी कवि बायरन का उस पर प्रभाव पड़ा था। ह्यूगो ने प्राचीन शास्त्रीय साहित्य का खण्डन करते हुए नवीन स्वच्छन्द साहित्य का निर्माण किया।

योरोपीय साहित्य में ह्यूगो ने प्रथम बार अपराधी श्रेणी के चरित्रों का चित्रण किया है। उसने उपन्यास-संसार के सम्मुख नवीन आदर्श उपस्थित किया।

इस वर्ष (१९५२ ई०) रूस में सर्वत्र ह्यूगो का डेढ़ सौ वर्षीय जन्म दिवस बड़े उत्साह से मनाया गया है। सोवियत रूस की ४४ भाषाओं में ह्यूगो की रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।
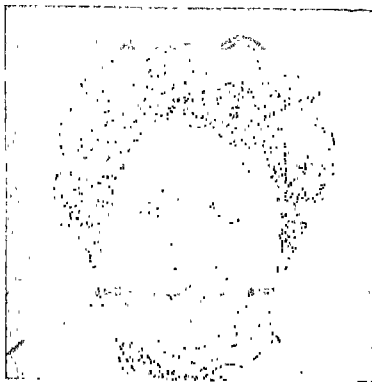
ड्यूमस

(१८०२–१८७० ई०)

अलिक्जेन्डर ड्यूमस जब चार वर्ष का था, तब उसके पिता का देहान्त हो गया था। उसकी माता जब शव वाले कमरे से बाहर आ रही थी, तब उसने देखा कि उसका नन्हा पुत्र सीढ़ियों पर चढ़कर एक भारी बन्दूक उतारने का प्रयत्न कर रहा है।

'कहाँ जा रहे हो बेटा?'—माँ ने पूछा।

'मैं स्वर्ग में जा रहा हूँ'—बालक ने उत्तर दिया।

'अरे! किस लिए दयानिधान?'—माँ ने पूछा।

'भगवान् से युद्ध करने जा रहा हूँ, क्योंकि उसने मेरे पिता को मारा है?'—बालक ने कहा।

अलिक्जेन्डर के आरंभिक जीवन की यह घटना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वह एक उद्धत प्रकृति का व्यक्ति था। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन की विकट समस्याओं से युद्ध करने में वह सदैव एक प्रचण्ड योद्धा के समान कटिबद्ध रहता था।

उसका पितामह एक टापू में राजा की भाँति शासन करता था। वहाँ अगणित काले दास और दासियाँ उसकी सेवा में प्रस्तुत रहते थे। उन्हीं में से लुईस ड्यूमा नाम की एक दासी थी। वह अपने स्वामी की विशेष कृपापात्री थी। उसी के गर्भ से अलिक्जेन्डर के पिता टामस का जन्म हुआ था।

अपनी युवावस्था में टामस सेना में सम्मिलित हो गया था। सात वर्ष में वह सेनापति के पद पर पहुँच गया। वह सदैव अपनी सेना के अग्रिम भाग में युद्ध करता था। एक बार आस्ट्रिया की सेना से युद्ध करते समय एक

पुल की रक्षा मे वह अकेला ही पूरी रेजिमेन्ट से लड़ता रहा। वह बड़ा साहसी योद्धा था। एक बार युद्ध में वह बुरी तरह से घायल हो गया। उसके एक सहयोगी ने पूछा—जेनरल, आप अधिक घायल हो गये हैं?

उसने उत्तर दिया—कोई चिंता नही, मैंने बहुतों के प्राण लिये हैं। यह कहते-कहते उस वीर योद्धा के प्राण निकल गये।

नेपोलियन की सेना में भी वह बड़ी वीरता से लड़ता रहा; किन्तु जब नेपोलियन ने फ्रांस का शासन-भार ग्रहण किया तब कतिपय कारणों से टामस को सेना से निकाल दिया था।

टामस ने अपना विवाह किया। उसकी पत्नी के गर्भ से अलिक्जेन्डर का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही अलिक्जेन्डर विद्रोह की भावना से पूर्ण था। वह कहता था—इस नीच नेपोलियन ने मेरे पिता को अपमानित किया है। मैं जीवन भर ऐसे दुष्टों से लड़ता रहूँगा।

अलिक्जेन्डर के शरीर में काले-गोरे रक्त का मिश्रण था; किन्तु वह स्वतः गौर वर्ण का था। उसकी नीली आँखें थीं; केवल उसके मोटे होठ इस मिश्रण का संकेत देते थे।

अलिक्जेन्डर की माँ उसे शिक्षित बनाना चाहती थी; किन्तु अलिक्जेन्डर की रुचि उस ओर न थी। वह घर से भागकर कई दिनों तक जंगल में भ्रमण करता रहता।

सन् १८१५ ई० में एक दिन अलिक्जेन्डर ने देखा कि सड़क पर एक गाड़ी जा रही है, जिसमें नेपोलियन वाटरलू के लिए प्रस्थान कर रहा है। कुछ ही दिनों के बाद उसने फिर उसी गाड़ी को देखा, जिसमें हताश और क्षीण नेपोलियन वाटरलू से भागकर लौट रहा था।

नेपोलियन के पतन के बाद अलिक्जेन्डर की माता ने अपनी जीविका के लिए बहुत प्रयत्न किये। उसने अपने पुत्र को किसी कार्य में लगने के लिए बहुत उत्साहित किया। अलिक्जेन्डर की लिखावट बड़ी सुन्दर थी, अतएव उसे एक स्थान पर क्लर्क का काम मिल गया।

साहित्य के प्रति अलिक्जेन्डर की रुचि थी। वह वाल्टेयर आदि लेखकों से मिलता रहता था।

पेरिस में आकर उसने जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास किया। वह एक नाटचशाला में गया और वहाँ एक प्रसिद्ध अभिनेता से मिला। अभिनेता ने पूछा—मेरे मित्र! तुम क्या काम करते हो?

उसने उत्तर दिया--मैं एक क्लर्क हूँ, लेकिन मैं एक नाटककार बनना चाहता हूँ।

अभिनता ने उसे उत्साहित किया और आशीर्वाद दिया कि वह इस कार्य में अवश्य सफल होगा।

अलिक्जेन्डर उस दिन के बाद निरंतर प्रयत्न करता रहा। वह कभी भी निराश नहीं होता था। १८२८ ई० में वह एक सफल नाटककार माना गया। जनता ने उसका अभिनन्दन किया। उसे पेरिस के रंगमंच के नवीन राजा का गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ। उसके नाटक अत्यन्त सफलता से खेले जाते थे। वह अपनी विजय पर प्रसन्नता से खिल उठता था।

उन दिनों चार्ल्स दशम ने प्रेस की स्वतन्त्रता हरण कर ली थी। डयूमस ने इसके विरोध में बहुत कार्य किया। उसने क्रान्ति में प्रमुख भाग लिया। उसकी साहित्यिक सफलता बहुत आगे बढ़ गई थी। उसका 'एनटोनी' शीर्षक नाटक जनता में समादृत हुआ था।

इस संसार में सुख-दुःख के ताने-बाने से ही तो नियति अपना खिलवाड़ करती रहती है। अच्छे और बुरे दिन जीवन में आते-जाते रहते हैं। डयूमस को भी जीवन में संघर्ष करना पड़ा। उसके जीवन में भी अनेक घटनाएँ घटित हुई। उस पर हैजे का आक्रमण हुआ। इसके बाद वन्दी होने के भय से उसे देश छोड़कर भागना पड़ा। परिस्थितियाँ जैसे उसे निश्चिन्त होकर नहीं बैठने देना चाहती थीं; परन्तु वह अपने जीवन को सुखमय बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहता था। वह अत्यन्त चतुर और कुशल व्यक्ति था। जब कभी उसे अपमान का सामना करना पड़ता तो वह केवल मुस्करा देता था। एक बार एक सभ्य सज्जन ने अपने वंश के गर्व में उससे पूछा---आप अपने पूर्वपुरुषों का परिचय दीजिए।

अलिक्जेन्डर ने कहा---मेरे पिता क्रिओल, मेरे दादा नीग्रो, और मेरे परदादा बन्दर थे। मेरे वंश का आदि वही है जो तुम्हारे वंश का अंत है। इसमें संदेह नहीं कि डयूमस के इस परिहासपूर्ण उत्तर से वे सज्जन अवश्य ही पानी-पानी हो गये होंगे।

एक बार किसी साहित्यिक गोष्ठी में डयूमस की बालजाक से भेंट हुई। साहित्यिक पुरुषों में भी परस्पर ईर्ष्या इत्यादि के भाव रहते ही हैं। बालजाक ने कुशल नाटककार डयूमस पर व्यंग्य कसते हुए कहा---मेरी प्रतिभा जब समाप्त हो जायगी तब मैं नाटक लिखना आरंभ करूँगा।

अलिक्जेन्डर ने चुटकी लेते हुए कहा—तब तो आप तुरन्त ही नाटक लिखना आरंभ कर दीजिए।

१८३२ ई० में ड्यूमस के नाटक 'टेरेसा' में ईडा फेरियर नामक एक अभिनेत्री कार्य कर रही थी। उसे अपने अभिनय में बड़ी ख्याति मिली। उसने लेखक से कहा—मैं आपका उपकार कैसे चुकाऊँ?

कई वर्षों तक लेखक से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। अंत में एक दिन लोगों ने आश्चर्य से सुना कि दोनों वैवाहिक बन्धन में बँध गये हैं। ड्यूमस अब शान्ति से वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहा था। क्रान्ति और विद्रोह की भावनाएँ शिथिल हो चुकी थीं। रंगमंच से भी उसकी रुचि हट गई थी। उसकी प्रतिभा एक नवीन मार्ग खोजने में व्यस्त थी। वह कोई नूतन प्रयोग करना चाहता था।

ड्यूमस का यह नूतन प्रयोग ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना है। उसका प्रथम ऐतिहासिक तथा प्रेम-परक उपन्यास 'थ्री मस्कीटिअर्स' है। उसने ऐतिहासिक अनुसंधान के लिये कई लेखकों को अपने यहाँ नियुक्त किया। प्राचीन उपेक्षित तथ्यों की ओर ध्यान न देकर वह इतिहास के जीवित तथ्यों पर ही विशेष ध्यान देता था।

उसकी लेखनी अब उपन्यासों पर वेग से चल रही थी। प्रातःकाल सात बजे से लेकर रात में सात बजे तक वह बराबर लिखता रहता था। कभी-कभी भोजन वैसे ही सामने पड़ा रहता; परन्तु उसका ध्यान खाने की ओर भी न जाता था। कोई भेंट करने वाला आ जाता तो बायें हाथ से अभिवादन करके वह दाएँ हाथ से बराबर लिखता ही रहता था। अपने उपन्यास के पात्रों के साथ ही मानो उसका जीवन व्यतीत हो रहा था। वह उनसे बोलता, व्यंग्य करता और विभिन्न क्रिया-कलापों की ओर प्रेरित करता रहता था। एक बार किसी अभ्यागत ने उसके नौकर से कहा—जब तुम्हारे मालिक अकेले होंगे तभी मैं उनसे मिलूँगा।

नौकर ने उत्तर दिया—वह अकेले हैं, अपने पात्रों की प्रतिध्वनि सुन रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि अलिक्जेन्डर दिनभर स्वनिर्मित पात्रों के साथ रहता और रात में भी उन्हीं का स्वप्न देखा करता था। जब लोग उससे पूछते कि वह कहानियाँ कैसे लिखता है तब वह उत्तर देता—मैं स्वतः कहानियाँ नहीं लिखता प्रत्युत स्वयं कहानियाँ ही मेरे मस्तिष्क से प्रकट हो जाती हैं।

डयूमस का कहना था कि लेखक को प्रसन्नतापूर्वक लिखना चाहिए, जिससे उसके पाठक भी प्रसन्न रह सकें। उस कला का भला क्या महत्त्व है, जिससे जनता को कोई आनन्द ही प्राप्त न हो। उसे न तो कवि बनने की इच्छा थी, और न वह महान् पंडित बनने की कामना करता था। वह तो एक कुशल कथाकार बनना चाहता था। मनोरंजन ही उसका एकमात्र उद्देश्य था।

एक बार एक आलोचक ने डयूमस से कहा कि तुम घटनाओं का वर्णन तो करते हो, परन्तु उसका अनुभव नहीं करते।

डयूमस ने उत्तर दिया—यदि मैं घटनाओं का अध्ययन करूँ तो मुझे लिखने का कब अवकाश मिलेगा ?

अलिक्जेन्डर के शत्रु प्राय: कहा करते थे कि उसने उपन्यासों का एक कारखाना खोल रक्खा है और वह दूसरों की सामग्री अपनी बनाकर निकालता है।

लेखक के जीवन के पिछले पहर में उसका पुत्र स्वयं एक कुशल और प्रसिद्ध लेखक बन गया था। उसके पुत्र की कई रचनाओं को स्वयं उसकी कृतियों से कहीं अधिक ख्याति मिली। पिता पुत्र से ईर्ष्या करने लगा। दोनों में प्रतिस्पर्धा थी। दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते थे; किन्तु दोनों का आपस में स्नेह था। पिता कहता—मैंने एक लड़के को आगे बढ़ाया है जो अब सर्प की भाँति हो गया है।

पुत्र कहता—मैंने एक पिता को आगे बढ़ाया है, जो अब एक बालक के समान हो गया है।

१८५९ ई० में इटालियन स्वाधीनता-संग्राम के लिये डयूमस ने पचास हजार फ्रैंक अर्पित किये और गेरिबाल्डी के साथ वह अपने जीवन को उत्सर्ग करने के लिए भी प्रस्तुत हो गया था।

वह कभी विश्राम लेना नहीं चाहता था। ६३ वर्ष की अवस्था में इटली के क्रांतिकारियों से मिलकर वह पेरिस लौटा। उसका पुत्र स्टेशन पर उससे मिला। रात्रि के दस बजे का समय था।

पुत्र ने कहा—पिताजी, आप यात्रा के कारण बहुत थक गये होंगे। अब तो आप घर ही चलिएगा न ?

डयूमस ने कहा—नहीं, अभी मैं गोटेर से मिलना चाहता हूँ।

पिता-पुत्र जब गोटेर के मकान पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि मकान का दरवाजा बन्द है।

डयूमस ने आवाज देकर उसे जगाया।

'कौन है ?'—उसने पूछा।

'ड्यूमस और उसका पुत्र'—उत्तर मिला।

'लेकिन हम सब लोग इस समय सो रहे हैं।'

'इतनी जल्दी शय्या पर! आलसी आदमी, उठ बैठो।'

चार बजे सवेरे पिता और पुत्र वहाँ से अपने घर पहुँचे।

पिता ने पुत्र से कहा—बेटा मेरे लिये एक लैम्प ला दो।

'किस लिए'—पुत्र ने पूछा।

'मुझे कुछ कार्य करना है।'—पिता ने उत्तर दिया।

पिता अपना कार्य करने लगा और पुत्र शयन के लिये चला गया। वह जब उठा, तब प्रभात का समय बीत चुका था। मेज पर तीन पत्रिकाओं के लिए तीन लेख रखे हुए थे। ड्यूमस इस समय शीशे के सम्मुख दाढ़ी बना रहा था और गाता जाता था।

'पापा, तुम्हें कैसा लग रहा है?'—लड़के ने पूछा।

'एक पुष्प की भाँति स्वच्छ।'—पिता ने उत्तर दिया।

सहसा उसकी आँखें चमक उठीं। पिता ने व्यंग्य करते हुए कहा—देखो हम नौजवान लोग उतनी जल्दी नहीं थकते जितनी जल्दी तुम्हारे जैसे बूढ़े थक जाते हैं।

यही वह अदम्य उत्साह, साहस और अथक परिश्रम करने का स्वभाव है, जिसने ड्यूमस जैसे कलाकार का निर्माण किया था।

६८ वर्ष की अवस्था में उस नौजवान लेखक ने अपनी लेखनी को विश्राम दिया। उसका अंतिम प्रेम-सम्बन्ध एक अमेरिकन अभिनेत्री के साथ हुआ था। किन्तु कुछ समय बाद वह अभिनेत्री घोड़े से गिरकर मर गई थी और उसी के साथ मानो ड्यूमस की स्फूर्ति ने भी सदैव के लिये बिदा ले ली थी।

ड्यूमस अब अपने पुत्र के घर आया। उसने कहा—मेरे बच्चे! मैं तुम्हारे यहाँ मरने के लिए आया हूँ।

इसके बाद वह गंभीर और मौन हो गया। उसके मित्र कभी-कभी दुःखी हृदय से कहा करते—अब हमारे मित्र ड्यूमस की प्रतिभा का अंत निकट आ गया है।

पुत्र कहता—मेरे पिता की प्रतिभा कभी समाप्त ही नहीं हो सकती। यदि वह आजकल की भाषा में हम लोगों से बातें नहीं करता है तो इसका कारण यह है कि वह अनन्त काल की भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है; किन्तु ड्यूमस का अंतकाल अब निकट आ गया था। अपने प्रिय पुत्र के घर पर ही उसका देहान्त हुआ।

गोगल

(१८०९–१८५२ ई०)

गोगल के साथ रूसी साहित्य का एक नया युग आरम्भ होता है। गोगल की पुस्तक का प्रकाशक जब उस स्थान पर गया, जहाँ गोगल का कहानी-संग्रह 'इवनिंग्स् इन ए फार्म नियर डिकानका' कम्पोज हो रहा था तो उसने देखा कि कम्पोजिटर हँस रहे हैं। उसे आश्चर्य हुआ और उसने कारण पूछा। फोरमैन ने उत्तर दिया कि गोगल की पुस्तक इतनी हास्यमय है कि कम्पोज करते समय वे अपनी हँसी किसी तरह नहीं रोक सकते।

गोगल का जन्म यूक्रेन के एक छोटे जमींदार के गृह में हुआ था। यूक्रेन के लोगों का जीवन उस समय मध्य रूसी भाग से भिन्न था। मध्य रूस की भाँति यूक्रेन में सड़कें नहीं थीं। बगीचे और खेतों के बीच में छोटे-छोटे मकान बने हुए थे। वहाँ का दृश्य सुन्दर और रमणीक था। यूक्रेन के लोगों में प्राचीन काल से वीरकाव्य और गीतों की परम्परा चली आ रही थी। उस समय से, जब कि वे स्वतन्त्र कोजाक के रूप में उत्तर में पोल और दक्षिण में तुर्क जाति से युद्ध करते थे। उनकी भाषा मधुर और संगीतमय थी; किन्तु गोगल ने रूसी भाषा में ही अपनी कृतियों का निर्माण किया। गोगल ने रूसी और यूक्रेनियन जाति के लोगों में एकता स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

गोगल की आरम्भिक शिक्षा एक ग्रामीण छोटे नगर में हुई थी। १९ वर्ष की अवस्था में ग्रेजुएट होने के पश्चात् वह सेण्ट पीटर्सबर्ग गया। गोगल की अभिलाषा थी कि वह रंगमंच पर अभिनेता का कार्य करे; किन्तु नाट्यशाला के मैनेजर ने उसे निराश किया। उसने अपनी जीविका के लिए राजकीय विभाग में एक क्लर्क का स्थान ग्रहण किया।

गोगल के पिता में साहित्यिक प्रतिभा थी। उसने यूक्रेनियन भाषा में कुछ सुखान्त नाटकों की रचना की थी; किन्तु गोगल के बाल्यकाल में ही उसका देहान्त हो गया था। गोगल में भी साहित्यिक रुचि विकसित हो रही थी। १८३० ई० में गोगल का प्रथम उपन्यास 'सेण्ट जोन्स ईव' एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक ने यूक्रेनियन जीवन का चित्रण किया था।

गोगल जीवन के वास्तविक स्वरूप के चित्रण को ही महत्त्व देता था। उसके निर्मित चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं। लेखक की प्रतिभा हास्यरस की ओर जब विकसित हुई तब उसकी रचनाओं में जीवन का दुःखी वातावरण भी उनमें मिश्रित हो गया। इसलिए पुश्किन ने कहा था कि गोगल के हास्य में अदृश्य अश्रुकण अन्तर्निहित हैं।

गोगल की सभी कहानियाँ किसानों के जीवन पर नहीं लिखी गई हैं। उसकी कुछ कहानियों में छोटे नगरों के उच्च वर्ग के लोगों का वर्णन है। ऐसी ही एक कहानी है जिसका शीर्षक है—'कैसे इवान इवानोविच' ने इवान निकिफोरईच से झगड़ा किया?' यह एक बड़ी हास्यमय कहानी है। दो पड़ोसी इवानोविच और निकिफोरईच आपस में झगड़ा करते हैं। इस झगड़े का यह कारण होता है कि निकिफोरईच अपने मित्र इवानोविच के पास एक पुरानी बन्दूक देखता है और उसे वह उससे प्राप्त कर लेता है। बदले में उसका मित्र उससे कुछ लेता नहीं। इस पर निकिफोरईच ने कहा कि यदि वह पैसा नहीं लेना चाहता तो बदले में एक सूअर ले ले। इस बात पर उसका मित्र अत्यन्त रुष्ट होकर झगड़ा करता है और कहता है कि भला यह भी सम्भव है कि बन्दूक, जो वीरता की प्रतीक है, के बदले में सूअर लिया जाय! दोनों का झगड़ा इतना बढ़ता है कि एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में जीवन भर भटकते हुए वे दोनों वृद्ध और निर्धन हो जाते हैं।

गोगल ने हास्यरस का एक सुखान्त नाटक 'इन्सपेक्टर जेनरल' लिखा है। यह नाटक इतना हास्यमय है कि दर्शक उसे रंगमंच पर देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। इस नाटक से रूसी साहित्य में एक नवीन युग आरम्भ होता है। यह नाटक रूसी ही नहीं, विश्व-साहित्य का एक रत्न माना जाता है। इस वर्ष (१९५२ ई०) सोवियत रूस में गोगल की जयन्ती बड़े उत्साह और समारोह से मनाई गई है। इस अवसर पर समस्त देश में गोगल के नाटकों का प्रदर्शन हुआ। उसके सम्बन्ध में

अनेक भाषण हुए। उसकी विशाल प्रतिमा स्थापित हुई और उसकी पुस्तकों का नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया। केवल सोवियत-काल में ही लेखक की पुस्तकों के विभिन्न संस्करण, सब मिलाकर, अट्ठारह लाख प्रतियों के हुए।

'इन्सपेक्टर जेनरल' नाटक में लेखक ने शासन के कठपुतले अधिकारी-वर्ग का बहुत ही उपयुक्त अंकन किया है। मूर्खता, अनभिज्ञता और विलासिता में लिप्त होकर किस तरह वे जनता का शोषण और उस पर अत्याचार करते हैं, इस पर लेखक ने इतनी कुशलता से व्यंग्य की चुटकियाँ ली हैं कि हँसी के साथ उनके प्रति घोर घृणा के भाव भी जागरित होते हैं।

इस नाटक के कारण लेखक को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। बहुत प्रयत्न करने पर जार द्वारा नाटक को रंगमंच पर खेलने की आज्ञा मिली थी। लेखक की अन्य पुस्तक 'डेड सोल्स' का प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने पर दूसरे संस्करण को छापने की आज्ञा किसी तरह भी नहीं मिली थी।

गोगल की कृतियों में 'डेड सोल्स' एक महान् रचना है। इस उपन्यास में बहुत ही साधारण कथा-वस्तु है। जब रूस में गुलामी प्रथा प्रचलित थी, उस समय प्रत्येक धनी और सामन्त की प्रबल आकांक्षा रहती थी कि वह सैकड़ों गुलामों का स्वामी बना रहे। उनके ये बन्धक-दास गुलामों की भाँति बिकते थे।

टीचिकोफ नाम के एक धनी जमींदार ने बड़ी चतुर कल्पना के अनुसार एक नई युक्ति सोच निकाली। प्रति दस या बीस वर्ष में देश के लोगों की जन-गणना होती थी। अन्तिम जन-गणना के अनुसार प्रत्येक गुलाम का स्वामी अपने प्रत्येक गुलाम के लिए निर्धारित कर देने के लिए बाध्य था। उन बन्धक-दासों में जिनकी मृत्यु हो जाती, उन पर भी उन्हें कर देना पड़ता था। इस अनियम से लाभ उठाने के लिए टीचिकोफ मृतक गुलामों को बहुत अल्प मूल्य में खरीदेगा। निश्चय ही गुलामों का स्वामी प्रसन्नता-पूर्वक अपना बोझ हल्का करने के लिए किसी भी मूल्य पर उनका विक्रय कर देगा। टीचिकोफ जब दो-तीन सौ इन काल्पनिक दासों को खरीद लेगा तब रूस के दक्षिणी क्षेत्र में कहीं सस्ती जमीन खरीदकर इन मृतक दासों के नामों को कागज पर दर्ज करा देगा। यह कार्य इतनी कुशलता से होगा कि ऐसा प्रतीत होगा कि वास्तव में वे दास उस स्थान पर निवास करते

हैं। इसके पश्चात् टीचिकोफ अपनी इस नवीन प्रकार की रियासत को 'स्टेट लैंड लार्ड बैंक' में रेहन कर पर्याप्त धन प्राप्त कर लेगा।

अपने इन्हीं विचारों को पूर्ण करने के प्रयत्न में टीचिकोफ एक प्रान्तीय नगर में जाता है। वहाँ वह सभी प्रमुख अधिकारियों से मिलता है।

गोगल ने अपने पात्र का इतना सजीव चरित्र-चित्रण किया है कि सचमुच पढ़ते समय उस पात्र की आकृति आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

टीचिकोफ पहले गवर्नर से मिलता है, इसके पश्चात् छोटे गवर्नर, मजिस्ट्रेट, पुलिस के प्रधान आदि सभी अधिकारियों के प्रति वह सम्मान प्रकट करता है। फिर भी उसे सन्तोष नहीं होता और वह साधारण अधिकारियों तक के यहाँ पहुँचता है। नगर का कोई भी शासन-विभाग में प्रमुख कार्य करनेवाला व्यक्ति उसकी दृष्टि से छूट नहीं जाता है। वह प्रत्येक के प्रति नम्रता और चापलूसी से बातें करता है। गवर्नर से बातें करते समय उसने कहा कि नगर में प्रवेश करते समय मुझे ऐसा विश्वास हुआ कि मैं स्वर्ग में आ गया हूँ। नगर की सड़कें मखमल की तरह सुन्दर हैं। इसी तरह सभी को उसने लम्बी-चौड़ी बातें कर प्रसन्न किया। यहाँ तक कि उन स्टेट कौंसिलरों को उसने 'हिज एक्सेलेंसी' कहकर सम्बोधित किया जो उस सम्मान के अधिकारी नहीं थे। किन्तु अपनी इस असावधानी के कारण उसने उन्हें मुग्ध कर लिया।

टीचिकोफ जब अपने सम्बन्ध में बातें करता तो अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहता कि इस संसार में वह एक साधारण व्यक्ति है। केवल सत्य का पथ ग्रहण करने के कारण उसे अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा और उसके बहुत से शत्रु हो गये। अब वह शान्तिपूर्वक दिन व्यतीत करने के लिए वहाँ आया है। टीचिकोफ वार्तालाप में इतना निपुण है कि किसी विषय पर कहीं भी कोई बातचीत चले वह बड़ी चतुरता से उसमें भाग ले लेता था। उसके इस स्वभाव के कारण सभी लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की।

गोगल ने अपने इस उपन्यास में कुछ ऐसे चरित्रों का निर्माण किया है, जो संसार के सभी पूँजीवादी देशों में आज तक दिखाई पड़ते हैं। ऐसे पात्र अपनी विभिन्न आकृतियों में सभी जातियों में उत्पन्न होते हैं।

मेनिलोफ नाम के भूस्वामी से पहली बार टीचिकोफ मृत आत्माओं के खरीदने की बातचीत करता है। यह मेनिलोफ भी विश्वव्यापी श्रेणी का चरित्र है। उसे प्रथम बार देखकर धारणा होती है कि वह एक अच्छा

आदमी है; किन्तु अन्त में उसका रूप गुप्त नहीं रहता। वह आनन्द का जीवन व्यतीत करता है। वह अपने किसानों और जमींदारी का तनिक भी ध्यान नहीं रखता। सब कुछ मैनेजर के अधीन है। उसके शासन में दासों की अत्यन्त दुर्दशा होती है।

टीचिकोफ मृत आत्माओं को खरीदने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। उसके संसर्ग में आये हुए अद्भुत चरित्रों को लेखक उपस्थित करता है। प्लियूसकिन नाम के एक कंजूस का इतना मनोवैज्ञानिक चरित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है कि सचमुच उससे अधिक कृपण पात्र का वर्णन विश्व-साहित्य में मिलना कठिन है।

निकोलस प्रथम के पुलिस-विभाग को भली भाँति विदित था कि गोगल की रचनाओं का रूसी जनता पर विशेष प्रभाव है। उसकी रचनाओं पर बन्धन होने पर भी 'डेड सोल्स' की अगणित हस्तलिखित प्रतियाँ वितरित होती रहीं। जनता भली भाँति जानती थी कि लेखक ने खुलकर गुलामी का विरोध किया है। गोगल पहला लेखक है, जिसने रूस में गुलामी के विरोध में साहित्यिक आन्दोलन खड़ा किया। लेखक ने इस विषय पर अपना व्यक्तिगत विचार नहीं प्रकट किया। उसने केवल गुलामों के मालिकों का जीवन-चित्र सामने रखा और मालिकों का व्यवहार दासों के प्रति कैसा रहा इसको भी स्पष्ट किया।

गोगल यदि उन मालिकों के अत्याचार और दासों के प्रति दुर्व्यवहार का वर्णन करता तो सम्भवतः उतना प्रभाव न पड़ता जितना दासों के व्यर्थ के परिश्रम और उनका दुरुपयोग दिखाने से हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि इस उपन्यास को पढ़कर गुलामी प्रथा के प्रति घोर घृणा होती है।

गोगल का साहित्यिक प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। आज भी विश्व-साहित्य में उसका एक महान् स्थान है। उसकी कला यथार्थवादी है; किन्तु उसमें मानवता की उन्नति के प्रति असीम अभिलाषा है। लेखक ने जब अपने हास्यपूर्ण चरित्रों को उपस्थित किया तब उसका यह उद्देश्य नहीं था कि केवल मानव दुर्बलता दिखलाकर हास्य उत्पन्न किया जाय। उसका एकमात्र लक्ष्य था कि सुन्दर और भव्य आकांक्षाओं के उन्नत शिखर पर मानवता आसीन हो। गोगल की दृष्टि में कला प्रकाश का वह स्तम्भ है जिसके द्वारा उच्च आदर्श प्रदर्शित हो।

गोगल ने रूसी साहित्य में प्रथम बार सामाजिक मूल तत्त्व को सम्मानित और महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अब यह प्रश्न स्पष्ट है कि पुश्किन ने

नहीं, गोगल ने ही रूसी उपन्यासों में यथार्थवाद का स्वरूप निर्धारित किया है। टाल्सटाय और तुर्गनेव का भी यही मत है।

प्राय: देखने में आता कि यथार्थवाद के नाम पर लेखक सदैव अश्लील और नग्न चित्रण को ही प्रमुखता देते हैं; किन्तु गोगल की कला की विशेषता है कि यथार्थवाद कैसे उच्च आदर्शों की सेवा के उपयोग में सफल हो सकता है।

जीवन के अन्तिम दस वर्ष गोगल के बड़े कष्टमय व्यतीत हुए। उस पर मानसिक रोगों ने आक्रमण किया था। अन्त में दृढ़ धार्मिक विश्वास के साथ, मानवता की मंगल-कामना करते हुए, उसकी जीवन-यात्रा मास्को में समाप्त हुई।
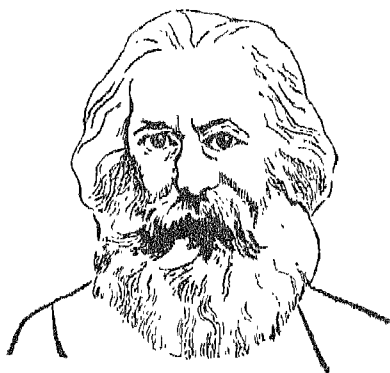
कार्ल मार्क्स

(१८१८–१८८३ ई०)

कार्ल मार्क्स ही एक ऐसा महापुरुष था, जिसने दीन-हीन-त्रस्त मजदूरों और किसानों के अपने स्वतन्त्र राज्य की कल्पना की थी। संसार में साम्राज्यवाद और पूंजीपतियों का अत्याचार प्राचीन काल से चला आ रहा है; किन्तु उससे छुटकारा पाने का कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा था। मार्क्स ने उससे छुटकारा पाने के लिए पथ-प्रदर्शन किया था। वह समस्त विश्व को दासता से मुक्त देखना चाहता था। उसने अपने जीवन में ऐसे साहित्य का निर्माण किया, जिसके द्वारा मानव-जाति पूंजीवाद के बन्धन से मुक्त होने के युद्ध में सफल हो। वह निरन्तर इस ओर कार्य करता रहा। यह ठीक है कि उसके जीवन में उसके सिद्धान्तों को पूर्ण सफलता नहीं

मिली थी; किन्तु आज रूस और चीन उसके स्वप्नों के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। लेनिन, स्टालिन और माओ ने उसके सिद्धान्तों के अनुसार समाजवादी राज्य की स्थापना की है।

मार्क्स के सिद्धान्तों पर ही समाजवादी साहित्य का जन्म हुआ है। अतएव मार्क्स द्वारा ही विश्व-साहित्य में एक नवीन धारा की उत्पत्ति हुई। इस समाजवादी-यथार्थवाद का प्रवर्तक मार्क्स ही है। साहित्य में राजा की कहानी और धनियों के ऐश्वर्य एवं विलासिता का वर्णन ही प्रमुख अंग रहा है। अब उसका स्थान मानव के प्रतिदिन के जीवन ने ग्रहण किया है। मार्क्स भगवान् में विश्वास नहीं करता था। उसके अनुयायी भगवान के स्थान पर उसके प्रति ही श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि समाजवादी स्वतन्त्र देशों में सभी स्थानों पर मार्क्स के चित्र की पूजा होती है।

मार्क्स यहूदी था। उसका पिता एक वकील था। उसका परिवार सम्पन्न और शिक्षित था। मार्क्स ने इतिहास और दर्शन का अध्ययन विश्वविद्यालय में समाप्त कर प्रोफेसर होने का निश्चय किया था; किन्तु उसके क्रान्तिकारी विचारों के कारण उसे वह पद नहीं प्राप्त हो सका।

मार्क्स पर हेगल के दर्शन का विशेष प्रभाव पड़ा था। आरम्भ में हेगल के आदर्शवाद का वह पक्षपाती था। इसके पश्चात् बर्लिन में जिन लोगों ने हेगल के दर्शन से नास्तिक और क्रान्तिकारी तत्त्व निकाला उनके दल में मार्क्स सम्मिलित हुआ। उसने राजनीतिक द्वन्द्व में विशेष भाग लिया। १८४२ ई० में क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के एक पत्र का वह प्रधान सम्पादक नियुक्त हुआ। उसके सम्पादन में पत्र की नीति प्रजापालित राज्य के सम्बन्ध में और भी दृढ़ होती गई।

जर्मनी के प्रगतिशील पत्रों में उस समय मार्क्स द्वारा सम्पादित पत्र का प्रमुख स्थान था। प्रशिया की सरकार के कड़े नियंत्रण में पत्र का चलना कठिन हो गया। अन्त में सरकार की आज्ञा के कारण पत्र बन्द हो गया।

१८४३ ई० में मार्क्स ने अपना विवाह किया। अपनी पत्नी से बाल्य-काल से ही उसकी घनिष्ठता थी। मार्क्स की पत्नी जीवन भर उसके प्रति विश्वसनीय थी। आपत्तिकाल में सदैव उसने अपने पति को सहयोग दिया था। वह एक उच्च कुल की महिला थी और उसके भाई ने प्रशिया की सरकार के मंत्री के पद पर (१८५०–५८ ई०) कार्य किया था। मार्क्स अपनी पत्नी के साथ पेरिस गया। जर्मनी छोड़ने के लिए वह बाध्य किया गया था।

पेरिस में एंगिल्स से मार्क्स की भेंट हुई। एंगिल्स जीवन भर मार्क्स का अभिन्न और अन्तरंग मित्र था। दोनों ने मिलकर पेरिस के क्रान्ति-कारी दल का पथ-प्रदर्शन किया। उस समय के प्रचलित धनियों के अनेक समाजवादी सिद्धान्तों का दोनों ने जोरों से खण्डन किया था। मार्क्स ने सामान्य जन के कम्यूनिज्म की रूपरेखा प्रस्तुत की और दृढ़ होकर कार्य करने लगा। मार्क्स ने एक पत्र भी निकाला; किन्तु भयंकर क्रान्तिकारी होने के कारण सरकारी आज्ञा से उसे पेरिस भी छोड़ना पड़ा। वह बेलजियम गया।

बेलजियम में मार्क्स के निर्देशानुसार १८४७ ई० में एक गुप्त दल का कम्यूनिस्ट-लीग के नाम से संगठन हुआ। यह कम्यूनिस्ट पार्टी को विश्व-व्यापी संस्था के रूप में स्थापित करने का पहला प्रयत्न था। कम्यूनिस्ट-लीग की दूसरी कांग्रेस के आदेशानुसार मार्क्स और एंगिल्स ने मिलकर 'मेनिफेस्टो आफ कम्यूनिस्ट पार्टी' लिखकर प्रकाशित कराया। यह सामान्य-जन-विश्वव्यापी क्रान्तिकारी दल का पहला कार्यक्रम था। इसमें रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया था। इस पुस्तिका का ऐतिहासिक महत्त्व है।

इसके बाद बेलजियम, जर्मनी और पेरिस आदि स्थानों में कहीं भी मार्क्स को निवास करने की आज्ञा नहीं थी। अन्त में मार्क्स लन्दन गया और उसका शेष जीवन वहीं व्यतीत हुआ।

मार्क्स लन्दन में रहता था और एंगिल्स मैनचेस्टर में कार्य करता था। मार्क्स भयानक आर्थिक कष्टों में उलझा हुआ था। वह अपने कार्य में सदैव लीन रहता था। उसने लन्दन में 'इटरनेशनल वकिङ्ग एसोसियेशन' नामक संस्था की स्थापना की और संसार के विभिन्न देशों में मजदूर संगठन की एकता स्थापित की। वह विश्वव्यापी सामान्यजन के आन्दोलन का निर्देशन करता रहा। उसके प्रयत्न के कारण संसार के सभी देशों में मजदूर आन्दोलन का जन्म हुआ। मार्क्स अपने घोर परिश्रम के कारण अपना स्वास्थ्य क्षीण कर रहा था।

मार्क्स के सबसे अधिक परिश्रम का कार्य 'केपिटल' पुस्तक थी। उसके निरन्तर अध्ययन और लेखन ने उसे शिथिल कर दिया। ऐसे समय में उसका परिवार अर्थाभाव के कारण दारुण दुःख भोग रहा था; किन्तु एंगिल्स की उदार मित्रता ने उसे जीवित रहने का साधन प्रस्तुत किया। वह सदैव अपने प्रिय मित्र की सहायता करता रहा। यही कारण था कि

अपने दुर्दिन में भी मार्क्स अपनी साहित्य-साधना से कभी विमुख नहीं हुआ। परिस्थितियों और शत्रुओं के कुचक्रों का आक्रमण भी उसे कभी विचलित नहीं कर सका। वह वीर योद्धा की भाँति युद्धक्षेत्र में अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहा।

कार्ल मार्क्स योरोप की अनेक भाषाओं का ज्ञाता था। उसने अपने ग्रन्थों के लिए अन्य भाषा के ग्रन्थों से उदाहरण और प्रमाण के लिए सामग्री एकत्र की थी। उसने जितनी पुस्तकें लिखी हैं, सबमें उसकी विद्वत्ता का परिचय मिलता है। उसने दीन-हीन, दुख-दलित और निराश्रित जनों का एक नवीन संसार बसाया है। उनके लिए कार्यक्रम, उनका क्रम-विकास और उनका राज्य! यही उसका मूल सूत्र था। प्रगतिशील-साहित्य के अध्ययन से पूर्व कार्ल मार्क्स के सभी ग्रन्थों को पढ़ना आवश्यक है।

मार्क्स और एंगिल्स के पत्र-व्यवहारों का अध्ययन करने पर सभी बातों का रहस्य खुल जाता है। जन-सामान्य का पक्ष ग्रहण करनेवाले, उनके आराध्य देव का जीवन आपत्ति और अभाव में समाप्त हुआ। पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद आरामकुर्सी पर बैठे हुए बड़ी शान्ति से उसने जीवित संसार को अपना अन्तिम नमस्कार किया।

उसकी मृत्यु के बाद उसके प्यारे मित्र ने उसके अधूरे सभी कार्यों को समाप्त किया। एंगिल्स ने ही 'केपिटल' के दूसरे और तीसरे भागों को पूर्ण किया था।

कार्ल मार्क्स ने अपने बाद भी समानता का एक प्रत्यक्ष उदाहरण छोड़ा है। लन्दन की हाईगेट-सेमेटरी (कब्रिस्तान) में उसकी पत्नी और उसके स्वामिभक्त सेवक की कब्र के पास ही उसकी भी कब्र बनी हुई है।
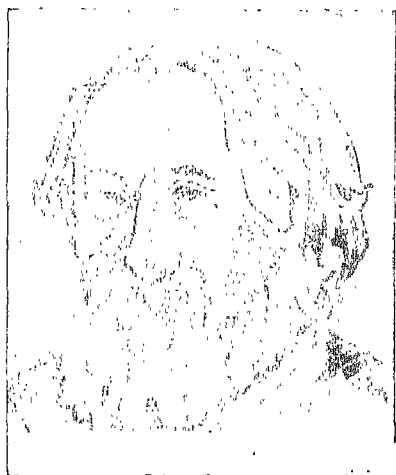
तुर्गनेव

(१८१८–१८८३ ई०)

गोगल की मृत्यु पर तुर्गनेव ने एक समवेदना-पूर्ण लेख प्रकाशित किया था। इसके कारण जार की सरकार द्वारा उसे आज्ञा मिली कि वह केवल अपनी जमींदारी में ही निर्वासित रहेगा और किसी भी दूसरे स्थान पर नहीं जा सकेगा। उसके प्रति कड़ा नियंत्रण लगा।

तुर्गनेव एक धनी कुल में उत्पन्न हुआ था। उसकी शिक्षा मास्को, सेण्ट पीटर्सबर्ग और बर्लिन में हुई थी। शिक्षा समाप्त करने पर एक वर्ष सरकारी विभाग में कार्य करने के पश्चात् वह सदैव के लिए नौकरी से अलग हो गया। वह स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति था, इसलिए किसी भी बन्धन में रहना उसके लिए कठिन था।

तुर्गनेव एक भावुक कवि था। १८४३ ई० में उसकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ था। उसका गद्य भी काव्यमय है। उसकी प्रथम गद्य-रचना १८४६ ई० में 'ए स्पोर्टस्मैन्स् स्केचेज' प्रकाशित हुई। इसमें ग्रामीण जीवन के छोटे-छोटे शब्द-चित्र हैं। पुस्तक का शीर्षक भी सेन्सर की कड़ी दृष्टि से बचने के लिए भ्रमपूर्ण रखा गया था। तुर्गनेव की प्रतिभा का पूर्ण विकास उसकी प्रथम कृति में झलकता है। लेखक की यह रचना दास-प्रथा के विरोध में प्रस्तुत हुई थी। लेखक ने उन पात्रों का जीवनचित्र केवल उपस्थित किया है, जो अपने मालिकों द्वारा त्रस्त थे और उन मालिकों के जीवनचित्रों का अंकन किया है जो अपनी तुच्छता

के कारण अत्यन्त निकृष्ट व्यक्ति थे। इन शब्द-चित्रों में मानव-चरित्रों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का वर्णन वास्तविक रूप में हुआ है और साथ ही प्रकृति का वर्णन भी आकर्षक और सुन्दर हुआ है।

जब कोई मानव-समस्या तुर्गनेव के मस्तिष्क में चक्कर काटती थी तब वह उस पर तर्क नहीं करता था, वह केवल आकृति और दृश्यों में उसे प्रस्तुत करता था।

लेखक किसी जटिल समस्या पर जब वार्तालाप करता, उस समय भी वह केवल ऐसे शब्द-चित्रों को सम्मुख रखता, जो कभी विस्मृत नहीं होते थे। यही प्रणाली उसकी रचनाओं में भी दिखाई पड़ती है। उसके उपन्यासों में स्त्री-पुरुष अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होते हैं।

तुर्गनेव के उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटिके हैं। वह अपने युग का सबसे बड़ा उपन्यास-लेखक था। उसके दर्शन और विषाद के सम्बन्ध में विद्वान् आलोचक जार्ज ब्रान्डेस् ने ठीक लिखा है—'तुर्गनेव के मस्तिष्क में उदासीनता की एक गहरी धारा बहती थी और यही कारण है कि उसकी समस्त कृतियों में वही धारा दिखाई पड़ती है। तुर्गनेव के उपन्यासों में उसका अपना व्यक्तित्व झलकता है और उसका यह व्यक्तित्व निश्चय ही विषादमय है। गोगल की उदासीनता निराशा-पूर्ण है, डोस्टोएईव्स्की उसी भाव को जब व्यक्त करता है, तब उसके पद-दलित और पापी पात्रों के प्रति उसका हृदय उमड़ पड़ता है। टाल्स-टाय की उदासीनता भाग्यवाद के धार्मिक रूप में प्रकट होती है। अकेले तुर्गनेव ही एक दार्शनिक है। वह मनुष्य के प्रति प्रेम रखता है।'

जार निकोलस प्रथम का शासन-काल रूस के इतिहास में अन्धकार-पूर्ण वर्ष थे। प्रतिभावान् व्यक्ति प्रायः निराश होकर अपना जीवन काट रहे थे। लेखकों का जीवन दुःखमय था। जब किसी लेखक ने शासन और शासक के प्रति तनिक भी स्वर उच्च किया, तत्काल वह कठिन कारावास का यात्री बन जाता। रूसी लेखकों की रचनाओं में जीवन के प्रति उदा-सीनता का मुख्य कारण यही था।

तुर्गनेव-जैसे, सम्पन्न कुल में उत्पन्न होनेवाले, कलाकार को गुलामी-प्रथा का विरोध करने के कारण सबसे संसर्ग छोड़कर अपनी जमींदारी में एकान्त-वास करना पड़ा। मूल रहस्य तो उसकी विद्रोही भावनाएँ थीं, किन्तु गोगल के सम्बन्ध में लिखे हुए एक लेख पर उसे इतना भीषण दण्ड मिला। १८५२ से १८५५ ई० तक उसका समय निर्वासन में ही

व्यतीत हुआ। इसके बाद शेष जीवन रूस से हटकर विदेश में ही उसे काटना पड़ा।

तुर्गनेव ने विदेश में रहकर रूसी साहित्य को लोकप्रिय बनाया। उसके प्रयत्न से सभी प्रमुख रूसी लेखकों की कृतियों का अनुवाद योरोप की अन्य भाषाओं में हुआ। उसकी अपनी रचनाओं का भी योरोप में खूब प्रचार हुआ। तुर्गनेव के जीवन-काल में ही उसका विशेष सम्मान हुआ। वह पेरिस में एक साहित्यिक महारथी के रूप में निवास करता था।

फ्रांस के प्रमुख लेखक फ्लौबेयर, मुपासाँ, जार्ज सैण्ड, गोंकुर आदि से उसकी घनिष्ठता थी। पेरिस में उसके यहाँ सदैव साहित्यिकों का जमघट लगा रहता था। आपस में मतभेद होने पर तुर्गनेव का निर्णय ही सबको मान्य होता था।

तुर्गनेव के उपन्यासों की विशेषता यह है कि उनमें कथा-वस्तु को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है, उनमें स्वाभाविक गति से पात्र अपने चरित्र को स्वयं स्पष्ट करते हैं। चरित्र-चित्रण ही लेखक का मूल उद्देश्य है। लेखक ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि आरम्भ में वह किसी पात्र को जब देखता था तो उसकी पूर्ण आकृति अपने मस्तिष्क में स्थिर कर लेता था। फिर धीरे-धीरे वह पात्र खुद ही अपना चरित्र स्पष्ट करता जाता था। उसके चरित्र के विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि दूसरे पात्रों के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित कर उन पर प्रकाश डाला जाय।

तुर्गनेव के चरित्र-प्रधान उपन्यासों के महत्त्व को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसके छः उपन्यासों का पढ़ना आवश्यक है। इन उपन्यासों का शीर्षक इस तरह है—रुडिन, लीजा, ऑन दी ईव, फादर एण्ड सन्स, स्मोक और वर्जिन सोयल।

इन उपन्यासों में कवि की प्रतिभा की सम्पूर्ण शक्ति दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त उस समय (१८४८ से १८७६ ई०) रूस में बुद्धिजीवियों के जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। रूस के विकास के इस काल में उसके उन्नत विचारों के प्रतिनिधियों के प्रति लेखक का भाव प्रकट होता है।

रुडिन उपन्यास में लेखक ने एक ऐसी श्रेणी के पात्र को अंकित किया है जो उस समय निकोलस प्रथम के राज्यकाल में शिथिल जीवन व्यतीत कर रहा था। अपने इस पात्र के अनेक अवगुणों के साथ भी उसके प्रति लेखक की सहानुभूति है।

रुडिन प्रथम बार एक शिक्षित महिला के घर पर दिखाई पड़ता है।

इस महिला के यहाँ विशिष्ट पुरुषों का सदैव आगमन होता है। वह क्रान्तिकारी विचारों के प्रति सहानुभूति रखती है और सेन्सर द्वारा वर्जित पुस्तकें पढ़ती है। रुडिन बड़ी कुशलता से बातें करता है और सभी को मुग्ध कर लेता है। जब वह स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र विचार के सम्बन्ध में बोलने लगता है तब उसके शब्द ज्वलन्त और काव्यमय हो उठते हैं। उस महिला की एक पुत्री नटाशा, रुडिन को प्यार करने लगती है।

रुडिन, नटाशा से अवस्था में बड़ी है। प्रेम की चर्चा उसके लिए एक विगत कहानी है। वह कहता है—उस सिंदूर वृक्ष को देखो। पिछले बसन्त की पत्तियाँ अब तक उसे घेरे हैं और जब तक नवीन पत्तियाँ नहीं प्रकट होंगी तब तक वे मुरझाकर नहीं गिरेंगी।

नटाशा इसका अर्थ यह समझती है कि रुडिन का पिछला प्रेम तभी मुरझायेगा जब नवीन प्रेमिका उसका स्थान ग्रहण करेगी। नटाशा अपना प्रेम उसे अर्पित करती है। वह एक छाया की भाँति सदैव उसके साथ रहने के लिए प्रस्तुत होती है। लेकिन रुडिन का प्रेम हृदय में नहीं मस्तिष्क में निवास करता है। वह असम्भव समझता है कि नटाशा की माँ दोनों के विवाह के लिए आज्ञा देगी। नटाशा सब बन्धन तोड़कर बिना किसी की आज्ञा प्राप्त किये हुए भी रुडिन को सर्वस्व समर्पण करती है और पूछती है—अब क्या किया जाय ?

'अलग होना'—रुडिन ने उत्तर दिया। जो पात्र अपने वार्तालाप में कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रस्तुत था, वही पहली ही घटना के कारण विचलित हो जाता है। केवल लम्बी-चौड़ी बातें करना ही ऐसे पात्रों की विशेषता है, वे कर्तव्य से सदैव विमुख रहा करते हैं।

रुडिन एक बार फिर दिखाई पड़ता है। वह उस समय तक किसी कार्य में नहीं लगा था। वह दरिद्रावस्था में भटकता रहा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर निर्वासित होता रहा। अन्त में पेरिस के एक विद्रोह में उसकी मृत्यु होती है।

'लीजा' उपन्यास में लीजा एक ऐसे व्यक्ति को प्यार करती है, जिसका विवाह हो गया था। वह अपनी पत्नी से दुःखित था और यह समझता था कि दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई है, किन्तु एकाएक वह प्रकट होती है। लीजा बीमार होकर अलग होती है। इस उपन्यास में लेखक ने बड़ी निपुणता से पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। लीजा का चरित्र त्यागमय और सरल है।

'ऑन दी ईव' उपन्यास में लेखक ने हेलन के रूप में उस श्रेणी की

एक स्त्री का चित्रण किया है, जो रूस के उत्थान में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। हेलन अपने घर में सन्तुष्ट नहीं रहती। वह अपने जीवन का उपयोग अच्छे कार्यों में करना चाहती है। कुछ समय के बाद इनसारोफ नाम के एक बलगेरिया के निवासी युवक पर हेलन आकर्षित होती है। इनसारोफ दार्शनिक विचारों की उदासीनता में लीन नहीं रहता। वह अपने देश को स्वतन्त्र करने के उद्योग में दृढ़ रहता है और वीरतापूर्वक कार्य करता है। उसे जब विश्वास होता है कि वह हेलन पर आसक्त है, तब वह मास्को छोड़ देना चाहता है। वह हेलन के घर जाता है और अपने निश्चय की उसे सूचना देता है। हेलन दूसरे दिन जाने के पहले एकबार भेंट कर लेने का आग्रह करती है, लेकिन वह वचन नहीं देता है।

हेलन उसकी प्रतीक्षा करती है; किन्तु वह आता नहीं है। हेलन उसकी खोज में निकलती है। वर्षा और गड़गड़ाहट के कारण हेलन एक गिरजा-घर में जाती है। वहीं इनसारोफ से भेंट होती है। दोनों की आपस में बातें होती हैं। इनसारोफ को विश्वास होता है कि हेलन को अपनाकर उसकी शक्ति दूनी हो जायगी। वह हेलन को भगवान् और मनुष्य के सम्मुख अपनी पत्नी स्वीकार करता है।

हेलन का चरित्र बड़ा उज्ज्वल है। उसके रूप में उस श्रेणी की एक नारी का दर्शन होता है जो आगे चलकर रूस की स्वतन्त्रता और दुःखी जनता की सहायता में पूर्ण भाग लेती है, जिसे कठोर कारावास और भयानक कष्ट कभी विचलित नहीं कर सकता।

तुर्गनेव के उपन्यासों में 'फादर एण्ड सन्स्' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस उपन्यास में एक क्रान्तिकारी बाजरोफ का चरित्र अत्यन्त आकर्षक चित्रित हुआ है। इसमें पुरानी और नवीन पीढ़ी के लोगों की मनोवृत्तियों का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक रूप में हुआ है। बाजरोफ निहिलिस्ट विचारों का युवक है। वह डाक्टरी की शिक्षा समाप्त कर अपने मित्र आरकेडी के साथ उसके घर देहात जाता है। आरकेडी की छोटी बहन कत्या से उसका प्रेम हो जाता है। बाजरोफ अपने पिता के घर वापस आता है। कुछ समय बाद एक शव का पोस्टमार्टम करते समय कीटाणुओं से वह न बच सका और अन्त में छूत के कारण उसकी मृत्यु हुई।

इस उपन्यास के कारण दोनों ओर से विरोध हुआ। पुराने लोग कहते कि लेखक स्वयं निहिलिस्ट विचारों का व्यक्ति है और युवकों का मत था कि लेखक ने बाजरोफ के साथ अन्याय किया है।

तुर्गनेव ने इस सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट किया है। उसने लिखा था कि मेरे इस उपन्यास में महाकुलीनता के प्रति विरोध है। बाजरोफ का चरित्र-चित्रण मेरे समस्त उपन्यासों में विशिष्ट है। उसके प्रति मेरी सहानुभूति है और मैं स्वयं उससे प्रेम करता हूँ; लेकिन यदि पाठक उससे प्रभावित नहीं होते तो इसमें मेरी त्रुटि है। यदि मैं बाजरोफ में अधिक मिठास भर देता तो निश्चय ही रूसी युवक मुझसे सन्तुष्ट होते, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया।

वास्तव में तुर्गनेव सत्य का पक्षपाती था। वह किसी को प्रसन्न करने के लिए अपने सिद्धान्त से कभी विमुख नहीं हो सकता था। वह जिस पात्र का रूप जैसा देखता था वैसा ही उसका चित्रण करता था। उसका विश्वास था कि पात्र का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करने में लेखक को उसके अच्छे और खराब दोनों पक्षों को दिखाना आवश्यक होता है।

तुर्गनेव अपने पात्रों के क्रम-विकास का लेखा उसी तरह रखता था, जैसे पुलिसवाले अपराधी का 'हिस्ट्रीशीट' रखते हैं अथवा गुप्तचर किसी विद्रोही राजनीतिक व्यक्ति के लिए अपनी डायरी भरते हैं।

'स्मोक' उपन्यास में लेखक ने रूसी समाज की, शक्तिशाली श्रेणी की, एक महिला का कलापूर्ण विवरण दिया है। 'वर्जिन सॉयल' में तुर्गनेव ने 'जनता की ओर' वाले आन्दोलन का वर्णन किया है, जो १८७० ई० में आरम्भ हुआ था। तुर्गनेव के उपन्यासों को पढ़ने पर वास्तविक पात्रों के साथ उस समय के रूस की स्थिति का भी अनुभव होता है।

जीवन के पिछले दिनों में क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति तुर्गनेव की सहानुभूति थी। मरने के कुछ मास पूर्व उसका उपन्यास 'ओन दी थ्रेस-होल्ड' प्रकाशित हुआ था। इसमें उन महिलाओं की गाथा है, जिन्होंने क्रान्तिकारी-आन्दोलन के प्रति अपना जीवन समर्पित किया था।

तुर्गनेव के अन्तिम कुछ वर्ष बहुत कष्ट में व्यतीत हुए। डाक्टरों ने गठिया का निदान किया; किन्तु उसकी रीढ़ की हड्डी में केन्सर था। वह कोच पर ही पड़ा दिन काट रहा था। उसके अन्तिम काल के पत्र बड़े कारुणिक और उल्लासमय दोनों ही हैं।

तुर्गनेव ने अपने जीवन-काल में अनेक उपन्यास, काव्य-ग्रन्थ और कहानियों की रचना की थी। रुग्णावस्था में भी वह अपनी अधूरी पुस्तकों को पूर्ण करना चाहता था; किन्तु विधाता की आज्ञा नहीं थी।
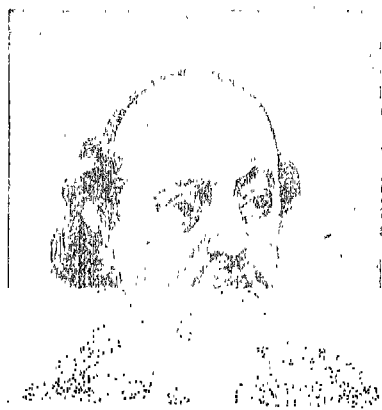
गुस्तेव फ्लोबेयर

(१८२१–१८८० ई०)

फ्लोबेयर उन कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ था, जिन्होंने किसी भी वस्तु का वर्णन तटस्थ और यथार्थ रूप में किया था। उसकी भाषा में एक ही गति, ताल या शैली नहीं दिखाई पड़ती है। पग-पग पर वह बदलती रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि फ्लोबेयर जो कुछ लिखता था, बड़े परिश्रम से धीरे-धीरे लिखता था। यह इसलिए नहीं कि उसे उपयुक्त शब्द नहीं मिलते थे, अपितु इसलिए कि जीवन भर वह रोमानी और यथार्थ साहित्य में फँसा रहा। वह स्वयं कुछ स्थिर न कर पाया कि वह किस ओर जाय।

फ्लोबेयर का जन्म फ्रांस के रुआँ नगर में हुआ था। वह नगर के प्रधान सर्जन का पुत्र था। माता की ओर से वह नोरमेंडी के एक कुलीन वंश का था। फ्लोबेयर की माँ अपने उच्च वंश पर गर्व करती थी और उसने अपने पुत्र में भी वही गर्व भर दिया, जिससे फ्लोबेयर जनसाधारण के लिए सदैव घृणा का भाव बनाये रहता था। माता की ममता के कारण बचपन से ही फ्लोबेयर बिगाड़ दिया गया था। आठ वर्ष की अवस्था तक वह किसी स्कूल में पढ़ने के लिए नहीं भेजा गया। घर पर ही उसकी शिक्षा होती रही। नौ वर्ष की अवस्था में ही गेटे और बायरन की रचनाओं को पढ़ने के बाद उसने लेखक बनने का निश्चय कर लिया था। स्कूल जाने पर वह अपनी पढ़ाई पर ध्यान न देकर उपन्यास और कविता में ही व्यस्त रहने लगा। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने एक नाटक लिखा, जिसमें बायरन का रेखा-चित्र अंकित किया गया था।

छोटी अवस्था में ही उसके हृदय में घृणा की भावनाएँ जागरित हो गई थीं। वह अपने पिता के यहाँ आये हुए रोगियों की बातें बड़े ध्यान से सुनता था। अल्पावस्था में ही वह भयंकरता, आश्चर्य और दूषित मनोवृत्तियों की ओर प्रवृत्त हुआ। तेरह वर्ष की अवस्था में उसका सर्वप्रथम प्रेम एक अंग्रेज युवती से हुआ। इसके बाद एक-एक कर इतनी स्त्रियाँ उसके सम्मुख आईं कि उन सबका विवरण देना व्यर्थ है। अपनी एक प्रेमिका को पत्र में उसने लिखा था——यदि मैं तुम्हें प्रतिदिन देखूँ तो सम्भवतः तुमसे कम प्रेम करने लगूँ। तुम मेरे हृदय के अन्तःकोष्ठों में रहती हो और रविवार को वहाँ से निकलती हो।

फ्लोबेयर की प्रकृति बड़ी विचित्र थी। वह जीवन भर अविवाहित ही रहा। अपने चरित्र से अरुचि होने के कारण उसने 'मादाम बोवारी' उपन्यास की रचना की थी।

१८४० ई० में फ्लोबेयर के पिता ने उसे कानून पढ़ने के लिए पेरिस भेजा था। पाँच वर्ष अध्ययन के पश्चात् वह फिर सब कुछ छोड़कर साहित्य-रचना में लग गया। १८४५ ई० में अपनी विधवा माता के साथ वह रुआँ के पास क्र्वासे नगर के एक पुराने मकान में रहने लगा। जीवन के अन्त तक वह यहीं रहा। कभी-कभी अपने मित्रों, तुर्गनेव, बोर्दे, रनां, तेन, गोंकुर, जोला, गोत्ये से मिलने वह पेरिस जाया करता था।

युवावस्था में फ्लोबेयर एक प्रकार के मस्तिष्क रोग से पीड़ित था। इसी कारण उसकी प्रतिभा का विकास बाद में हुआ। उसके लिखे हुए पत्रों का अध्ययन करने पर कभी-कभी वह एक सनकी-सा दिखाई पड़ता है। जैसे——मैं चाहता हूँ कि इस सृष्टि को नष्ट कर दूँ और फिर शून्य में लय हो जाऊँ, मैं जलती हुई हड्डियों के कड़कड़ाने का शब्द सुनना चाहता हूँ, शव से भरी नदियों को पार करना चाहता हूँ, घुटने टेके हुए राष्ट्रों को कुचलकर रौंदकर, जाना चाहता हूँ; मैं चंगेज खां, तैमूर लंग और निरो होना चाहता हूँ।

उन्नीसवीं शताब्दी में लेखकों में यह भावना व्याप्त थी कि लेखक या कलाकार होना ही जीवन का एकमात्र मूल्यवान् उद्देश्य है। फ्लोबेयर भी इस भ्रान्ति का शिकार था। वह लेखक और कलाकारों को छोड़कर सभी लोगों पर व्यंग्य कसा करता था। आरम्भ से अन्त तक के अपने पत्रों में वह निरन्तर लेखकों के महत्व पर लिखता रहा। अपनी वृद्धावस्था में भी उसने जार्ज सेंड को इस प्रकार लिखा——'हम, केवल हम ही अर्थात्

साहित्यकार, हम ही वास्तविक जनता हैं। हम ही मानवता की वास्तविक परम्परा हैं।' इसी पत्र में वह अपने दूसरे मन्तव्यों को भी स्पष्ट करता है —'बुर्ज्वा लोगों से घृणा करना ही सद्गुण का आरम्भ है।' यहां बुर्ज्वा से अभिप्राय स्त्री पुरुष दोनों से है।

फ्लोबेयर की लिखी 'मादाम बोवारी' 'सेंटिमेंटल एजुकेशन' और अपूर्ण 'बुवार और पेकुशे' ये सभी रचनाएँ एक असन्तुष्ट व्यक्ति की प्रतिहिंसा मात्र हैं, एक ऐसे व्यक्ति की, जिसने जीवन से बहुत कुछ आशा की और जब उसकी रोमानी आशा के अनुकूल बातें नहीं हुईं तब वह प्रतिहिंसा के लिए प्रस्तुत हो गया। फ्लोबेयर के तथाकथित वस्तु-परक उपन्यासों का रहस्य तभी खुलता है, जब उसकी युवावस्था की घटनाओं का हम अध्ययन करते हैं। उसने अपनी भावनाओं से संघर्ष किया था और अपनी प्रवृत्तियों को कुचलने की चेष्टा की थी।

'मादाम बोवारी' लिखने में फ्लोबेयर का सात वर्ष का समय लगा; क्योंकि उसने एक कृत्रिम वस्तु ले ली थी, जिसे पूर्ण करने के लिए उसे निरन्तर अपने आपसे संघर्ष करना पड़ा। 'मादाम बोवारी' असुखी वैवाहिक जीवन की कहानी है, जिसका अन्त आत्महत्या द्वारा होता है।

'टेमटेशन आव् सेण्ट एन्थोनी' फ्लोबेयर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें एक तपस्वी के पतन और उत्थान का मार्मिक वर्णन है। लेखक ने आरम्भ में उसकी जो रचना की थी, बीस वर्ष बाद उसमें इतना परिवर्तन कर दिया कि उसका स्वरूप ही बदल गया। इस पुस्तक का परिवर्तित रूप ही कला की दृष्टि से उच्च कोटि का माना गया है। फ्लोबेयर की यह एक विशेष प्रकृति थी कि वह अपनी रचनाओं से कभी सन्तुष्ट नहीं होता था। जितनी बार प्रूफ अथवा संशोधन करना पड़ता, वह इतना परिवर्तन कर देता कि रचनाओं का एक नया स्वरूप ही हो जाता था। फ्लोबेयर ने सेण्ट एन्थोनी का चरित्र इतनी कुशलता से चित्रित किया है कि पढ़ते समय वह आँखों के सम्मुख आ जाता है। इसमें लेखक के कवि-हृदय की रंगामेजी का अपूर्व चित्रण है।

फ्लोबेयर की एक कहानी 'सेंटिमेंटल एजुकेशन' में एक सरलहृदय स्त्री की कोमल भावनाओं का दर्शन होता है। यह कहानी बड़ी आकर्षक है और इसमें लेखक की विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

फ्लोबेयर अपनी पुस्तकों पर घोर परिश्रम करता था। १८५८ ई० में वह प्राचीन कार्थेज के स्थल पर निरीक्षण के लिए तुनिस गया था। उन दिनों वह अपने उपन्यास 'सालाम्बो' के लिए सामग्री एकत्र कर रहा था।

बालजाक के बाद फ्लोबेयर का फ्रेंच उपन्यास-साहित्य में दूसरा स्थान माना जाता है। फ्लोबेयर यथार्थवादी संप्रदाय का पथ-प्रदर्शक और अपने युग का प्रकाण्ड विद्वान् था। वह अपनी शैली के लिए अमर है।
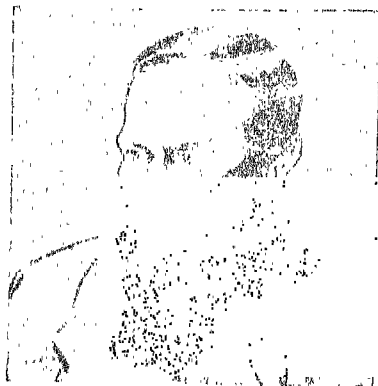
डौस्टोएईव्स्की

(१८२१-१८८१ ई०)

अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में डौस्टोएईव्स्की ने जार के विरुद्ध षड्यंत्र में भाग लिया था। वह क्रान्ति द्वारा जार के शासन को उलटकर गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। पुलिस ने भेद खोल दिया और डौस्टोएई-व्स्की को गोली से उड़ा देने की आज्ञा मिली। मृत्यु के अन्तिम क्षण में जार की आज्ञा मिली कि वह आजन्म कारावास का दण्ड भोगेगा।

डौस्टोएईव्स्की का पिता मास्को में गरीबों के एक अस्पताल का डाक्टर था। बचपन से ही डौस्टोएईव्स्की को निरीहों और रोगियों की हृदयविदारक स्थिति के देखने का अवसर मिला था। वह अस्पताल के उन रोगियों को देखता, उनकी बातें सुनता और उनके प्रति सहानुभूति रखता। उसके पिता का कठोर शासन था। वह अपने पुत्र को घर से बाहर नहीं निकलने देता, अन्य बालकों के साथ खेलने की भी उसे आज्ञा नहीं थी। इसलिए सोलह वर्ष की अवस्था में जब उसने पीटर्सबर्ग के इंजिनियरिंग स्कूल में प्रवेश किया, उस समय उसके शिक्षक और सहपाठी उसे गँवार ही समझते रहे।

डौस्टोएईव्स्की स्वप्नों के संसार में विचरण करता था। वह पुस्तकों

के अध्ययन और मनन में ही अपना समय व्यतीत करता था। कारण, उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह सामाजिक आमोद-प्रमोद में सम्मिलित हो सकता।

एक दिन डौस्टोएईव्स्की को एक पत्र मिला, जिसमें उसके पिता की दुःखद मृत्यु का समाचार था। उसके पिता की एक छोटी सी जमींदारी थी। वहीं वह लगान वसूल करने गया था, मार्ग में एक गाड़ी पर जाते हुए कुछ कृषक दासों ने मिलकर उसकी हत्या की थी। उसकी कठोरता के कारण ही गाँव के लोगों का उस पर सम्मिलित आक्रमण हुआ था। डौस्टोएईव्स्की के ऊपर इस घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि पिता की हत्या का समाचार पढ़ते ही उसे मूर्छा आ गई। उसे मृगी का रोग भी था।

अब, असहाय अवस्था में, उसे अपने जीवन-निर्वाह का साधन उपलब्ध करना आवश्यक था। अतएव कुछ समय बाद सरकारी इंजिनियरिंग-विभाग में उसकी नियुक्ति हुई। इस कार्य में मन न लगने पर भी जीविका के लिए बाध्य होकर उसे काम करना पड़ता था। दिन का कार्य समाप्त कर रात्रि में वह शिलर, गेटे, बालजाक और रासीन की रचनाएँ पढ़ता था।

वह अपनी लेखनी द्वारा अपनी जीविका उपार्जित करने का स्वप्न देख रहा था। उसने अपने जीवन के उलझे विचारों को अपनी लेखनी से लिखना आरम्भ किया। उसे युवावस्था में घोर कष्ट और आपत्तियों का सामना करना पड़ा था। वह मानव स्वभाव के अध्ययन में अग्रसर हुआ। दरिद्रों के प्रति उसकी सहानुभूति थी। वह उनसे बातें करता, उनके जीवन की रहस्यमयी बातों का पता लगाता। निरीह और अभागे लोगों से बाल्यकाल में ही वह परिचित हो चुका था। अस्पताल में ऐसे लोगों से वह दिल खोलकर बातें किया करता था।

डौस्टोएईव्स्की अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर चुका था। उसका आरम्भिक कार्य एक पुस्तक का अनुवाद था जो एक प्रकाशन-संस्था के लिए किया गया था। इसके साथ ही वह उस युग के कुछ महान् लेखकों—तुर्गनेव, सोलोगब, टालस्टाय आदि के—संसर्ग में आया। उसका प्रथम उपन्यास 'पूअर फोक्स्' गोगल का अनुकरण था। इस उपन्यास की सफलता और प्रचार देखकर कुछ लेखकों को ईर्ष्या हुई। तुर्गनेव तक ने डौस्टोएईव्स्की के विरोध में एक कविता प्रकाशित की थी।

डौस्टोएईव्स्की का विश्वास था कि जुआ में धन प्राप्त कर, अपनी स्थिति का वह सुधार कर सकेगा, इसलिए जुआ खेलने की प्रवृत्ति उसकी

निरन्तर बढ़ती ही गई और इसके कारण उसे भयानक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

उन दिनों रूस में जार का अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जनता त्रस्त थी। शिक्षित समाज भी विलासिता में लीन था। कुछ नवयुवक विद्रोह की भावना जागरित कर रहे थे। डौस्टोएईव्स्की ने ऐसे एक दल का संगठन किया। अन्त में उसे साइबेरिया का निर्वासन हुआ। साइबेरिया का जीवन मृत्यु से भी भयानक था। एक बन्दी निर्वासन का समाचार सुनकर पागल हो गया। दूसरा कहने लगा—'इससे कहीं अच्छा होता यदि मैं गोली से उड़ा दिया जाता।' इस तरह के जीवन में डौस्टोएईव्स्की को पदार्पण करना पड़ा।

क्रिसमस की सन्ध्या के समय बन्दियों का दल पिटर-पाल-किले के बन्दीगृह से साइबेरिया के लिए जानेवाली ट्रेन पकड़ने जा रहा था। हथकड़ी बेड़ी से जकड़ा हुआ डौस्टोएईव्स्की भी उसी दल में चला जा रहा था। मार्ग में एक महिला ने उसे बाइबिल की एक पुस्तक भेंट की। बाद में पुस्तक को पढ़ते समय उसमें उसे पचीस रूबल का एक नोट भी मिला था।

खूनी, पतित और अपराधियों के साथ में मानवता की मंगल-कामना करने वाले लेखक को भी वही दण्ड प्राप्त हो, यह विचार डौस्टोएईव्स्की के मस्तिष्क में व्याप्त था। उसने बड़ी सहनशीलता से कार्य किया। जो लेखक केवल लेखनी चलाता था, उसे दिन भर शारीरिक कठोर परिश्रम करना पड़ता था। चार वर्ष के कठिन परिश्रम से उसे मुक्ति मिली। फिर भी वह स्वतन्त्र नहीं हुआ था। एक सैनिक से एक उच्च सैनिक कर्मचारी के पद पर पहुंचने के बाद ही उसे छुटकारा मिलेगा। यही नियम था। उस जीवन का यथार्थ चित्रण लेखक ने अपनी 'दी हाउस आफ दी डेड' और 'क्राइम एण्ड पनिशमेंट' नामक पुस्तकों में किया है।

सैनिक जीवन में ही डौस्टोएईव्स्की एक विवाहित स्त्री पर आकर्षित हुआ। यह स्त्री उस कम्पनी के कप्तान की पत्नी थी, जिसमें वह काम करता था। डाक्टरों ने डौस्टोएईव्स्की को आदेश दिया था कि जिस रोग में वह ग्रस्त है, अवस्था ढलने पर उसका परिणाम घातक होगा। यही कारण था कि डौस्टोएईव्स्की विवाह के बन्धन में नहीं पड़ना चाहता था। लगभग तीस वर्ष की अवस्था में पहली बार वह इस स्त्री के ऊपर आसक्त हुआ। बाद में, कप्तान की मृत्यु के पश्चात्, डौस्टोएईव्स्की ने उसकी

पत्नी से अपना विवाह किया। उस स्त्री की दयनीय और असहाय अवस्था के कारण ही बाध्य होकर उसे यह सम्बन्ध करना पड़ा था। आगे चलकर उसका यह वैवाहिक जीवन अत्यन्त कलह और वेदनापूर्ण बना।

डौस्टोएईव्स्की की पत्नी पहले ही रोगिणी थी। दिन पर दिन बीतने लगे और उसका क्षयी का रोग भीषण रूप धारण करता गया। जीवन अत्यन्त वेदना के अन्धकार में छिपा हुआ था। साहसी लेखक पत्नी की शय्या के समीप बैठकर अपने साहित्य का निर्माण करता रहा। अन्त में अनेक कटु शब्दों और दुर्व्यवहारों का प्रयोग कर उसकी पत्नी मेरिया चल बसी।

साइबेरिया के निर्वासन से वह मुक्त हो चुका था। जीवन में स्वतंत्रता-पूर्वक चलने का मार्ग उसे दिखाई पड़ा। कटु अनुभवों ने उसका मार्ग-प्रदर्शन किया। उसके विचारों में परिवर्तन हुआ। अब क्रान्ति द्वारा शासन उलटने की उसकी धारणा बदल गई। उसका विश्वास हुआ कि एक शक्तिशाली मानव प्रकट होगा और वही उचित मार्ग-प्रदर्शन करता हुआ मानवता की रक्षा करेगा।

जर्मन दार्शनिक नित्जे ने लिखा है कि केवल डौस्टोएईव्स्की ही एक ऐसा मनोवैज्ञानिक लेखक है, जिसकी रचनाओं से मैंने शिक्षा ग्रहण की है।

डौस्टोएईव्स्की के उपन्यास बड़े कारुणिक हैं। उनमें मानव-जीवन की दुःखद घटनाओं का वर्णन है; लेकिन कभी दुःखद वातावरण में भी उसके पात्र व्यंग्य और हास्य करते हैं। उसके चित्रित पात्र भूले नहीं जा सकते।

मेरिया की मृत्यु के पश्चात् वह सदैव अपने नवीन उपन्यासों में व्यस्त रहा करता था। उसकी भावनाओं को लिखने के लिए एक टाइपिस्ट और स्टेनोग्राफर की आवश्यकता पड़ी। उसने एक पत्र में विज्ञापन प्रकाशित कराया। दूसरे दिन एना ग्रोवेना नाम की एक सुन्दर युवती उसके सम्मुख आई। वह शिक्षित और प्रसन्नचित्त थी। प्रतिदिन वह बोलता जाता और वह लिखती रहती। अन्त में पाँच महीने बाद लेखक ने उसे अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया। उनका पारिवारिक जीवन शान्त और सुखी बना। एना ग्रोवेना को एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। डौस्टोएईव्स्की की पत्नी ने जो अपनी आत्म-कहानी लिखी है, वह निस्सन्देह उत्कृष्ट रचना है। उसमें प्रेम और सद्भावनाओं का अपूर्व मिश्रण है। उसकी पुत्री ने डौस्टोएईव्स्की का सबसे सुन्दर और प्रामाणिक जीवनचरित्र लिखा है। उसमें उसने बोलशेविकों के विरुद्ध विचार प्रकट किये हैं।

आज से पचीस वर्ष पहले मैंने डौस्टोएईव्स्की के उपन्यासों का

अध्ययन किया था, किन्तु आज भी उसके कई पात्र चिर-परिचित से प्रतीत होते हैं। 'ब्रदर्स करामाजोव' लेखक की सर्वोत्तम कृति है। संसार के दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में इसकी भी गणना है। इसमें लेखक अपनी कला को बड़ी कुशलता से प्रदर्शित करता है। लेखक ने अपने दार्शनिक और धार्मिक विचारों को पात्रों द्वारा व्यक्त किया है।

एक स्थान पर एक डाक्टर अपना विचार प्रकट करता है—मैं मानवता से प्रेम करता हूं, लेकिन मैं अपने प्रति आश्चर्य करता हूँ। मानवता के प्रति मेरा प्रेम जितना अधिक होता है, उतना व्यक्तिगत रूप से मानव के प्रति वह प्रेम शिथिल हो जाता है। कभी-कभी मैं मानवता के लिए कल्याणकारी सेवाओं की कल्पना करता हूँ। मैं अपने प्राण तक उत्सर्ग कर सकता हूं, यदि उसकी सहसा आवश्यकता पड़े; किन्तु ऐसे विचार होते हुए भी मैं किसी भी मनुष्य के साथ दो दिनों तक एक कमरे में नहीं रह सकता। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है। जैसे ही किसी व्यक्ति को म अपने समीप देखता हूं, मेरी स्वतन्त्रता में बाधा आ पड़ती है। चौबीस घण्टे के अन्दर मैं सबसे अच्छे आदमी के प्रति घृणा करने लगता हूं। जैसे मुझे वह आदमी भला नहीं लगता जो घण्टों भोजन में लगा देता है, दूसरा वह जो शीत लग जाने पर बार-बार अपनी नाक छिनकता है। मनुष्य जितना ही अधिक मेरे निकट आता है, उतना ही मैं उसके विरुद्ध हो जाता हूं। लेकिन सदैव ऐसा ही होता है कि जब व्यक्तिगत रूप से मैं मानव का तिरस्कार करता हूं, तब मानव के प्रति मेरा असीम प्रेम जागरित होता है।

डौस्टोएईव्स्की ने अपराधी, पापी और हत्यारों के प्रति भी प्रेम और सहानुभूति की भावनाओं को आश्रय दिया है। उसने भगवान् की सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों और सृष्टिकर्ता की निर्मित समस्त रचना और उसमें सिकता के एक-एक कण के प्रति प्रेम का संदेश दिया है।

जीवन के पिछले पहर में वह विचारों में लीन होकर मानव के सम्बन्ध में चिन्तन करता रहता था। उसे आश्चर्य होता था कि मनुष्य अपनी समस्त चतुराई में भी कितना मूर्ख रहता है। वह अपने निर्मित अपराधी, मूर्ख, सन्त और भोगी सभी पात्रों से उनकी रहस्यमय जीवन-पहेली का उत्तर माँगता था। वह मार्ग में चलते हुए नर-नारियों को बड़ी गूढ़ दृष्टि से देखता था, उनकी बातें सुनता था। उनकी निराश आकृति, उनकी फीकी हँसी और केवल उनके एक शब्द से लेखक के प्रश्नों का उत्तर मिल जाता था।

डौस्टोएईव्स्की ने अपने शराबी पिता के चरित्र के आधार पर ही 'करामाजोव बर्दस' उपन्यास में बूढ़े करामाजोव का चित्रण किया है जो अत्यन्त दुष्ट और नीच मनोवृत्ति का था। उसके अत्याचारों के कारण अन्त में कृषक-दासों ने उसकी हत्या की।

डौस्टोएईव्स्की का एक उपन्यास 'हाऊस आफ दी डेड' पढ़कर स्वयं सम्राट् जार की आँखों से आँसू छलक पड़े थे और उसने साइबेरिया में होनेवाले अन्याय में सुधार किया था।

डौस्टोएईव्स्की का संदेश था कि प्रत्येक मनुष्य के कार्य के लिए समस्त मानवता उत्तरदायी है और समस्त मानवता के कृत्य के लिए प्रत्येक मनुष्य उत्तरदाता है। जीवन का रहस्य यही नहीं है कि मनुष्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में उत्पन्न होता रहे; उसका महत्व इसी में है कि वह क्रूर से देवदूत के रूप में परिवर्तित हो जाय और पापी से बदलकर सन्त का रूप धारण करे।

सूर्यास्त का समय था। डौस्टोएईव्स्की बैठा हुआ था। सहसा उसके हाथ भीग गये थे। उसने देखा रक्त की लालिमा हाथों में छा गई थी। फेफड़े से खून गिरा था। 'जीवन से उपेक्षा करना उचित नहीं है और मृत्यु से भयभीत भी नहीं होना चाहिए।' उसके यही वाक्य उसके सम्मुख जैसे अंकित थे। 'यंत्रणा और वेदना द्वारा ही सत्य की उत्पत्ति होती है। यह समूची सृष्टि अन्धकार से प्रकाश में फैलती है।'

भगवान् में उसकी अटल भक्ति थी। दरिद्रों और दुखियों के हृदय-देवता को वह सम्मान मिला जो किसी सम्राट् को भी रूस में प्राप्त नहीं हुआ था। लाखों आदमी उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर एकत्र हो गये थे। उसकी अर्थी के साथ सभी वर्ग के लोग थे।

अर्थाभाव में केवल एक गिलास काफी पीकर साहित्य का निर्माण करने-वाले कलाकार का यह सम्मान! तेरी बलिहारी है मानव-जाति!!

इबसन

(१८२८–१९०६ ई०)

१९वीं शताब्दी में योरोप के नाटकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करने का श्रेय नार्वे के उद्भट नाटककार हैनरिक इबसन को ही प्राप्त है।

इबसन के पूर्वज सामुद्री बेड़े के अध्यक्ष थे। इन लोगों ने स्कॉच तथा जर्मन जाति की स्त्रियों से विवाह किये थे, अतः हैनरिक इबसन की नसों में कई जातियों के रक्त का मिश्रण विद्यमान था। इबसन की माता गंभीर तथा तटस्थ प्रकृति की महिला थी, अतः उसके संस्कार उसके पुत्र इबसन में भी आ गये थे। इधर इबसन के पिता की प्रकृति आनंदी और परिहास-प्रिय थी; किन्तु उसकी यह परिहास-प्रकृति कभी-कभी बड़ी कटु हो जाया करती थी। जिन लोगों से वह अप्रसन्न हो जाता था, उन्हें वह आड़े हाथों लेता था। अतः उसके परिवार के लोग तथा पड़ोसी भी उससे कुछ भयभीत से ही रहते थे। इबसन में पिता के संस्कार भी थोड़े-बहुत रूप में विद्यमान थे और उन्हीं सब संस्कारों से प्रेरित होकर उसने 'दी कॉमेडी आफ लव' और 'थंगमेन्स लीग' जैसे नाटकों की रचना की थी।

इबसन का जन्म नार्वे के दक्षिणी भाग में, स्कीन नामक नगर में, हुआ था। वह अपने माँ-बाप का प्रथम पुत्र था। उसका घर एक बाजार के बीच में था, जहाँ एक ओर गिरजाघर तथा दूसरी ओर दंडस्थान था। पास ही बंदीगृह, पागलखाना और टाउनहाल भी था। इस सब वातावरण का बालक इबसन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। गिरजाघर की पवित्रता, दंडस्थान की कठोरता, पागलखाने के भय इत्यादि ने उसे एक विचित्र गंभीर प्रकृति का बना दिया था। फिर भी उसके हृदय में प्रकृति के मनोरम स्थानों के प्रति आकर्षण विद्यमान था।

इबसन एक कुलीन वंश का व्यक्ति था। उसके घर के आस-पास जो लोग रहते थे, उनमें दो ही वर्ग थे। एक धनवान् कुलीनों का और दूसरा सामान्य लोगों का। ऐसी परिस्थिति में कुलीनता की भावना का कुछ अधिक उद्दीप्त हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। इबसन के स्वभाव में भी यही भावना व्याप्त हो गई थी। उसके वंशज धनवान् भी थे और कुलीन भी।

अपने वाक्-चातुर्य और मिलनसार स्वभाव के कारण इबसन बहुत से लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। जो लोग उसके यहाँ आते उनका वह खान-पान से पर्याप्त सत्कार करता था; किन्तु जब उसकी अवस्था आठ वर्ष की थी तब उसे बाध्य होकर अपनी इस उदारता को छोड़ देना पड़ा। उसके पिता का दिवाला निकल गया था और लोगों का हिसाब चुकाने के बाद उनके पास छोटी सी जमींदारी मात्र बच गई थी।

अपनी कौमार्यावस्था में भी वह अपनी असाधारण गंभीरता से लोगों का ध्यान आकर्षित कर लेता था। जब उसके चार छोटे भाई बहिन बाहर खेलते रहते, तब वह एक छोटे से कमरे में अपने आपको बन्द करके पुस्तकें पढ़ा करता था। चाहे जाड़ा हो चाहे गर्मी, सभी ऋतुओं में उसकी यही दिनचर्या थी। उसके भाई-बहिन इस दशा में उसे प्रायः तंग करते रहते थे। वे लोग उसके दरवाजे पर कंकड़ या बरफ के गोले बनाकर फेंका करते थे। इस पर वह बाहर निकल आता और अपने भाई बहनों को दूर तक खदेड़कर पुनः दरवाजा बन्द करके पढ़ने लगता था।

पुस्तकों के पश्चात् उसके मनोरंजन का साधन जादू के खेल थे। प्रायः किसी रविवार की संध्या को वह जादू के खेल दिखाने का आयोजन करता था। पड़ोसी लोग दर्शक बन जाते थे। एक बड़े संदूक के पीछे खड़ा होकर वह अपने खेलों को दिखाता रहता था। वह अपने छोटे भाई को संदूक के भीतर छिपा देता, इसके लिए वह पहले से ही अपने भाई को कुछ इनाम दे देता था। यही नहीं उसका छोटा भाई उससे प्रायः बहुत सी चीजें ले लिया करता था। वह कहता यदि तुम मुझे पर्याप्त पारितोषिक न दोगे तो मैं दर्शकों के सम्मुख तुम्हारा सब भेद खोल दूँगा। इस डर के कारण वह अपने भाई को सदैव संतुष्ट रखता था। इसमें संदेह नहीं कि उसके जादू के खेलों से लोगों का बड़ा ही मनोरंजन होता था।

इबसन का प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'कैटीलिना' है। इस नाटक में इबसन ने अपनी युवावस्था की भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त किया है। इस नाटक के प्रमुख पात्र की भावनाएँ वस्तुतः नाटककार की ही भावनाओं का प्रतिबिम्ब है।

एक बार इबसन ने अपनी बहिन से कहा था कि उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपनी कला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाना है।

बहिन ने कहा—और जब तुम अपने इस उद्देश्य में सफल हो जाओगे तब क्या करोगे?

उसने विश्वास के साथ उत्तर दिया—तब मेरे जीवन का अंत हो जायगा।

इबसन को 'केटीलिना' के प्रकाशन के लिए न तो कोई प्रकाशक मिला और न उसे खेलने के लिए कोई नाटक-मंडली ही तैयार हुई। मित्रों के उत्साह दिलाने से इबसन ने उसे स्वयं प्रकाशित किया; किन्तु उसकी केवल ३० प्रतियाँ बिकीं। एक दिन अर्थाभाव और भूखे पेट की यन्त्रणा से व्यथित होकर उसने गुदड़ीवाले के हाथ अपनी पुस्तक की सब प्रतियाँ बेच दीं। यह भी भाग्य की विडंबना है कि इबसन की पुस्तक इस प्रकार रद्दी कागजों के भाव में बिकी।

लगभग २० वर्ष की अवस्था में इबसन की कवित्व-शक्ति का भी पर्याप्त विकास हो गया था; परतु उसकी उस समय की कविता में नैराश्य, उदासीनता इत्यादि का रंग कुछ अधिक गहरा हो गया है। इबसन की यह निराशावादी मनोवृत्ति आगे चलकर उसकी रचनाओं में और भी अधिक आभासित होने लगती है। उसकी मनोवृत्ति केवल शुभ्र ज्योत्स्ना की रमणीयता में ही नहीं रमती, प्रत्युत भीषण झंझावात से युक्त किसी भयानक रात्रि की कालिमा भी उसे उतना ही आकर्षित करती है।

इबसन स्त्रियों के बीच में पहुँचकर बड़ा गंभीर हो जाता था। उसकी यह गंभीरता यद्यपि कुछ स्त्रियों को आश्चर्यान्वित भी करती थी; परन्तु अधिकांश स्त्रियाँ उसके इस स्वभाव के कारण तटस्थ ही रहा करती थीं।

१८६६ ई० में उसे नार्वे की पार्लियामेंट की ओर से, उसके लेखों और कृतियों के लिए, पेंशन मिलनी आरंभ हुई। यह एक पुरस्कार था जो उपर्युक्त पार्लियामेंट देश के ख्यातिप्राप्त लेखकों को प्रदान किया करती थी। जब इबसन को यह पारितोषिक प्रदान करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ तब कुछ लोगों ने इबसन का विरोध भी किया था। उनकी धारणा थी कि नार्वे के पादरियों और चर्च के विरोध में लिखनेवाले लेखक को यह पुरस्कार न मिलना चाहिए। परन्तु अंत में यह पुरस्कार इबसन को बहुमत से प्राप्त हुआ।

इबसन ने भ्रमण भी पर्याप्त किया था। वह रोम, ड्रेसडन, वियेना इत्यादि स्थानों में घूमता रहा। इस पुरस्कार के कारण तथा प्रकाशकों द्वारा अधिक धन मिलने से ही उसे भ्रमण की सुविधा मिली थी। १० वर्ष बाद पुनः वह अपने देश में कुछ महीनों के लिए लौटा। इबसन की ख्याति बढ़ जाने से अब नार्वे में भी उसके प्रति लोगों की श्रद्धा जागरित हो उठी थी। अतः अपने देश में उसका पूर्ण स्वागत हुआ।

इबसन अपनी पुस्तकों में बराबर संशोधन करता रहता था। उसकी लिखी हुई पुस्तकों के प्रथम संस्करण से द्वितीय संस्करण में इतना अधिक

अंतर उपस्थित हो जाता था कि दूसरा संस्करण एक नवीन वस्तु सा प्रतीत होने लगता था।

इबसन की शैली का विकास वर्षों की साधना का परिणाम था। उसकी आरम्भिक रचनाओं में भावानुभूति का प्राधान्य है। आगे चलकर उनमें जातीय भावनाओं का समावेश है। उसकी शैली का अधिक विकास समास शैली में हुआ। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव भर देने की ओर वह अधिक ध्यान देता था। 'कैटिलीना' के प्रथम प्रकाशन के लगभग २५ वर्ष बाद मानो उस पुस्तक की रजत जयंती के रूप में जो नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ था, उसमें तो यह परिवर्तन इतना अधिक आ गया है कि पुराने संस्करण की शायद ही कोई पंक्ति ऐसी है जिसमें कुछ परिवर्तन उपस्थित न हुआ हो।

दस वर्षों के परिभ्रमण के पश्चात् स्वदेश लौटने में केवल उसकी व्यक्तिगत ख्याति ही एक कारण नहीं थी, प्रत्युत उसके हृदय में यह देखने की लालसा भी जागरित हो उठी थी कि अपने देशवासियों के मध्य में उसका व्यक्तिगत स्थान क्या है? इसके अतिरिक्त उसकी कला में भी एक नवीन दृष्टिकोण उपस्थित हो रहा था। यह नवीन दृष्टिकोण 'डी अन्जेस फोर बंड' में सर्वप्रथम दृष्टिगोचर होता है। तर्क और विवेचना से परिपुष्ट ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रवृत्ति मानों पीछे छूटने लगी थी और नित्य-प्रति की व्यावहारिक समस्याओं से ओत-प्रोत नाटकों की ओर उसका ध्यान द्रुत गति से आकृष्ट हो रहा था। वह अपने युग के सजीव पात्रों का दिग्दर्शन कराना चाहता था। यह भी एक कारण था, जिससे इबसन के लिए एक बार पुनः नार्वे की भूमि पर कुछ समय के लिए पदार्पण करना आवश्यक हो गया था।

सत्य, स्वतंत्रता और प्रेम की नींव पर ही इबसन के साहित्य का प्रासाद निर्मित हुआ है। और यदि इबसन के सम्पूर्ण साहित्य का सम्यक् अनुशीलन किया जाय तो यह देखकर सचमुच आश्चर्य होता है कि उसकी कृतियाँ इस सम्बन्ध में कितनी परिपूर्ण हैं। तर्क और विवेचन को लेकर उसका मस्तिष्क अद्वितीय रूप में अग्रसर हुआ है। उसने अपने पाठकों के सम्मुख जो कुछ उपस्थित किया है, उसमें उसकी कुछ प्राचीन मान्यताएँ भी हैं और कुछ नवीन अनुभव भी। कहीं-कहीं वह अपनी प्राचीन विचार-धारा को छोड़कर नये दृष्टिकोण के साथ बढ़ता हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इबसन के साहित्य की यही कड़ियाँ उसके मस्तिष्क के क्रमिक विकास को स्पष्टतः इंगित करती हैं। वस्तुतः यह कथन इबसन के साहित्य के

सम्बन्ध में जितना सत्य है, उतना ही उसके जीवन के सम्बन्ध में भी घटित होता है। प्रेम-परक नाटकों की अपेक्षा उसके ऐतिहासिक नाटक अधिक उत्कृष्ट हैं और ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा आधुनिक जीवन से सम्बन्धित नाटक अधिक श्रेष्ठ हैं।

इबसन की कला के उत्तरोत्तर विकास के साथ उसकी शैली में भी एक नूतनता का समावेश हुआ। यह नूतनता स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। इसकी सबसे बड़ी मार्मिक विशेषता यह है कि इसके अनुसार सामान्य नाटकों की भाँति इबसन के नाटकों का आरंभ नहीं होता। प्रत्युत जहाँ पर सामान्य नाटकों का अन्त होता है वहीं से इबसन के नाटकों का प्रारम्भ होता है। अन्य सामान्य नाटकों में चाहे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कुछ अधिक सामग्री मिल जाय; परन्तु इबसन के नाटकों में जो कलात्मकता है, वह मानव की आत्मा का ही स्पष्टीकरण कर देती है। इसी कलात्मक विशेषता के कारण इबसन अपने पात्रों की गूढ़ से गूढ़ और गुप्त से गुप्त हृद्गत भावनाओं को बिना स्वगत कथन का आश्रय लिये ही सफलता-पूर्वक व्यक्त कर देता है। इसके अतिरिक्त उसके सम्भाषण उत्तरोत्तर अधिक प्राकृतिक और स्वाभाविक होते चले जाते हैं। अधिकांश नाटकों में यह दोष दिखाई पड़ता है कि पात्र रंगमंच पर आकर थोड़े-बहुत रूप में वही सब बोलने लगते हैं, जो नाटककार चाहता है। इसके सर्वथा विप-रीत इबसन के नाटकीय पात्रों का स्वतंत्र अस्तित्व स्पष्टतः परिलक्षित होता है। प्रत्येक पात्र अपनी विशेषता के साथ बोलता है।

इबसन का जीवन शान्त और सुखी था। इबसन को बीमार होते हुए कभी किसी ने नहीं देखा। वृद्धावस्था के साथ शरीर में जो शैथिल्य व्याप्त हो जाता है, उसका भी इबसन पर कोई प्रभाव न था। वह मानों स्वास्थ्य की साक्षात् प्रतिमा था।

उसका वैवाहिक जीवन भी बड़ा सुखी था। नार्वे छोड़ने के पश्चात्, जर्मनी और इटली में वह अपनी पत्नी और पुत्र के साथ आनन्द से रहता था।

इबसन के स्वभाव की एक विशेषता सुव्यवस्था थी। वह जो कार्य करता वह एक व्यवस्थित प्रणाली से होता। यही उसके जीवन की सफलता का रहस्य था। अपने किसी विचार को लिखने के पूर्व भी वह उसपर पर्याप्त मनन कर लेता था। जब वह घूमने जाता, उसी समय वह अपनी नवीनतम रचनाओं पर विचार करता रहता था और पर्याप्त मनन के पश्चात् ही किसी विषय पर वह अपनी लेखनी उठाता था।
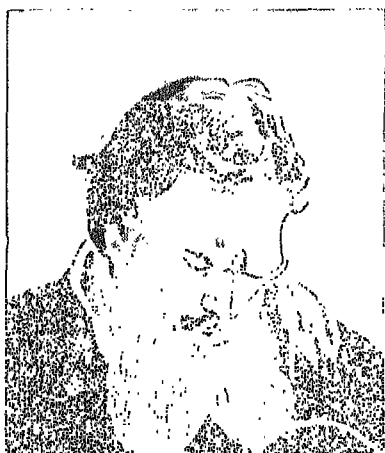
टाल्सटाय

(१८२८–१९१० ई०)

टाल्सटाय ने जीवन का वास्तविक चित्रण करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की थी। वह अपने युग का एक महान् लेखक, विचारक और दार्शनिक था। उसके सिद्धान्तों के कारण संसार में एक नवीन प्रणाली और आदर्शों की सृष्टि हुई है।

टाल्सटाय के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसिद्ध है। एक दिन तुर्गनेव के साथ टाल्सटाय देहात में भ्रमण कर रहा था। वहाँ उसने देखा कि एक बूढ़ा घोड़ा एक निर्जन मैदान में अपने जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा है। उसे देखकर टाल्सटाय का कोमल हृदय द्रवीभूत हो गया और उसने तुर्गनेव के सम्मुख अपने हृदय के करुण उद्‌गार बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में अभिव्यक्त कर दिये। उन दिनों डार्विन के नवीन विचार प्रचलित हो चले थे। अतः तुर्गनेव ने उपहास करते हुए कहा—मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे पूर्वजों में घोड़े का रक्त अवश्य रहा होगा।

टाल्सटाय जिस वस्तु का वर्णन करता, उसका इतना सजीव चित्र उपस्थित कर देता था कि कहीं भी अस्वाभाविकता परिलक्षित न होती थी। जब वह बच्चों का वर्णन करता था, तब मानों वह स्वयं ही एक छोटा बालक बन जाता था। टाल्सटाय की लिखी हुई आत्म-कहानी 'चाइल्डहुड' और 'ब्वायहुड' में उसी के जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण हुआ है।

टालसटाय का जन्म यन्सा पोल्येना में, एक कुलीन वंश में, हुआ था। वह जब दो वर्ष का था, तब उसकी माता का देहान्त हुआ और जब उसकी आयु नौ वर्ष की हुई, तब उसके पिता भी संसार में उसे अकेला छोड़कर चले गये। अतः उसकी शिक्षा का प्रबन्ध एक स्त्री द्वारा हुआ जो उसकी सम्बन्धी थी। १५ वर्ष की अवस्था में वह कजान विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ। उस समय वह अपनी एक चाची के यहाँ रहता था। चार वर्षों तक टालसटाय इस विश्वविद्यालय में कानून और 'ओरियन्टल फैकल्टी' का अध्ययन करता रहा। १८४७ ई० में, उन्नीस वर्ष की अवस्था में, टालसटाय ने विश्वविद्यालय छोड़ दिया और यन्सा पोल्येना की उन्नति के कुछ प्रयोगों में लीन हो गया।

सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उसे ऐश्वर्य की सभी वस्तुएँ उपलब्ध थीं, अतएव उसके यौवन के प्रारम्भिक चार वर्ष विलासिता में व्यतीत हुए। अन्य धनवान् तथा विलासी युवकों की भाँति वह भी अपना जीवन व्यतीत करने लगा; किन्तु शीघ्र ही उसे इस प्रकार के जीवन से घृणा हो गई।

१८५१ ई० में अपने भाई निकोलस के साथ वह सैनिक शिक्षा के लिए भर्ती हुआ। सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त उसकी नियुक्ति कोजाक के एक गाँव में हुई। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसकी कल्पना जाग्रत हुई और वहीं उसने अपनी प्रथम कृति 'चाइल्डहुड' की रचना की।

टालसटाय फ्रांस के विलक्षण लेखक रूसो के दर्शन से भी विशेष प्रभावित था। १६ वर्ष की अवस्था में उसका धर्म से विश्वास हट गया था। प्रकृति ने उसे अपनी ओर आकर्षित किया। रूसो पर उसकी अपार श्रद्धा थी। रूसो के ही सिद्धान्तों के अनुसार उसने अपना आरम्भिक उपन्यास 'ए रशियन लैन्डलॉर्ड' लिखा।

युद्धकाल में वह पहाड़ों का सौन्दर्य देखने में तल्लीन रहता था। इस समय उसका जीवन विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हो रहा था। वह एक ओर सैनिक जीवन व्यतीत कर रहा था। दूसरी ओर प्रेम की भावनाएँ उसके हृदय में निवास कर रही थीं। अपने सैनिक जीवन में भी वह साहित्य का निर्माण कर रहा था। बाल्यकाल और युद्ध की कहानियाँ, कोसाक लोगों के सम्बन्ध में उपन्यास, निबन्ध और पत्र उसकी लेखनी से निरंतर प्रसूत हो रहे थे।

साहित्य-साधना में अधिक व्यस्त रहने के कारण टाल्सटाय अपने सैनिक कर्तव्यों की ओर विशेष ध्यान न दे सका। यह सर्वथा स्वाभाविक भी है; क्योंकि जिसकी रुचि निर्माण की ओर होती है वह विध्वंस की ओर आकृष्ट हो भी कैसे सकता है? २८ वर्ष की अवस्था में उसने 'दी इन-वेजन' लिखा। इस पुस्तक में उसने युद्ध के विरुद्ध प्रथम बार अपने विचार प्रकट किये।

१८५३ ई० में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। टाल्सटाय ने इस युद्ध में सक्रिय भाग लिया; किन्तु युद्ध में भीषण संहार और मानवता के सर्वनाश को देखकर उसका हृदय युद्ध से विरत हो उठा था। उसने बहुत पहले ही युद्ध के सम्बन्ध में तीन पुस्तकें लिखी थीं। उसने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि संसार के शासक अपनी प्रजा को केवल तोप का भोजन बना रहे हैं। ५ मार्च १८५५ ई० के दिन उसने अपनी डायरी में भी लिखा था—'मेरे हृदय में यह भावना प्रबल हो गई है। मैं अपने समस्त जीवन को इस नवीन धर्म के लिये उत्सर्ग कर दूँगा। यह धर्म अप्रतिरोध, विश्व-बन्धुत्व और विश्वशान्ति है।'

१८५६ ई० में टाल्सटाय सेना छोड़कर सेंटपीटर्सबर्ग (लेनिनग्रेड) आया। उसकी ख्याति तो सर्वत्र फैल ही चुकी थी, अतः नगर के सभी प्रमुख कलाकारों ने उसका स्वागत किया। ये लेखक और कलाकार प्रायः उच्च वर्ग के लिए ही साहित्य-रचना करते थे तथा सर्वसाधारण को अशिक्षित समझकर हीन दृष्टि से देखते थे। टाल्सटाय का विचार इसके सर्वथा विपरीत था। उसके लिए साहित्य ही धर्म था, अतः सौन्दर्य और बुद्धि का पवित्र संदेश वह सभी के लिए समान रूप से ग्रहणीय समझता था। इस कारण उसने कतिपय विशिष्ट लोगों के लिए न लिखकर सदैव मनुष्य मात्र के लिए ही लिखा।

टाल्सटाय साधारण मनुष्यों के जीवन से पूर्णतः परिचित न था। उच्च कुल में होने के कारण उसे सामान्य जनता के संपर्क में रहने का अवसर भी नहीं मिला था; अतः सामान्य जनता के निकट पहुँचकर अनुभव प्राप्त करना उसने अतीव आवश्यक समझा।

टाल्सटाय ने यस्ना पोल्येना में किसानों के लिए एक स्कूल खोला। वह रूस में प्रचलित शिक्षाक्रम का विरोधी था। उसका सिद्धान्त था कि स्वयं बच्चे यह स्पष्ट कर देते हैं कि उन्हें कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए, और इस प्रकार प्रत्येक बालक की रुचि के अनुसार ही उसकी शिक्षा का क्रम होना आवश्यक है। रूसो के विचारों से प्रभावित होकर टाल्सटाय

अपने इस स्कूल में नवीन प्रयोगों के द्वारा ही बालकों को शिक्षा प्रदान करता रहा। टालसटाय को इसमें बहुत सफलता मिली। वह कोई कहानी अथवा वर्णन बालकों को सुनाता, और जब उस पाठ के ऊपर वह बच्चों से प्रश्न पूछता तो वे उसके कहे हुए एक-एक शब्द को ज्यों का त्यों दोहरा देते थे। उसके स्कूल में किसी नियम का पालन न होता था। अंत में रूसी सरकार की क्रूर दृष्टि टालसटाय की इस संस्था पर पड़ी। पुलिस ने उस स्कूल और टालसटाय के घर की छानबीन की। टालसटाय की चाची पर इसका इतना भयानक प्रभाव पड़ा कि तभी से वह बीमार पड़ गई। उन दिनों टालसटाय घर पर नहीं था। लौटने पर जब उसे सब समाचार विदित हुए, तब वह बड़ा क्रोधित हुआ और उसने बादशाह जार के यहाँ यह सूचना भिजवाई कि 'मैं अपना पिस्तौल सदैव भरा हुआ रखता हूँ। जो भी पुलिस अफसर मेरे यहाँ आवेगा वह इसका शिकार होगा।' इस घटना के पश्चात् वह स्कूल बन्द हो गया। टालसटाय ने अब सदैव के लिये रूस छोड़कर लन्दन में रहने का निश्चय किया।

१८६२ ई० में टालसटाय ने अपना विवाह किया। उसकी पत्नी की आयु केवल सत्तरह वर्ष की थी, और टालसटाय की अवस्था उससे दूनी थी। इस समय वह अपनी जमींदारी की देख-भाल करते हुए अपना अधिकांश समय साहित्य-रचना में लगा रहा था। टालसटाय की पत्नी साहित्य-निर्माण में उसे पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। कभी वह उसे लिखने के लिये उत्साहित करती तो कभी उसकी रचनाओं की पांडुलिपि प्रस्तुत करने में तल्लीन रहती थी।

पन्द्रह सोलह वर्ष तक निरंतर परिश्रम करके टालसटाय ने 'वार एंड पीस', तथा 'अन्ना करेना' ये दो अमर उपन्यास प्रस्तुत किये। 'वार एंड पीस' संसार के साहित्य में पहला ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें युद्ध की भीषणता का चित्र पाठकों की आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। इस उपन्यास में मानवता की रक्षा के लिए लेखक ने युद्ध का घोर विरोध किया है। इस विशाल उपन्यास में एक सौ से अधिक पात्रों का समावेश हुआ है। प्रत्येक पात्र का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। टालसटाय ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण ऐसा सजीव किया है कि कोई भी पाठक उन पात्रों को जल्दी नहीं भूल सकता।

टालसटाय की समस्त रचनाओं में 'अन्ना करेना' सब से अधिक प्रच-लित उपन्यास है। आरंभ से अन्त तक इसमें अत्यंत स्वाभाविक दृश्यों का

वर्णन है। इन स्थलों को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानों पात्रों की आत्मा खुलकर बातें कर रही है। अन्ना लिखते समय स्वयं लेखक के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। अन्ना में बाइबिल के वाक्य, 'वेजेन्स इज माइन, एण्ड आई विल रिपे',—अर्थात् बदला मेरा है और मैं उसे चुकाऊँगा—का रहस्य अन्तर्निहित है।

कभी-कभी टालसटाय जीवन से अत्यधिक ऊब उठता था। उसके स्थान पर यदि कोई साधारण मनुष्य होता तो ऐसी मनोदशा में या तो आत्महत्या कर बैठता अथवा मदिरा में व्यस्त होकर अपना अन्त कर डालता। टालसटाय ने लिखा है कि 'मैं जीवन के सम्बन्ध में जितना ही विचार करता हूँ, उतना ही स्पष्ट रूप से मुझे यह विश्वास होता है कि जीवन बड़ा ही अधम और दुष्टता से ओत-प्रोत है।' उसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसका जीवन निरुद्देश्य है। वह लिखता है—'यदि स्वर्गलोक से कोई परी मेरी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए मेरे सामने आ खड़ी होती तो मैं यह नहीं बता सकता था कि मेरी क्या आकांक्षा है। मैं जीवन में सत्य से भी परिचित होना नहीं चाहता था; क्योंकि मैं जानता था कि सत्य यही है कि जीवन तुच्छ है।'

टालसटाय के हृदय में धीरे-धीरे ज्ञान का उदय हुआ। उसकी दार्शनिक बुद्धि विकसित हुई। उसे अनुभव हुआ कि दूसरों के लिए जीवित रहना ही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। पशु-पक्षी भी तो एक-दूसरे की सहायता में संलग्न रहते हैं। इस प्रकार टालसटाय ने अपने जीवन का उद्देश्य 'जनता के लिए' बना लिया। उस समय रूस में इस सिद्धान्त के लिए बड़ा आंदोलन चल रहा था। अगणित व्यक्ति जारशाही के कुचक्र में पिस रहे थे। टालसटाय के उपन्यास 'वार एंड पीस' में भी प्रमुख दृष्टिकोण जनता-जनार्दन की सेवा ही है।

टालसटाय ने ईसाई धर्म का विस्तृत अध्ययन किया था। उसने अनेक पुस्तकें धर्म के सम्बन्ध में लिखीं। उसका सबसे बड़ा सिद्धान्त यह था कि 'दुराचारियों का अन्त हिंसा से न करो'। वैसे भी टालसटाय आरंभ से ही हत्या का विरोधी था और रूस के क्रान्तिकारी आंदोलन से सदैव अलग रहता था। उसने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि रूसी चर्च एक व्यावसायिक संस्था है। इसमें ईसा से अधिक जार का प्रभुत्व है।

टालसटाय एक नवीन धर्म का भविष्यवक्ता माना जाता है; किन्तु उसका यह नवीन धर्म वस्तुतः कोई नवीन संदेश नहीं देता। उसके इस धर्म में बुद्ध, ईसा और कन्फूशस की प्रतिध्वनि है, जिसे जनता भूल बैठी

थी। टाल्सटाय का सिद्धान्त 'मानवता की रक्षा' ही है। त्याग, उदारता, अहिंसा, और सत्य ये ही उसके अस्त्र हैं। यही कारण है कि उसके जीवनकाल में ही संपूर्ण संसार में उसका मान होने लगा था, और एक महात्मा के रूप में उसका आदर होने लगा था; किन्तु अपने ही घर में वह महामूर्ख समझा जाता था। अपनी पत्नी से उसका सदैव मतभेद रहता था।

टाल्सटाय ने अपना जीवन एक साधारण किसान की भाँति बना लिया था। प्रतिदिन वह शारीरिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन करता था। उसके इस वास्तविक जीवन को देखकर उसके घरवाले और बाहर के सभ्य समाज के लोग प्रायः व्यंग्य और उपहास करते रहते थे।

टाल्सटाय ने अपने अंतिम उपन्यास 'पुनर्जन्म' में एक बूढ़े तपस्वी की आत्मा को एक युवक पापी के शरीर में प्रविष्ट कराया है। यह भी ध्यान देने की बात है कि लेखक के प्रथम उपन्यास में प्रधान पात्र का जो नाम 'नेखल्दोव' है, वही नाम उसके अंतिम उपन्यास के प्रधान पात्र का भी है। उसका जीवन दुराचार से आरंभ होकर देवता के रूप में परिणत हो जाता है। यह लेखक की वृद्धावस्था की रचना है। टालसटाय ने दया की भावना से परिपूर्ण यह श्रेष्ठतम कृति संसार को प्रदान की है।

भाग्य का यह भी एक विचित्र विधान है कि ऐसे महान् लेखक की मृत्यु बड़ी ही करुण दशा में हुई। उसने ८२ वर्ष की अवस्था में एक साधारण कृषक के वेष में अपने गृह का परित्याग किया। मानो जीर्ण शरीर और आलोकित मुख वाला यह पथिक अंतिम यात्रा के लिए चल पड़ा हो। भगवान् बुद्ध ने जीवन की खोज में घर का परित्याग किया, और टाल्सटाय ने मृत्यु की खोज में घर छोड़ा। वह कहीं निर्जन स्थान में अपनी जीवन-लीला संवरण करना चाहता था। करुणा के चरणों पर उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था। उसके घर में मतभेद का वातावरण चरम सीमा पर पहुँच गया था। वह अपने परिवार की दया से दूर हटकर घर से निकल खड़ा हुआ था। वह गाँव-गाँव फिरता रहा। अंत में मार्ग में ही ऐसा गिरा कि फिर कभी उठ ही न सका।

अंतिम समय में जो डाक्टर उसकी देखभाल कर रहा था, उससे उसने कहा—इस पृथ्वी पर लाखों पीड़ित मनुष्य हैं, फिर तुम केवल मेरी ही चिंता क्यों करते हो?

प्रभात के समय अंत में अनन्त शान्ति के साथ उसने मृत्यु का आलिंगन किया। उसके अंतिम शब्द थे—'मृत्यु, तेरा मंगल हो।'
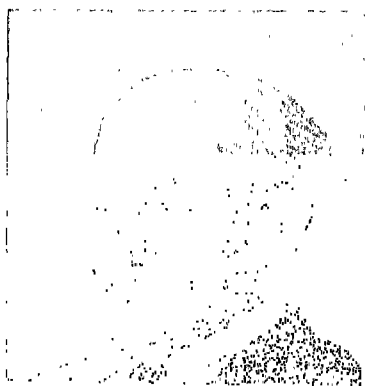
(१८४०–१९२८ ई०)

टामस हार्डी धनी कुल का नहीं था। उसका पिता गृह-निर्माण-कार्य में कुशल था और ठेके पर मकान बनवाकर अपनी जीविका उपार्जित करता था।

टामस हार्डी जब उत्पन्न हुआ तब बड़ा दुर्बल और शक्तिहीन था; किन्तु उसका मस्तक विशाल था। डाक्टर ने देखते ही कहा—यह जीवित नहीं ज्ञात होता है।

विधाता की रचना कि उसे नब्बे वर्ष की अवस्था प्राप्त हुई। पिता ने इस निर्बल बालक को स्कूल भेजना उचित नहीं समझा। हार्डी स्वच्छन्द होकर विचरता था। प्रकृति ही उसकी पाठशाला थी। वह घण्टों झरने के समीप बैठा देखता रहता। वह पेड़ और पशु-पक्षियों की भाषा समझने का प्रयत्न करता था।

नौ वर्ष की अवस्था में हार्डी शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्कूल जाने लगा। स्कूल से लौटते समय, एक पत्थर के पुल के मध्य में खड़ा होकर, वह मार्ग में चलनेवाले लोगों का अध्ययन करता था। उसे ऐसा प्रतीत होता कि मानव-आकृति में अत्यन्त रहस्यमयी कहानियाँ छिपी पड़ी हैं।

१६ वर्ष की अवस्था में जब वह ग्रेजुएट हुआ उस समय लैटिन, फ्रेंच और अंग्रेजी साहित्य से पूर्ण रूप से परिचित था। शेक्सपीयर के नाटक उसे कण्ठस्थ थे। जीविका के लिए हार्डी ने एक मकान बनानेवाले दफ्तर में कार्य करना स्वीकार किया। वह मकान का नक्शा बनाता था। इस कार्य में उसकी रुचि नहीं थी फिर भी कर्तव्य-पालन से कभी वह विमुख नहीं हुआ।

अपने अवकाश के समय में हार्डी ग्रीक भाषा का ज्ञान प्राप्त करता रहा। तीन वर्षों के परिश्रम में उसने होमर और यूनानी नाटककारों की रचनाओं का अध्ययन कर लिया था। प्रकृति ने प्रेरणा दी और टामस हार्डी की हृदय-तंत्री बज उठी। वह कविता करने लगा। उसकी आरम्भिक कविताओं को कोई महत्त्व नहीं मिला। अनेक वर्षों तक सम्पादकों ने उसकी रचनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था। बूढ़े होने पर भी हार्डी अपनी कृतियों के विज्ञापन में कुशल नहीं था।

हार्डी का पहला उपन्यास 'डिसपरेट रेमेडीज' १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने अपने जीवनकाल में पन्द्रह उपन्यास और अनेक कहानी-संग्रह प्रस्तुत किये थे।

कथा-वस्तु की दृष्टि से हार्डी अत्यन्त कुशल था। अपनी शिल्पी प्रतिभा के कारण उसने अपने उपन्यासों का निर्माण भी प्रवीणता से किया है। अंग्रजी के उपन्यास-लेखकों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी वह दक्ष था। वह नियति के चक्रों में विश्वास करता था। इसलिए उसके चित्रित पात्र-पात्री प्रायः भाग्य की डोर में बँधी रहती हैं। लेखक ने अपनी रचनाओं में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से उपस्थित किया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम स्वयं अपनी आँखों से सब देख रहे हैं। हार्डी के उपन्यासों में कवि की भावुकता प्रदर्शित होती है।

हार्डी ने अपना विवाह एक ऐसी स्त्री से किया जिसका सामाजिक स्तर उससे उच्च था। संगीत की ओर उसकी रुचि थी और घोड़े पर चढ़ने में वह निपुण थी। हार्डी सदैव पैदल चलना ही पसन्द करता था। अतएव जीवन-यात्रा में दोनों एक ही गति से चलने में असमर्थ थे; लेकिन लेखक ने इसके लिए कभी दुःख नहीं प्रकट किया। वह अपनी स्थिति के अनुसार अपनी पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में तत्पर रहता था। अपनी पत्नी के आग्रह पर ही उसने उपन्यासों की रचना की थी।

हार्डी ने स्वयं लिखा है कि मैं उपन्यास कभी भी लिखना नहीं चाहता था; किन्तु परिस्थितियों के कारण मुझे बाध्य होकर उपन्यासों की रचना करनी पड़ी। और इस तरह एक ऐसी स्त्री—जिसका प्रेम उसके पति को प्राप्त नहीं था—के खटखटाने पर अंग्रेजी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ प्रेम-कहानियाँ निर्मित हुई थीं।

हार्डी के उपन्यासों के चरित्र प्रायः असफल प्रेम के कारण पथविहीन होकर भटकते दिखाई पड़ते हैं। कोई किसी को प्यार करता है और वह

उसे नहीं किसी दूसरे ही को प्यार करता है। यह अभिशाप है कि दोनों कभी आपस में एक दूसरे को प्यार नहीं करते। यही लेखक का प्रधान लक्ष्य है। हार्डी के उपन्यासों में व्यंग्य और दया की प्रधानता है। स्वर्ग के प्रति व्यंग्य और मनुष्य के लिए दया ही उसका मूल रहस्य है।

अपनी आरम्भिक कृतियों में लेखक विधाता के प्रति असन्तोष प्रकट करता है। इसलिये कि वह अपनी सृष्टि के प्राणियों को दुःख भोगने के लिए छोड़ देता है और उन पर ध्यान नहीं देता। आगे चलकर वह भगवान् से हटकर मनुष्य को दोष देता है। वह समझता है कि मनुष्य के भाग्य का दोष नहीं है; किन्तु स्वयं उसकी दुर्बलताएँ ही उसके विपरीत हो जाती हैं। इसके पश्चात् वह समाज को ही अपराधी ठहराता है, जिसके कारण व्यक्ति को यंत्रणा और वेदना के असह्य आक्रमण में उलझना पड़ता है।

वृद्धावस्था में समाज के प्रति लेखक का द्वन्द्व और भी तीव्र हो उठा था। उसका एकमात्र विश्वास था कि समाज ही व्यक्ति के असीम क्रन्दन का कारण है। लेखक के दर्शन का वास्तविक स्वरूप 'टेस' नाम के उपन्यास में स्पष्ट होता है।

टेस का पिता आवारा था। किसी तरह उसे यह ज्ञात हो गया था कि वह एक प्रतिष्ठित कुल का वंशज है। अतएव वह अपनी पुत्री का विवाह एक सम्पन्न कुल में करना चाहता था। टेस स्वयं अपनी जीविका उपार्जित करती थी। एलेक नाम के एक सुन्दर युवक से उसका सम्बन्ध हो जाता है। वह नीच मनोवृत्ति का था। अन्त में एक सन्तान उत्पन्न हुई। उस बच्चे की भी मृत्यु हो गई। टेस फिर अपने घर वापस आती है। वह फिर अपनी जीविका के लिए कार्य करती है। अब क्लेयर नाम के एक युवक से उसका प्रेम होता है। दोनों की घनिष्ठता बढ़ती है।

जब क्लेयर अपना प्रेम प्रकट करता है, तब टेस में इतना साहस नहीं होता कि वह अपनी पिछली जीवन-कहानी उसे सुना सके। विवाह का दिन समीप आता है और टेस अपने जीवन की घटनाओं का विवरण एक पत्र में लिखकर अपने पति को सूचित करती है; किन्तु भाग्य का खेल! उसका वह पत्र कमरे के गलीचे में छिपा रह जाता है। विवाह के बाद टेस को अपना लिखा हुआ वह पत्र दिखाई पड़ता है; किन्तु उस समय उसमें साहस नहीं रहता कि वह उस पत्र को अपने पति के सम्मुख रखे और घृणा की दृष्टि से देखी जाय।

एक दिन उसका पति अपने एक अपराध की घटना सुनाता है। एक

स्त्री से उसका सम्बन्ध हो गया था। इसके लिए वह अपनी पत्नी से क्षमा-याचना करता है। वह प्रसन्नतापूर्वक उसे क्षमा कर देती है। इसके बाद टेस अपने अपराध का वर्णन करती है। उसका पति इसके लिए उसे किसी तरह क्षमा नहीं करता।

समाज का कठोर नियम! स्त्री कभी पाप नहीं कर सकती। दोनों अलग हो जाते हैं। टेस फिर अपने घर चली आती है। वह घोर परिश्रम द्वारा अपनी उपार्जित आय से अपने माता-पिता की सहायता करती है।

काम छूट जाने पर भूख और निराशा से टेस के दिन कटते हैं। एक बार वह अपने पति को खोजने निकलती है, लेकिन उसका कोई समाचार नहीं मिलता। अकस्मात् एक दिन एलेक से उसकी भेंट होती है वह उसे अपने साथ रहने का आग्रह करता है। पिता की मृत्यु के बाद अब टेस के सामने जीवन व्यतीत करने का कोई भी साधन नहीं है। अतएव विवश होकर वह एलेक के साथ रहने लगती है।

टेस सदैव क्लेयर की खोज में रहती है। वह उसका स्वप्न देखा करती थी और क्लेयर भी टेस के लिए विकल था। उसका क्रोध शान्त हो चुका था और वह अपनी पत्नी को फिर से ग्रहण करना चाहता था।

एक दिन क्लेयर ने टेस को एक सुसज्जित बोर्डिंग हाउस में देखा। उसका जीवन एक बहिष्कृत स्त्री की भाँति कट रहा था। लेखक समाज के कठोर नियम में बँधे उसके भाग्य की रेखाओं का चित्रण करता है कि वे दोनों एक दूसरे के लिए व्यग्र होते हुए भी मिल नहीं सकते।

नगर की सड़क पर एक दिन क्लेयर से टेस की भेंट होती है। वह उसे सूचित करती है—मैंने उसकी हत्या कर डाली है। उसने तुम्हारे सम्बन्ध में अपशब्दों का प्रयोग किया था। तुम्हें प्राप्त करने का यही एक मार्ग था।

हाथ में हाथ मिलाकर वे दोनों अपने दुःखद दिनों से छुटकारा पाते हैं; लेकिन दूसरे दिन सूर्योदय के समय टेस गिरफ्तार की जाती है।

सूर्य के उदय के साथ ही उसकी आशा का अन्त होता है। वह अपराधी प्रमाणित हुई। उसे मृत्युदण्ड मिला। इस तरह टेस ने सामाजिक नियम के प्रति अपना ऋण चुकाया।

हार्डी ने स्त्री-चरित्रों के चित्रण में अत्यन्त सफलता प्राप्त की थी। स्त्री-चरित्रों का स्वाभाविक चित्रण और जीवन के प्रति उनकी वास्तविक गति लेखक की विशेषता है। लेखक ने अपने पात्र-पात्रियों को जैसा समाज

में देखा वैसा ही उपस्थित करने का प्रयत्न नहीं किया है। विधाता ने जैसा मनुष्यों को उत्पन्न किया है, उसी रूप में लेखक ने उन्हें प्रस्तुत किया है।

टेस उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् लेखक की बड़ी कटु आलोचनाएं हुईं। सर्वत्र उसका विरोध हुआ। समाज के स्पष्ट चित्रण को कोई स्वीकार करना नहीं चाहता था।

जब हार्डी के मित्रों ने उन आलोचनाओं की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया तब उसने कहा—मैं अपनी इस पुस्तक से सन्तुष्ट हूं। इसमें मैंने अपनी कला को पूर्णतया प्रकट किया है।

लेखक ने अपनी कला का प्रयोग अपने अगले उपन्यास 'जूड' में भी किया। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही अंग्रेजी साहित्य में जैसे तूफान सा उठ गया। लोग लेखक की निन्दा और विरोध करने लगे। समाज अपने नग्न रूप को कैसे देखना स्वीकार करता ?

परिणाम यह हुआ कि हार्डी ने दुःखित होकर उपन्यास लिखना ही बन्द कर दिया। उसने कहा—मैं समझता था कि मैं बुद्धिमान् पाठकों के लिए लिखता हूँ।

अन्त में हार्डी काव्य-रचना करने लगा। उसका विचार था—मेरी कविताओं से किसी को आघात नहीं होगा, क्योंकि कोई उसे पढ़ने का कष्ट नहीं करेगा।

हार्डी ने अपनी गीतात्मक कविताओं का संग्रह आठ भागों में प्रकाशित कराया। इसके अतिरिक्त उसने नेपोलियन के जीवन पर भी नाटकीय कविता की रचना की। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, लोगों ने उसकी कविताएँ नहीं पढ़ीं; किन्तु उसकी ख्याति निरन्तर बढ़ती ही गई।

दुर्भाग्य से उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। लेखक के जीवन में रोमांस का अभाव दीखता है। वह शान्तिपूर्ण अपने निवासस्थान में दिन व्यतीत करता रहा। पत्नी की मृत्यु के बाद उसका जीवन शिथिल हो गया। उसे जीवन-संचार के लिए एक नारी की आवश्यकता प्रतीत हुई। ७४ वर्ष की अवस्था म ३५ वर्ष की एक स्त्री से उसने फिर विवाह किया। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमती हार्डी अपने पति की ख्याति और यश से आकर्षित हुई थीं।

जीवन-द्वन्द्व में कठिनाइयों के विस्तृत मार्ग पर चलते हुए, विजय प्राप्त करने का संदेश देनेवाले महान् लेखक की जीवन-यात्रा समाप्त होती है। आयु की ऊँची अट्टालिका पर चढ़कर उसने विजय और सम्मान प्राप्त किया था। उसके बाद उसकी बहिष्कृत और जला दी जानेवाली कृतियाँ 'टेस' और 'जूड' उसकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं।

जोला

(१८४०–१९०२ ई०)
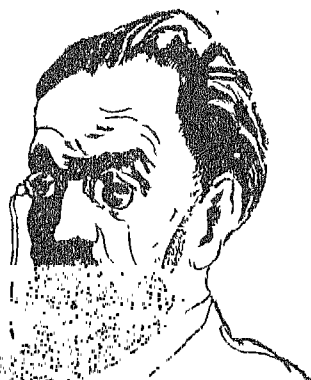
'नग्न, भ्रष्ट और कुत्सित।' इन शब्दों में जोला के साहित्य की परिभाषा की जाती है; किन्तु स्वयं जोला अपने साहित्य को यथार्थवादी न कहकर प्रकृतिवादी ही कहता था।

१८७४ ई० की बात है। उन दिनों प्रतिमास जोला, फ्लोबेयर, तुर्गनेव, और दाउदे पेरिस के एक होटल में एकत्र हुआ करते थे। वहाँ वे अपनी आगामी रचनाओं के सम्बन्ध में आपस में विचार-विनिमय करते और साहित्य के जटिल प्रश्नों को हल करते थे। रात सात बजे से वे लोग होटल की मेज के पास बैठ जाते और बारह बजे मध्यरात्रि में होटल छोड़ते थे। इसके बाद तीन चार बजे तक वे पेरिस की सड़कों पर सैर करते रहते थे। तुर्गनेव और दाउदे तो कभी जल्दी भी फ्लोबेयर का साथ छोड़ देते थे; किन्तु जोला फ्लोबेयर को उसके घर तक पहुँचाकर ही विदा होता था।

फ्लोबेयर कहता—मेरे पुत्र, इस संसार में जो कुछ कहा जा सकता था, वह सब लोगों ने पहले ही कह डाला है, अब उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त शेष कुछ कहने के लिए हमारे पास नहीं है; लेकिन हमारे लिए उन बातों को अत्यन्त सुन्दर शब्दों में कहना आवश्यक है।

जोला सदैव अपने शिक्षक के आदेशों का पालन करता था। उसने अपने नवीन प्रयोगों को ऐसे सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया है कि वे आज तक विश्व में प्रतिध्वनित हो रहे हैं।

जोला में अनेक जातियों के रक्त का मिश्रण था। उसकी दादी ग्रीक और माता फ्रेंच थी। पिता इटालियन था।

जोला का पिता इंजीनियर था। वह नहर विभाग में काम करता था, जो नहर पहाड़ों से पानी लाकर नगर को हरा-भरा बनाती थी। उसका देहान्त असमय में ही हो गया, उस समय जोला की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। उसकी माता निराश्रित होकर अपने पुत्र की चिन्ता में लीन रहती थी।

पाँच वर्षों तक स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जोला कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया। वहाँ वह अपने सहपाठियों से तुतलाकर बोलता था। अपने साथियों के व्यंग्य से तिलमिलाकर वह लड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता था। उसके उन्हीं साथियों में पाल जेनी भी था जो आगे चलकर फ्रांस का महान् चित्रकार हुआ।

कालेज के विद्यार्थी जीवन में १३ वर्ष की अवस्था में ही जोला एक लेखक बन गया था। उसने एक उपन्यास और तीन अंकों का एक नाटक लिख डाला था। प्रायः वह अपनी कक्षा को छोड़कर चला जाता। कालेज की पढ़ाई मे उसका मन नहीं लगता था। परीक्षा में उसे शून्य ही प्राप्त होता था। वह प्रायः ह्यूगो, मानटेन, और रेबले की रचनाएँ पढ़ता रहता। इन सब बातों से उसकी माता बड़ी दुखी और निराश रहती थी। वह अपने पुत्र को अपने पति के समान एक सफल इंजीनियर देखना चाहती थी; किन्तु उसकी यह आशा कभी पूर्ण नहीं हुई।

२० वर्ष की अवस्था में उसे एक बन्दरगाह में क्लर्क का काम मिला, वहाँ के जीवन और परिश्रम से वह ऊब उठा। उसने नौकरी छोड़ दी।

जोला प्रतिदिन अपनी आवश्यकताओं से युद्ध कर रहा था। स्वार्थ, तिरस्कार और घृणा की भावनाओं से ओत-प्रोत संसार को देखकर वह क्षुब्ध हो उठता। वह एक ऐसे लोक का स्वप्न देखा करता जिसमें ऐसी दुर्भावनाओं का अस्तित्व न था। इस संसार के लिए वह एक पवित्र संदेश की सृष्टि करना चाहता था। वह चाहता था कि मानव इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग का उपभोग करे। वह एक नई बाइबिल देना चाहता था। उसके पेट में क्षुधा की भीषण ज्वाला जल रही थी।

पेरिस में एक दिन उसकी भेंट अपने सहपाठी पाल जेनी से हुई। दोनों की दशा बहुत कुछ एक-सी थी। अब उन दोनों ने मिलकर एक कमरा किराये पर लिया। दोनों साथ रहने लगे। एक ओर जोला अपनी कविताएँ रचता और दूसरी ओर जेनी चित्र बनाता रहता। दुर्भाग्य से दोनों को प्रकाशक नहीं मिलते और न उनकी कृतियों का जनता द्वारा ही आदर

होता। भूख से त्रस्त होकर दोनों ही कष्ट उठा रहे थे; किन्तु इस आपत्तिकाल में भी जोला रंगीन स्वप्न देखता था। वह जेनी से कहता—निश्चय ही मैं किसी दिन एक महान् रचना प्रस्तुत करूँगा। तुम प्रतीक्षा करो और एक दिन तुम देखोगे कि मेरा कथन सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ है।

कुछ समय बाद जोला को पुस्तकों का बन्डल बनाने का काम मिला। अपने अवकाश के समय वह कहानियाँ और आलोचनाएँ लिखा करता था। १८६४ ई० में एक दिन जोला अपनी कुछ कहानियों की हस्तलिखित प्रतियाँ लेकर एक अन्य पुस्तक-प्रकाशक के यहाँ गया। उसने बड़ी नम्रता से कहा—महोदय, क्या आप कृपा करके मेरी इन कहानियों में से एक भी पढ़ने का कष्ट उठावेंगे? आप देखेंगे कि मुझमें प्रतिभा है।

उसकी अस्तव्यस्त दशा और कहने के ढंग से प्रभावित होकर प्रकाशक ने उसे उन कहानियों के पढ़ने का वचन दिया।

कई सप्ताह बाद जोला को सफलता मिली और उसकी पुस्तक प्रकाशन के लिए स्वीकृत हो गई। उन दिनों वह अपनी माता के साथ रहा करता था। उसे विश्वास था कि उसे अब जीवन में आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो गया है। पत्र-पत्रिकाओं में भी उसकी कहानियाँ प्रकाशित होने लगी थीं।

एक दिन जब जोला अपने कमरे से बाहर निकल रहा था तब उसने देखा कि एक सुन्दरी युवती बैठी हुई आँसू बहा रही है। यह युवती उसके मालिक मकान की पुत्री थी। वह जोला से अपनी बातें नहीं कहना चाहती थी; लेकिन जोला ने धीरे-धीरे सब बातों का पता लगा लिया। वह अपने प्रेमी द्वारा तिरस्कृत हुई थी। उसका प्रेमी उसे छोड़ कर कहीं चला गया था। जोला को उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसने उसे अपने यहाँ गृह-प्रबन्धिका के रूप में रख लिया और कुछ दिनों बाद पत्नी के रूप में उसे ग्रहण कर लिया।

जोला कुरूप था; किन्तु उसकी पत्नी अलेक्जेन्डाराईन स्वप्न की भाँति सुन्दरी थी। जोला उसके सौन्दर्य पर मुग्ध था और उसकी पत्नी उसकी आत्मा पर मुग्ध थी।

जोला की ख्याति अब बढ़ने लगी थी। उसका गृह भी अब सुसज्जित हो गया था। नियमित रूप से कार्य करने की उसे पूर्ण सुविधा हो गई थी। जोला समाज के गुप्त रोगों को स्पष्ट रूप से सामने रखना चाहता था, जिससे उनका निदान हो सके। वह जो कुछ देखता अथवा अनुभव करता,

उसका वास्तविक स्वरूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देता था। उसके उपन्यासों का खूब प्रचार हुआ। सभ्य संसार उसपर अपशब्दों की वर्षा करने लगा। लोग उसका विरोध करते और उसे घृणा की दृष्टि से देखते; किन्तु जोला अपनी साधना में अविरल रूप से संलग्न था।

उसके साहित्य को पढ़नेवाले पाठकों की संख्या बढ़ने लगी और साथ ही जोला को अधिकाधिक धन भी प्राप्त होने लगा। जोला शिष्टाचार और आदर्श की ओर ध्यान न देकर अपनी स्वच्छन्द गति से साहित्य निर्माण में अग्रसर हो रहा था। अपने उपन्यासों के पात्रों को ऐसे जीते-जागते रूप में वह पाठकों के सम्मुख रखता था कि कहीं नाम को भी अस्वाभाविकता न रह जाती थी। आशा, भय, विश्वास, प्रेम, छल, प्रवंचना इत्यादि विभिन्न मनोवृत्तियों का यथातथ्य निरूपण ही जोला की कला की मार्मिक विशेषता है। समाज का अध्ययन करने के लिए वह मानव-मनोवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण करता तथा जिस विषय पर अपनी लेखनी उठाता, उसका पूर्ण ज्ञान भी विभिन्न पुस्तकों से प्राप्त करने में सदैव प्रयत्नशील रहता था। इस प्रकार निरंतर परिश्रम करके वह टिप्पणियाँ तैयार करता और तब उन्हीं टिप्पणियों के आधार पर अपने उपन्यासों का निर्माण करता था।

जोला के उपन्यास के विषय थे—नियति का उपहास और दरिद्रों का जीवन। निरीह और आश्रयहीन मनुष्यों का चित्रण करके जोला स्वयं एक धनी लेखक बन गया। अब उसे कोई आर्थिक चिंता न थी। उसका शरीर स्थूल हो गया था; किन्तु वह बचपन से ही वहमी था। उसे कोई रोग नहीं था, परन्तु फिर भी वह अपने आप को रोगी समझता था।

कोई सन्तान न होने के कारण जोला के घर में बच्चों की चहल-पहल न थी। उसकी पत्नी का जीवन भी उदासीन रहा करता था। जोला के घर में जेनी रोजरोट नाम की एक युवती रहती थी। वह स्त्री जोला की प्राइवेट सेक्रेटरी थी। उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी; किन्तु जोला इस समय ५० वर्ष पूर्ण कर चुका था।

जोला ने उस युवती के लिए एक दूसरा घर लिया। दोनों का पारिवारिक जीवन आरम्भ हुआ। सौभाग्य से उन्हें दो सन्तानें हुईं।

जोला की प्रथम पत्नी के जीवन में कोई प्रसन्नता नहीं थी। उसका जीवन चिंता और विद्रोह से व्यतीत हो रहा था। अंत में सहसा उसकी उदारता जाग्रत हो उठी। वह जोला के बच्चों और उनकी माता से स्नेह

करने लगी। वह उन लोगों के सुख और सुविधा का विशेष ध्यान रखती। उसी के प्रयत्न से जोला की सन्तानों को कानूनी अधिकार प्राप्त हुए। उसने जीवनपर्यन्त अपने कर्तव्य का पालन किया।

जोला ने अपनी एक पुस्तक प्रथम पत्नी को समर्पित की है, तथा अन्य अपनी प्रेयसी जेनी को। इन दोनों पुस्तकों के समर्पण से जोला की भावनाएं स्पष्ट होती हैं। जोला ने अन्तिम समय तक 'प्यारी पत्नी' और 'डार्लिंग जेनी' दोनों ही से अपना सम्बन्ध बनाये रखा। दोनों ही के प्रति उसके हृदय में समान प्रेम था।

उन दिनों फ्रांस में एक निरपराध यहूदी कैप्टन अल्फ्रेड ड्रेयफ्यूस पर मुकदमा चला। जोला ने खुलकर इस मुकदमे का विरोध किया। उसने अनेक आपत्तियाँ झेलीं; लेकिन अंत में उसी के प्रयत्न से ड्रेयफ्यूस को छुटकारा मिला। सत्य और न्याय के समर्थन में जोला ने संसार के सम्मुख एक उच्च उदाहरण उपस्थित किया। उसने फ्रांस के सम्मान की रक्षा की।

जोला ने अपने जीवन का कार्य पूरा कर लिया था। ऐसा विश्वास होता है, जैसे जीवन के रंगमंच पर उसका अभिनय समाप्त हो चुका था और अंतिम पर्दा गिराने के लिए नियति ने घण्टी बजा दी।

उस दिन जोला रात्रि में बहुत देर तक काम करता रहा। सोते समय वह आग बुझाना भूल गया। फलतः कमरे में गंदी गैस भर जाने के कारण उसके जीवन का सहसा अंत हो गया।

प्रातःकाल जोला की मेज पर पड़े एक अपूर्ण पृष्ठ पर लोगों को ये शब्द लिखे हुए दिखाई दिये—'सत्य द्वारा उच्च और सुखी मानवता का निर्माण करना' और यही जोला के जीवन-दर्शन का एकमात्र संदेश था।

द्वितीय महायुद्ध के भीषण रक्तपात और मानवता के सर्वनाश का हिटलर एक प्रमुख कारण कहा जाता है; किन्तु हिटलर के व्यक्तित्व को निर्मित करनेवाली विचार-धारा, सर्वविदित नहीं है। वस्तुतः इसे बहुत कम लोग जानते हैं कि हिटलर के व्यक्तित्व का स्रष्टा कौन था?

फ्रेडरिक विलियम नित्शे की कल्पनाओं एवं उसके दार्शनिक सिद्धान्तों ने विश्व में मानसिक क्रान्ति उपस्थित की है। उसकी उग्र विचार-धारा ने जिस भयानक ज्वालामुखी का विस्फोट किया है, उसी का साकार रूप हिटलर था।

नित्शे का जन्म प्रशिया के रोक्सोनी प्रान्त में हुआ था। उसका पिता एक गिरजाघर का अध्यक्ष था, अतः स्वभावतः वह एक धर्मनिष्ठ पुरुष तथा, इसी कारण, एक सम्मानित व्यक्ति था। नित्शे के पूर्व-पुरुष पोल जाति के थे; परन्तु उसकी दादी और माता दोनों ही जर्मन जाति की थीं।

यह भी एक विचित्र संयोग की बात है कि जिस दिन सम्राट् फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का जन्म हुआ, उसी दिन नित्शे का भी जन्म हुआ था। यही कारण है कि सम्राट् के नाम के साथ नित्शे के नाम का सम्बन्ध जोड़ दिया गया था। सम्राट् फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के दरबार में नित्शे के पिता की बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी। इसी से उसे धनाभाव भी नहीं था। गिरजाघर के अध्यक्ष होने के पूर्व इसी सम्बन्ध के कारण नित्शे के पिता को चार राजकुमारियों के अध्यापन का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा गया था। अपने पिता की मान-मर्यादा के कारण नित्शे को संसार के रंग-

मंच पर सफलता के साथ प्रवेश करने में बड़ी सहायता मिली। जब नित्जे की आयु छः वर्ष की थी तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। परन्तु पिता का राज-दरबार से सम्बन्ध होने के कारण नित्जे को प्रारम्भिक जीवन में विशेष कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ीं।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् नित्जे ने बोन विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। यहाँ नित्जे प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक रितसल से विशेष प्रभावित हुआ। धीरे-धीरे नित्जे, रितसल का अत्यन्त प्रिय शिष्य बन गया। कुछ समय पश्चात् जब रितसल की नियुक्ति लेपजिग विश्वविद्यालय में हुई तो नित्जे भी बोन विश्वविद्यालय छोड़कर लेपजिग चला गया। यह परिवर्तन नित्जे के लिए बड़ा ही उपादेय सिद्ध हुआ। यही वह समय है, जब नित्जे का संपर्क अपने युग के वेगनर, रीड और शूपनहूर जैसे महान् व्यक्तियों से स्थापित हुआ।

नित्जे के विचार उसके बाल्यकाल में ही पर्याप्त पुष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उसका कहना है—सात वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही मैं यह जानता था कि मुझ पर कभी किसी की बात का प्रभाव नहीं पड़ सकता। अपनी इस धारणा के कारण मुझे कभी किसी ने शोकान्वित भी न देखा होगा। आज भी मेरे हृदय में सभी के प्रति नम्रता विद्यमान है। सामान्यतम व्यक्ति के लिए भी मेरे हृदय में उदारता है। इस भाव में न तो कोई दंभ है और न घृणा। यदि मैं किसी की अवज्ञा करता हूँ तो इससे यही प्रमाणित होता है कि मैं घृणा से रहित नहीं हूँ; परन्तु बात तो यह है कि जिनकी धमनियों में शुद्ध रक्त प्रवाहित नहीं होता, उन्हें मेरा अस्तित्व ही अप्रिय होता है। मनुष्य की महानता के सम्बन्ध में तो मेरा सिद्धान्त ही अपरिवर्तनशीलता है। भूत, भविष्य, अथवा शाश्वत रूप में, मनुष्य को परिवर्तन की वांछा न करनी चाहिए। मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तो करनी ही चाहिए, साथ ही किसी भी कारण से उन्हें छिपाना भी न चाहिए। आवश्यकताओं के सम्मुख आदर्शवाद प्रवंचना मात्र है।

१३ वर्ष की अवस्था में ही विभिन्न कार्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य के सम्बन्ध में नित्जे के मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार उद्भूत होने लगे थे। शुभाशुभ कर्मों के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं से उसकी विचार-धारा बहुत कुछ भिन्न थी। अतः अपने प्रथम साहित्यिक निबन्ध में उसने भगवान् को ही बुरे कर्मों का स्रष्टा सिद्ध किया था।

नित्जे की राजनीतिक विचार-धारा उसके यौवन-काल से ही विकसित

होने लगी थी। इन्हीं दिनों प्रशिया और आस्ट्रिया में युद्ध छिड़ा। इस युद्ध ने उसकी देशभक्ति की भावनाओं को बड़ा ही प्रबल कर दिया था। दो बार उसने सेना में सम्मिलित होने का प्रयत्न किया; किन्तु आँखों से कुछ कम दिखाई देने के कारण वह सेना में सम्मिलित न हो सका। १८६७ ई० में सेना-संबन्धी नियम कुछ शिथिल हुए, फलतः नित्जे की एक सैनिक बनने की अदम्य लालसा पूर्ण हुई; किन्तु दुर्भाग्य से इस बार सैनिक शिक्षा प्राप्त करते समय वह घोड़े से गिर गया, जिससे उसके सीने में गहरी चोट आ गई। इस चोट ने उसे सदैव के लिए सैनिक कार्य के अयोग्य बना दिया।

२४ वर्ष की अवस्था में नित्जे बेल विश्वविद्यालय में भाषा-विज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त हुआ। इसके लगभग दो वर्ष बाद फ्रांस और प्रशिया में युद्ध छिड़ा। देशभक्ति और जनसेवा के भावों से प्रेरित होकर नित्जे एक सैनिक अस्पताल में सेवा का कार्य करने लगा। इन दिनों उसका स्वास्थ्य भी क्षीण हो रहा था। पेट के रोगों से वह बड़ा व्यथित था। धीरे-धीरे शारीरिक और मानसिक कष्टों से वह इतना पराभूत हो गया कि उसे सदैव के लिये अपनी नौकरी भी छोड़ देनी पड़ी।

अपने स्वास्थ्य के सुधरने की आशा से नित्जे ने स्विजरलैंड, इटली आदि देशों में भ्रमण भी किया। वह एक स्थान से दूसरे स्थानों पर जाता; किन्तु सभी स्थानों पर उसे निराश ही होना पड़ता। अपने अनुकूल जलवायु और वातावरण उसे कहीं भी प्राप्त न हो सका। इतना होते हुए भी वह साहित्य-निर्माण में संलग्न था। १८७२ ई०, में उसकी एक महत्त्वपूर्ण रचना 'बर्थ आफ ट्रेजेडी' प्रकाशित हुई। इधर रोग तथा मानसिक वेदना से उसका पीछा न छूटता था। मतभेद के कारण बहुत से मित्रों से भी अनबन हो गई थी। इस अशान्ति में संगीत ही कभी-कभी उसे कुछ शान्ति प्रदान करता था। वह संगीत का प्रेमी था। वेगनर के संपर्क में आने से उसपर संगीत का विशेष प्रभाव पड़ा था।

वेगनर उसका अंतरंग मित्र था; परन्तु उसके विरुद्ध भी उसने अपनी लेखनी का प्रयोग किया, फलतः वह मित्रता भी अब टूट गई। मत-वैषम्य एवं विरोध-प्रदर्शन की अभिरुचि के कारण प्रायः उसके सभी मित्रगण विरोधी बन गये थे। केवल प्रोफेसर ओवरबुक ने ही अंत तक उसका साथ दिया। इन्हीं सब कारणों से उसका जीवन एकान्त में अकेले ही कटता था।

नित्जे वंश-परंपरा और रक्त के प्रभाव का समर्थक था। अपने पिता के जीवन के उतार-चढ़ाव को अपने जीवन से तुलना करते हुए उसने कहा था—मेरे पिता की मृत्यु ३६ वर्ष की आयु में हुई थी। वे कोमल, सहृदय किन्तु रोगिष्ट थे, मानों उनका जीवन था ही अल्पकाल के लिए। वे जीवन नहीं, प्रत्युत जीवन की गौरवपूर्ण स्मृति-मात्र थे। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक उसी आयु में गिरना आरंभ हुआ, जब उनका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा था। ३६ वर्ष की आयु में मेरी शक्ति और स्फूर्ति भी न्यूनतम हो गई थी। जीवित तो मैं अभी तक हूँ; परन्तु मैं अपने सामने तीन पग आगे की वस्तु भी भली भाँति नहीं देख पाता। १८७९ ई० में मैंने बेसेल के प्राध्यापक पद से त्याग-पत्र देकर सेन्ट मेरिटज में ग्रीष्मकाल-पर्यन्त क्षीण छाया के समान जीवन व्यतीत किया। और उसके पश्चात् शीतकाल आने पर—जो कि मेरे जीवन का बड़ा ही दुःखद भाग था—मैं नौमबर्ग में उदासीन जीवन व्यतीत करता रहा।

जीवन-पर्यन्त नित्जे अविवाहित ही रहा। ४४ वर्ष की अवस्था में उसने लिखा था कि मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। सम्मान, स्त्री और धन की अभिलाषा से मैं बहुत दूर हूँ। मेरी इस उदासीनता का कारण इन वस्तुओं का अभाव नहीं है।

शारीरिक और मानसिक जिन परिस्थितियों का उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लेख हुआ है, उन्होंने नित्जे के जीवन-संबन्धी दृष्टिकोण को एक विशिष्ट रूप प्रदान कर दिया था। जीवन के संघर्ष में संतत संलग्न रहते-रहते उसके हृदय में दृढ़ आत्म-विश्वास हो गया था।

नित्जे का निम्नोक्त कथन उसके इसी आत्म-विश्वास का परिचायक है। एक स्थान पर उसने लिखा है कि, 'मैंने जीवन की उत्कृष्ट तथा सामान्य बहुत सी बातों को एक ऐसे रूप में अनुभव किया है, जिस रूप में सामान्यतः लोग उनका अनुभव नहीं करते। स्वास्थ्य और जीवन की प्रबल लालसा के आधार पर ही मैंने अपने सिद्धान्त निश्चित किये हैं। और मैं चाहता हूँ कि इसे लोग भलीभाँति समझें। जीवन के उन दिनों में, जब मैं अत्यधिक निर्बल हो गया था, मैंने निराशावाद को तिलांजलि दे दी थी। आत्मोद्धार की कामना ने मुझे नैराश्य और निर्धनता के सिद्धान्तों को आत्मसात् न करने दिया। हाँ, तो प्रकृति के श्रेष्ठतम निर्माण मानव को हम कैसे समझें? श्रेष्ठतम मानव हमारी भावनाओं को परितृप्त करता है। मानों वह लकड़ी के एक ऐसे कुन्दे से गढ़ा गया है, जो कठोर

भी है, साथ ही मधुर और सुगंधित भी है। वह केवल उन वस्तुओं का उपभोग करता है, जो उसके लिए उत्तम हैं। और जब इस उत्तमता की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है, तब उसके आनंद और इच्छाओं का भी अंत हो जाता है। वह आपत्तियों के निराकरण के हेतु युक्तियां निकालता है। वह जानता है कि आपत्तिजनक घटनाओं से भी कैसे लाभान्वित हुआ जा सकता है। वे सब वस्तुएं जो उसका संहार नहीं करतीं, उसे अधिक सशक्त बना देती हैं। वह जो देखता-सुनता और अनुभव करता है, उससे स्वभावतः कुछ न कुछ अनुभव प्राप्त कर लेता है। वह चुने हुए सिद्धान्तों का संग्राहक होता है और शेष सब को छोड़ देता है। ऐसा व्यक्ति अपना साथी स्वयं ही होता है। चाहे उसका संसर्ग पुस्तकों से हो चाहे इतर व्यक्तियों अथवा प्राकृतिक दृश्यों से! किन्तु आदर वह उन्हीं वस्तुओं का करता है जिन्हें वह स्वयं चुनता है; अथवा जिन्हें वह स्वीकार करता है और जिन पर उसे विश्वास होता है। सभी प्रकार की उत्तेजनाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया धीमी होती है। दीर्घकाल तक सावधानी और समझदारी से काम लेते-लेते उसमें यह जो बुद्धिमत्तापूर्ण दीर्घसूत्रता उत्पन्न हो जाती है, उसीसे वह प्रत्येक उत्तेजक परिस्थिति का मूल्यांकन करता है और जल्दी उसकी ओर आकृष्ट नहीं होता। वह दुर्भाग्य अथवा पाप पर विश्वास नहीं करता। वह दूसरों के साथ और स्वयं अपने आपके साथ भी संतुलन का भाव रखता है। उसे कुछ बातों की उपेक्षा करना भी आता है, और वह इतना सशक्त होता है कि प्रत्येक बात से लाभ उठा लेता है।'

कुछ लोगों का मत है कि नित्जे की रचनाओं में अनर्गल प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनके विचारानुसार यदि नित्जे की विचार-धारा अधिक प्रचलित हो जाय तो विश्व में प्रलय और सर्वनाश का दृश्य उपस्थित होने में अधिक समय नहीं लगेगा। नित्जे की सर्वश्रेष्ठ रचना 'दस स्पेक जरास्थुस्त्रिया' है। इस रचना को कुछ लोग भले ही अच्छा न समझें, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि विश्व-साहित्य के इतिहास में इस पुस्तक का स्वतन्त्र तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है। केवल घृणा की दृष्टि से इसे अलग हटाकर नहीं रखा जा सकता। इस पुस्तक की प्रस्तावना में नित्जे की बहिन ने लिखा है कि—'जरास्थुस्त्रिया मेरे भाई की निजी रचना है। यह व्यक्तिगत अनुभव, आशा, निराशा और सुख-दुःख की घटनाओं का इतिहास है। मेरे भाई के मस्तिष्क में जरास्थुस्त्रिया की आकृति युवावस्था में स्थापित हो

गई थी। वह जीवन के विभिन्न समय में उसका स्वप्न देखता रहा।' जरास्थुस्त्रिया के कथानक एवं उसके प्रमुख पात्र पर पारसियों के अवेस्ता का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।' जरास्थुस्त्रिया एक प्रकार के रहस्यवादी धार्मिक विश्वास की स्थापना करता है; जिसे सामान्यतः 'जरोस्तर धर्म' कहते हैं। उपर्युक्त पुस्तक में जिस गृद्ध और सर्प इत्यादि का उल्लेख है, वे सब फारसी के प्रतीक हैं। नित्जे ने इस प्रकार प्रतीक रूप में अपने संदेश, भावनाओं और सिद्धान्तों की बड़ी कुशलता से अभिव्यक्ति की है।

नित्जे एक महामानव (सुपरमैन) में विश्वास करता था। उसका कहना था कि एक सम्पूर्ण राष्ट्र की विजय-गाथा कैसे गाई जा सकती है? प्रत्येक राष्ट्र में व्यक्ति की ही प्रधानता पाई जाती है। यूनानियों को विशेष महत्त्व इसी कारण प्राप्त है कि उनके राष्ट्र में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने जन्म लिया था।

नित्जे का विश्वास था कि महामानव की कल्पना को यथार्थ रूप देने में ही मानव जाति का कल्याण अन्तर्निहित है। उसकी धारणा थी कि ईसाई धर्म कायरों और पददलितों के आक्रोष का परिणाम है। इसी से उस धर्म ने उन सब बातों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है जो सुन्दर, परिपुष्ट और दृढ़ता से ओत-प्रोत हैं। वस्तुतः ये सभी गुण शक्ति के आश्रित हैं। अतः इस प्रतिबन्ध के परिणामस्वरूप उन सब शक्तियों को, जो जीवन को उन्नत और अग्रसर करने वाली हैं, बहुत अधिक महत्त्व-हीन बना दिया गया है। अब यह आवश्यक हो गया है कि लोगों के सम्मुख यथार्थ मूल्यांकन की एक नवीन कसौटी उपस्थित की जाय। यह कसौटी एक सशक्त, बलिष्ठ और महान् मानव के रूप में होनी चाहिए, जो जीवनी-शक्ति से परिपूर्ण और पूर्ण उन्नत हो। यह कसौटी आजकल के उस तथाकथित महामानव से सर्वथा भिन्न है जिसके जीवन का उद्देश्य भावनाओं, आशाओं और आकांक्षाओं का दमन मात्र है। महामानव की प्राचीन धारणा ने—जो कि अशक्तों, निर्बलों और कायरों के ही अनुकूल है—जिस प्रकार आज भी अशक्त और निर्बल मानव-जाति को जन्म दिया है, ठीक उसी प्रकार महामानव की यह नवीन कल्पना एक सशक्त बलवान्, स्वस्थ और साहसी मानव का निर्माण करेगी, जो स्वयं जीवन का गौरव होगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि, इस नवीन सिद्धान्त का प्रमुख सूत्र यह है कि शक्ति के द्वारा उद्भूत और परिचालित सभी वस्तुएँ श्रेष्ठ हैं और निर्बलता से उत्पन्न सभी वस्तुएँ हेय हैं।

नित्जे की विचार-धारा ठोस तर्कों पर आधारित होते हुए भी ईसाई धर्म के मान्य सिद्धान्तों के प्रतिकूल थी। यही कारण था कि जर्मनी तथा योरोप में अन्यत्र भी, लोग उसे नास्तिक समझने लगे थे। नित्जे पत्र-व्यवहार मे दीर्घसूत्री न था। उसके जो पत्र उपलब्ध हैं उनमें भी इस बात का बराबर संकेत मिलता है कि लोग उसे ईसाई धर्म और ईसामसीह का विरोधी समझते थे; किन्तु नित्जे को इसकी चिन्ता न थी। अंत तक उसकी विचार-धारा अक्षुण्ण बनी रही थी। निराशा की भावना से दूर रहने का प्रयत्न करते हुए भी अज्ञात रूप से एक प्रकार की निराशा उसे व्यथित करती रहती थी। विरोधियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती थी, साथ ही उसका स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा था। इन सब बातों के होते हुए भी नित्जे अध्ययन, गम्भीर चिंतन तथा साहित्य-निर्माण में तल्लीन था। जरास्थुरिया के प्रथम भाग को उसने केवल १० दिनों में लिख डाला था। इस पुस्तक के शेष तीन भाग भी क्रमशः इसी प्रकार बहुत थोड़े दिनों में ही लिख डाले गए थे। अतः यहाँ कहना पड़ता है कि किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से एक आवेश प्राप्त करके नित्जे ने अपने इस ग्रंथ की रचना की थी। यद्यपि नित्जे ने स्वतः अफलातून की हँसी उड़ाते हुए कहा था कि 'वह किस प्रकार स्वप्न में एक आदेश अथवा प्रेरणा प्राप्त करके अपनी पुस्तकों को लिख डालता था।' परन्तु वास्तव में नित्जे ने भी किसी अज्ञात शक्ति के बल से ही अपने ग्रंथ का निर्माण किया था, अन्यथा ऐसी विषम परिस्थितियों में ऐसी गम्भीरता से मौलिक ग्रंथों का प्रणयन कदापि संभव नहीं था।

स्वास्थ्य की क्षीणता और अथक परिश्रम ने नित्जे को अंतिम दिनों में विक्षिप्त कर दिया था। १८८८ ई० के अंत में नित्जे का मस्तिष्क विकृत होने लगा था। अंतिम दिनों में उसके अनेक पत्रों में इस विक्षिप्त दशा का स्पष्ट आभास मिलता है। अब उसकी आत्मप्रशंसा का स्वर भी कुछ धीमा पड़ गया था। वही नित्जे, जो कभी कहा करता था कि अपने ग्रंथों को पढ़ने के लिए उसे थोड़े से ही पाठकों की आवश्यकता है; अब अपने ग्रंथों को न समझ सकने के कारण जर्मन जनता पर झुँझला उठता था। अब वह यह चाहता था कि पेरिस और पीटर्सबर्ग में उसे कुछ ऐसे व्यक्ति मिल जायें जो फ्रांस और रूस में उसकी ख्याति फैला सकें। उसके एक मित्र ने कुछ ऐसे व्यक्तियों के पते भी उसे बताए; किन्तु उन लोगों के पास पुस्तकें पहुँचने के पहले ही उसने एक जर्मन पत्रिका में लिखा था

कि लोग पेरिस और पीटर्सबर्ग में उसके ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, परन्तु जर्मनी की जनता उसका समुचित आदर नहीं करती।

कुछ लोगों की धारणा है कि नित्जे में आरंभ से ही कुछ पागलपन विद्यमान था और यही पागलपन बढ़ते-बढ़ते उसके अंतिम दिनों में स्पष्टतः परिलक्षित होने लगा था। लोगों की इसी भ्रान्त धारणा ने यह विचार फैला दिया है कि नित्जे के ग्रंथ एक पागल व्यक्ति के ग्रंथ हैं; परन्तु यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। उसके ग्रंथों में पुष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन और मौलिक विचारों का सुव्यवस्थित प्रदर्शन सर्वत्र दिखाई देता है। अपने मित्रों से वार्तालाप करते समय एवं पागल होने के पूर्व उसके विस्तृत पत्र-व्यवहार में भी विकृति का कहीं कोई चिह्न न था। वस्तुतः उसके जीवन में पागलपन का उदय सहसा हुआ था। संभवतः अपना उन्निद्र रोग दूर करने के लिए उसने क्लोरल का अत्यधिक सेवन किया और इसके अतिरिक्त अधिक मानसिक परिश्रम, एकान्तवास, निराशा इत्यादि सभी बातों के कारण उसका मस्तिष्क अंतिम दिनों में विकृत हो गया था। इस उन्माद के कारण उसे 'जेना' के एक मानसिक चिकित्सालय में भी कुछ समय तक रहना पड़ा था। कुछ अच्छे होने पर वह नौमबर्ग में अपने घर चला आया था। कुछ दिनों बाद वहाँ से उसकी बहिन उसे 'वीमर' नगर में, एक मकान में, ले गई थी। वहाँ तीन वर्ष पश्चात् इस प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति का देहावसान हो गया।

अनाटोले फ्रांस

(१८४४–१९२४ ई०)

अनाटोले फ्रांस अनीश्वरवादी था; किन्तु उसकी रचनाएँ अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण हैं और वह फ्रांस का एक महान् लेखक माना जाता है।

अनाटोले फ्रांस का जन्म पेरिस में हुआ था। उसका पिता पुस्तकों का व्यवसाय करता था। पेरिस में पुस्तकों की उसकी एक दूकान थी। पुस्तकें बेचने से अधिक उन्हें पढ़ना उसे विशेष प्रिय था। वह राज्य-सत्ता और कैथलिक धर्म का पक्षपाती था। मानव-जीवन की विषादमय स्थितियों के

सम्बन्ध में उसके बड़े पुष्ट विचार थे और वह स्वयं भी उसी वातावरण में उलझा हुआ था। उसकी दूकान पर ऐसे लोग एकत्र होते जो जनतंत्र और क्रान्ति का विरोध करते थे। युवक अनाटोले उन लोगों के वार्तालाप को बड़े ध्यान से सुनता था।

अनाटोले की शिक्षा कालेज में हुई थी; किन्तु उसकी रुचि पढ़ने में नहीं लगती थी। वह काल्पनिक था। वह प्रायः क्लिओपेट्रा जैसी ऐतिहासिक नारी और सन्तों का स्वप्न देखता था। वह संसार का इतिहास चालीस खण्डों में पूर्ण करना चाहता था।

उसका विकास बड़ी मन्द गति से हुआ। वह आलसी था। उसका पिता चाहता था कि उसका पुत्र किसी उद्योग में लगे और कोई वृत्ति ग्रहण करे। अनाटोले कुछ निश्चित नहीं कर पाता था। वह दुकान पर बैठा रहता, पुस्तकें पढ़ता और ग्राहकों की प्रतीक्षा करता। वह विज्ञापन, सूचीपत्र आदि बनाने में अपने पिता को सहयोग देता था। वह कविता करता था। वह अपनी जीविका के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता था। तीस वर्ष की अवस्था में उसने सेनेट लाइब्रेरी में कुछ कार्य करना आरम्भ किया; लेकिन कुछ समय बाद मतभेद के कारण उसने त्यागपत्र दे दिया।

इसके बाद वह पत्रों के लिए लेख और पुस्तकों की प्रस्तावना लिखकर धन उपार्जित करता रहा। उसने अपना विवाह एक ऐसी स्त्री से किया, जिसके स्वभाव के कारण उसका जीवन अस्त-व्यस्त रहा। अन्त में उसका पारिवारिक जीवन इतना कलहपूर्ण हुआ कि उसने अपनी पत्नी को त्याग दिया। इन घटनाओं के कारण साहित्य की ओर उसकी रुचि अग्रसर होती गई। इसका विवरण उसके उपन्यास 'बीकर-बर्क बोमन' में वर्णित है।

आनाटोले फ्रांस के साहित्यिक कार्यों में मैडेम-डी-काईलवेट का विशेष प्रभाव पड़ा। इस महिला के जीवन का एकमात्र उद्देश्य यह था कि अनाटोले अपनी साहित्य-साधना में सफल और यशस्वी हो। अनाटोले और इस महिला के सम्बन्ध के विभिन्न अंगों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। साहित्य में बहुतेरे अनुसन्धान हुए और अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद करने के बाद अनाटोले इसी महिला के यहाँ आकर निवास करने लगा था। वह सदैव उसके साहित्यिक कार्यों में सहयोग देती थी और नियमित रूप से लिखने के लिए उसे बाध्य करती थी। वह स्वभाव से ही आलसी था, किन्तु इस महिला के शासन में प्रति-

दिन कई घण्टों तक उसे कार्य करना पड़ता था। वह इतनी शिक्षित भी थी कि अनाटोले को परामर्श और सहयोग देने में उसकी योग्यता का परिचय मिलता है।

१८८१ ई० में लेखक का प्रसिद्ध उपन्यास 'दी क्राइम आफ सिल्वेस्त्रे बोनार्ड' प्रकाशित हुआ। फ्रेंच एकेडमी के एक पुरस्कार के लिए ही उसने इस रचना को प्रस्तुत किया था। इसके बाद ही वह एकेडमी का सदस्य चुना गया। उसकी ख्याति फैल गई। उसने अपना अन्य उपन्यास 'माई फ्रेन्डस् बुक' लिखा। इससे उसकी प्रतिष्ठा उच्च शिखर पर पहुँच गई। ४८ वर्ष की अवस्था में वह 'टेम्पस्' नाम के पत्र में साहित्यिक आलोचक के रूप में प्रकट हुआ। उसकी विवेचना गम्भीर होती थी। बचपन से ही पुस्तकें पढ़ने के कारण उसके विचार पुष्ट हो गये थे और उसकी शैली आकर्षक थी।

अनाटोले फ्रांस की शैली सर्वप्रिय है। उसके उपन्यास दार्शनिक गम्भीरता के कारण कुछ शुष्क अवश्य हैं; किन्तु उनमें जीवन की जटिल समस्याओं का दिग्दर्शन है। जीवन के प्रति लेखक की धारणा थी कि इस संसार में हमारा ज्ञान बहुत अल्प है और जब हमारे ज्ञान का विकास होता है तब हम इस संसार को छोड़कर चले जाते हैं। किसी विषय पर लेखक अपना मत स्थिर नहीं करता। सभी विषयों पर उसका उत्तर होता है—सम्भवतः। और इसी सन्देह के कारण उसके अविश्वास का जन्म हुआ है।

अनाटोले फ्रांस का 'थायस' उपन्यास उसकी समस्त कृतियों से भिन्न है। यह अत्यन्त आकर्षक उपन्यास है। इसमें एक महान् तपस्वी के पतन का बड़े स्वाभाविक रूप में वर्णन हुआ है। कल्पनाओं ने कैसे वास्तविक रूप ग्रहण किया और कैसे वह तपस्वी थायस नामक एक वेश्या के सम्मुख आत्मसमर्पण करता है? वासना के प्रति विचारों का द्वन्द्व बड़ी कुशलता से वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि फ्लोबेयर के यथार्थवाद का लेखक के ऊपर प्रभाव पड़ा था। थायस का छायानुवाद श्री प्रेमचन्द जी ने हिन्दी में किया था; किन्तु उसमें वह सौन्दर्य नहीं है जो अंग्रेजी अनुवाद में है।

अनाटोले फ्रांस ने अधिक आयु प्राप्त की थी, अतएव उसने अपने जीवन में दर्जनों उपन्यास लिखे। उसके श्रेष्ठ उपन्यासों में 'पेनगुन आइलैंड', 'दी गाड्स आर एथिस्ट' का विशेष महत्त्व माना जाता है।

अनाटोले फ्रांस को नोबेल पुरस्कार मिला था। उसकी कीर्ति विश्वव्यापी थी। वह साहित्य का एक अमर पुजारी है। उसने अपने जीवन में अन्य लेखकों की भाँति कभी दरिद्रावस्था का अनुभव नहीं किया था। उसे अपने पिता की सम्पत्ति प्राप्त हुई थी और इसके अतिरिक्त उसकी पुस्तकों की रायल्टी से इतना धन प्राप्त होता था, जो उसके लिए पर्याप्त था। यह सब होते हुए भी मानव-समानता के सिद्धान्त का वह समर्थक था।

अनाटोले का जीवन सदैव ऐश्वर्य और सुख में ही व्यतीत हुआ; किन्तु उसकी कृतियों में मानव-जीवन के प्रति व्यंग्य भरा पड़ा है। अन्तिम काल में वह अपने नाती के साथ दिन व्यतीत कर रहा था। मैडेम कार्डलवेट की मृत्यु हो गई थी। उसके जमाता ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की थी और अनाटोले की पुत्री का भी देहान्त हो गया था।

अनाटोले वृद्धावस्था में स्वयं अपनी लम्बी आयु से ऊब उठा था। मानव-जीवन में माता का स्थान कितना स्नेहमय और महत्त्वपूर्ण है, इसका उदाहरण अनाटोले के अन्तिम वाक्य में है। अस्सी वर्ष का एक वृद्ध मृत्यु-शय्या पर पड़ा अचेतनता में बार-बार अपनी माँ को पुकार रहा था।

सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि जीवन भर भगवान् के अस्तित्व में अविश्वास करनेवाले इस महापुरुष की मृत्यु-शय्या के समीप एक पादरी भी बैठा था, जिसे आशा थी कि वह अपनी आत्म-स्वीकृति और पश्चात्ताप प्रकट करेगा और इस मरनेवाले नास्तिक को वह सीधे स्वर्ग भेज देगा, किन्तु इस क्रिश्चियन प्रथा का प्रदर्शन उसके लिए व्यर्थ था।

फ्रांस के एक नगर टूर्स के समीप उसके ग्राम्य-निवास में ही उसकी मृत्यु हुई थी और उसका शव-संस्कार बड़े सम्मान से किया गया था।

मोपासां

(१८५०–१८९३ ई०)

मोपासां एक विलक्षण कहानी-लेखक था। विश्व में कहानी-कला को परिष्कृत और सुन्दर रूप देने का महत्त्व फ्रांस के इस अमर लेखक को ही प्राप्त है।

उस समय सभी लोग यह कहते थे कि यह पेरिस का अत्यन्त निर्लज्ज युवक है। पेरिस के सभ्य लोग उससे घृणा करने लगे थे। उसकी एक अश्लील कविता के लिए पुलिस उसे कोर्ट में ले गई थी।

मोपासां की माँ बड़ी भावुक थी और वह प्रायः कल्पना-लोक में विचरण करती थी। उसका भाई एक प्रतिभासम्पन्न कवि था, जिसकी असमय में ही मृत्यु हो गई थी। वह आशा की अट्टालिका पर बैठी हुई यही स्वप्न देखा करती थी कि किसी दिन उसका पुत्र सफल और कुशल पुरुष बनेगा।

मोपासां को आरम्भ से ही देवी देवताओं की ओर आकर्षित किया गया था; किन्तु वह विभ्रान्त होकर समुद्र-तट पर चला जाता था। वहाँ वह प्रायः रात्रि में अपने दो कुत्तों को साथ लेकर समुद्री मछली खोजवाया करता था। पुरस्कार के प्रलोभन से मछुए उसका साथ देते थे। इसके अतिरिक्त वह किसानों के सभी खेलों में भाग लेता था। समुद्र की निर्मल और शीतल वायु उसके जीवन में उमंग उत्पन्न करती थी। वह उत्सवों और मेलों में युवतियों के साथ नृत्य करता था। मार्ग में चलते हुए वह किसी अपरिचित व्यक्ति से भी बातें करने लगता था। किसी ऊँची चट्टान पर खड़ा होकर वह दूरबीन लगाकर दूर की रेखाओं को देखता रहता, और उसके हृदय में यह भावना उठती कि वह समुद्र पर भ्रमण करने वालों का वंशज है, और उसकी धमनियों में उन्हीं का रक्त संचरित है। उसे ऐसा

प्रतीत होता था कि बसन्त ऋतु में प्रातःकाल अपनी नौका किसी अज्ञात बंदरगाह की ओर छोड़ने से बढ़कर दूसरा कोई उत्तम सुख नहीं है।

मोपासां की माँ सदैव उसका पथ-प्रदर्शन करती रहती थी। उसने उसे युवावस्था में पादरियों के मठ में भर्ती कर दिया था; परन्तु मोपासां पादरी नहीं बनना चाहता था। वह मठ में रखे हुए शराब के पीपों के पास पहुँचकर, अपने साथियों के साथ बड़े आनंद से शराब पीता। अंत में जब मठ के अधिकारियों को यह रहस्य ज्ञात हुआ, तब उन्होंने मोपासां को वहाँ से निकाल दिया। इस प्रकार वह स्वतन्त्र हुआ।

मोपासां की इच्छा अब कानून का अध्ययन करने की थी। इस सम्बन्ध में उसने कुछ परीक्षाएँ भी दीं और उनमें वह उत्तीर्ण भी हुआ। उधर १८७० ई० में प्रशिया से युद्ध छिड़ गया। अतः मोपासां फ्रांस की सेना में भर्ती हो गया। सैनिक जीवन उसे रुचिकर प्रतीत न हुआ; किन्तु जब फ्रांस की सेना पीछे हट गई, तब जर्मनी से बदला लेने की प्रवृत्ति उसके हृदय में जाग्रत हुई। घृणा और प्रेम की निरन्तर भावना के मध्य में उसकी प्रतिभा का विकास हुआ। उन दिनों वह प्रेम-सम्बन्धी कविताएँ लिखने लगा था।

युद्ध समाप्त होने पर वह पेरिस गया। अब उसका ध्यान पुनः कानून की शिक्षा प्राप्त करने की ओर आकृष्ट हुआ; परन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने से उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। जीवन-निर्वाह के हेतु अब उसे कुछ कार्य करना आवश्यक हो गया था। उसे सरकारी विभाग में क्लर्क का काम मिला। उन दिनों प्रतिभासम्पन्न अनेक लेखक और कवि पेरिस की गन्दी गलियों में अपने दिन काट रहे थे। सभ्य संसार को न उनकी चिन्ता थी और न कोई उधर ध्यान ही देता था।

दिन भर काम करने के बाद मोपासां रात्रि में उद्यानों और सड़कों का चक्कर लगाता रहता। नौका लेकर सेनी नदी पर जल-विहार करना ही उसे अत्यन्त प्रिय था। मध्य रात्रि में नाविक सहसा उसे देखकर आश्चर्य करते थे।

मोपासां का व्यक्तित्व प्रभावशाली था; किन्तु उसे मस्तिष्क-पीड़ा का रोग था। धीरे-धीरे उसका वह रूप बढ़कर उन्माद में परिणत हो गया। वह घण्टों शीशे में अपनी भिन्न-भिन्न आकृति देखता रहता। जाड़े की रात्रि में उसका एकाकी-जीवन विकलता की चादर ओढ़कर चुपचाप विचारों की गुत्थियाँ बाँधता रहता था।

मोपासां आरम्भ से ही बातचीत करने में बड़ा कुशल था। किसानों, मछुओं, अभिनेत्रियों आदि के मुँह से सुनी हुई कहानियाँ एवं उनके व्यक्तिगत अनुभव ही मोपासां के अध्ययन के विषय थे।

फ्रांस का महान् यथार्थवादी लेखक फ्लोबेयर मोपासां का पथ-प्रदर्शक और गुरु था। रविवार को मोपासां अपनी रचनाएँ लेकर उसके पास जाता और बड़े ध्यान से अपनी रचनाओं पर नीली पेंसिल को दौड़ते हुए देखता। सात वर्ष तक मोपासां नियमित रूप से अपने शिक्षक के आदेश पर चलता रहा। अन्त में फ्लोबेयर की मृत्यु पर वह विचलित हो उठा। उसने स्वयं उसके शव को नहला-धुलाकर अंतिम-संस्कार में भाग लिया।

फ्लोबेयर ने उससे कहा था—किसी भी वस्तु अथवा जीवन के किसी भी अंग पर गूढ़ दृष्टि से उसकी छान-बीन करते रहो और बार-बार सावधानी से उसकी परीक्षा करते रहो।

मोपासां का मामा फ्लोबेयर के अन्तरंग मित्रों में से था। पारिवारिक सम्बन्ध होने के कारण फ्लोबेयर उसे अपनी संतान की भाँति प्यार करता था। इसके अतिरिक्त इन दोनों के विचारों और जीवन में भी समानता थी।

मोपासां की पीड़ित आत्मा के सम्मुख सौन्दर्य की देवी की वाणी सुनाई देती थी। एक मूर्ति-पूजक की भाँति वह कहता—मैं एक पक्षी की भाँति स्वर्ग से प्रेम करता हूँ। एक भेड़िए के सदृश मैं जंगल को प्यार करता हूँ, पहाड़ी हिरनों की तरह चट्टानों को और घोड़ों की भाँति घास पर चरना पसंद करता हूँ। निर्मल जल में मछलियों की भाँति तैरना मुझे प्रिय है। मैं एक ऐसे कम्प का अनुभव करता हूँ, जो प्रत्येक जन्तु में समान रूप से विद्यमान रहता है। मैं मनुष्य की भाँति नहीं, प्रत्युत जन्तु की भाँति संसार से प्रेम करता हूँ।

पशु-पक्षियों की पीड़ित अवस्था देखकर उसकी आत्मा विह्वल हो उठती थी। इन मूक जीव-जन्तुओं की कहानियों को उसने इतनी कुशलता से उपस्थित किया है कि पढ़कर उनके प्रति अनायास ही सहानुभूति और करुणा उत्पन्न हो उठती है।

मोपासां के इन वाक्यों में उसकी कथा का रहस्य छिपा हुआ है—'जितने अधिक मनुष्य हैं उतने ही प्रकार सत्य के भी हैं। हममें से प्रत्येक अपने लिए संसार का एक भ्रामक रूप कल्पित कर लेता है। यह भ्रम अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार काव्यगत, भावगत, आनन्दप्रद, उदासीन, अपूत अथवा भयप्रद हुआ करता है। सौन्दर्य का भ्रम एक

मानवीय नियम है। कुरूपता का भ्रम एक परिवर्तनशील सम्मति है। निकृष्टता का भी भ्रम है जो इतना आकर्षित करता है। महान् कलाकार वे ही हैं जो लोगों में अपना विशेष भ्रम मान्य करा लेते हैं।'

निरीक्षण और मनन के संसार में मोपासां अपने आपको खो बैठा था। उसकी आंखें धंस गई थीं। वह मृत्यु से भयभीत हो उठा था। उसकी कहानियों में जिन भूत-प्रेतादि का वर्णन है, वे स्वयं उसी के जीवन के रहस्यमय क्षणों की घटनाएँ हैं।

एक दिन दोपहर के समय उसने अपने कमरे में प्रवेश किया। वहाँ उसने स्वयं अपनी ही प्रतिमूर्ति को पहले से बैठे हुए देखा। वह प्रतिमूर्ति वही पुस्तक पढ़ रही थी, जिसे वह पढ़ते-पढ़ते वहाँ छोड़कर चला गया था। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर जब वह मेज के पास बैठा हुआ लिख रहा था, तब उसने अपने ही प्रतिरूप को शान्त भाव से अपने सामने बैठे हुए, उसी कहानी को लिखते हुए देखा। इस दृश्य से अत्यंत भयभीत होकर वह उस छाया को हटाने का प्रयत्न करने लगा था। अपने जीवन की ऐसी ही घटनाओं से प्रेरित होकर उसने 'ला होरला' शीर्षक एक कहानी लिखी थी, जिसमें एक ऐसे मनुष्य का वर्णन है जो अपनी ही प्रतिच्छाया से भ्रमित और अनुसरित होता है। मृतकों का चीत्कार जैसे उसके रक्त में स्पन्दन बनकर व्याप्त हो गया था। शीतकाल की रात्रि में कभी वह उन भुनगों पर विचार करता जो केवल कुछ घण्टों तक ही जीवित रहते हैं। कभी वह उन पशुओं पर विचार करता जो कुछ दिनों तक जीवित रहते हैं। कभी वह मनुष्यों पर विचार करता, जिनका जीवन कुछ वर्षों का होता है; और कभी वह इस संसार पर विचार करता जो कुछ शताब्दियों तक स्थिर रहता है। वह अपने मन से पूछता कि विश्व और पतंगों में आखिर क्या अन्तर है?

उसे अपने चारों ओर मृत्यु का ताण्डव-नृत्य दिखाई देता था। उसने अपनी इस मनोदशा का इन शब्दों में वर्णन किया है—मृत्यु अब मुझे अपने इतने निकट दिखाई देने लगी है कि मैं उसे अपने हाथ फैलाकर दूर हटा देना चाहता हूँ, मुझे तो वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। मार्ग में पिस जानेवाला एक छोटा-सा कीड़ा, पेड़ से गिरनेवाली पत्तियाँ, अपने किसी मित्र के सिर में उगनेवाले सफेद बाल, सभी मेरे हृदय को व्यथित करते और मानों चिल्लाकर मुझसे कहते हैं कि देख इसे देख! इसने तो मेरी सभी बातों पर आधिपत्य जमा लिया है। जो कुछ मैं देखता

और खाता-पीता हूँ, वे सब वस्तुएँ जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, स्वच्छ निर्मल चाँदनी, मनोरम सूर्योदय, विस्तीर्ण सागर, स्वच्छन्द सरिताएँ, मधुर वसंत-कालीन संध्या, सुरभित समीर, सभी का आनन्द जैसे विनष्ट हो गया है।

मोपासां अब सभ्य संसार के योग्य नहीं था। लोग उसे पागल समझते थे। वह एकान्त में एक निर्वासित की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। उन्हीं दिनों उसे अपने छोटे भाई की बीमारी का समाचार मिला। वह उसे देखने गया। उसका अंतिम समय था। अपने प्यारे भाई को देखने के लिए उसने आँखें खोलीं और जैसे बचपन में वह अपने भाई से कहा करता था ठीक उसी तरह उसने कहा—'चलो बगीचे में हम लोग खेलें।' और उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

मोपासां ने उसकी आंखों से आँसू पोंछे, परन्तु अब वे नेत्र सदैव के लिए बन्द हो चुके थे। डाक्टरों ने एक दिन पूर्व ही उसके अंत की सूचना दे दी थी। अपने भाई के लिए ही उसके प्राण अटक रहे थे। वह जीवित था केवल अपने भाई को एक बार देखने के लिए, उसके साथ खेलने के लिए।

मोपासां की मनोदशा अस्वस्थ थी; किन्तु विधाता की इच्छा उसे एक महान् कलाकार बनाने की थी, अतः इस दशा में भी उसकी प्रतिभा का विकास होता रहा। उसकी भावुकता धीरे-धीरे उच्च शिखर पर पहुँच गई, तथा मानव-प्रेम की अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ उसकी सशक्त लेखनी से प्रसूत हुई। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि उसने दाँत निपोरनेवाले मनुष्य तक का बड़ा सजीव चित्रण किया है। उसके प्रत्येक पात्र में जीवन का यथार्थ स्पन्दन विद्यमान रहता है। घृणा, प्रेम, क्रोध, दया इत्यादि जिन भावों को उसने अंकित किया है, पात्रों के रूप में उनका साकार रूप खड़ा हो गया है। विलक्षण व्यक्तियों और अभागों का चित्रण इतना स्वाभाविक है कि वे पात्र पाठकों के मानसिक नेत्रों के सम्मुख मूर्तिमान् हो उठते हैं, मानों वे स्वयं सत्य से भी अधिक सच्चे हैं। मोपासां अपने पात्रों को पाठकों के सम्मुख मनोवैज्ञानिक रूप में उपस्थित करके उनके मूल्यांकन का भार पाठकों पर ही छोड़कर स्वयं तटस्थ हो जाता है।

मोपासां की विक्षिप्तावस्था दिन-दिन बढ़ती जाती थी। अब उसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों उसके कमरे की मेज, कुर्सी, लैम्प इत्यादि वस्तुएँ जानवरों का रूप धारण करके सड़क पर चल-फिर रही हैं। मानों उसके रक्त में अगणित कीटाणु अपना प्रभाव दिखा रहे हैं। पृथ्वी पर पैर रखते

ो वह काँपने लगता था। एक बार मैदान में उसका रसोइया फ्रेंकोइस
ो सहारा देकर ले जा रहा था। उस समय मोपासां ने गिरजाघर के
मीप ईसा की मूर्ति की ओर संकेत करते हुए कहा—सचमुच महान्
तिभासम्पन्न तथा अखिल सृष्टि के इस महापुरुष ने पृथ्वी पर जन्म
लया था, और केवल तेंतीस वर्ष की अवस्था में ही उसके प्राण ले लिये
ये। मैं तो अब ४१ वर्ष का हो रहा हूँ।

कुछ ऐसी ही मनोदशा में मोपासां के जीवन के दो वर्ष और व्यतीत
ा गये। नूतन वर्ष आरंभ हुआ था। कुछ घण्टे बीते थे। मोपासां ने
स्तौल लेकर अपने मस्तक पर चला दी; लेकिन उसमें गोलियाँ नहीं थीं।
ह खाली थी। अब क्या करे? सामने एक उस्तरा पड़ा था। उसने
त्काल उसे उठाकर अपने गले की नस काट दी। रक्त की धारा बह
ठी, किन्तु वह मुस्करा रहा था। इसी समय भोजन की सूचना देने के
लए जब रसोईदार आया तो यह दृश्य देखकर आश्चर्य और भय से
ाँपने लगा। मोपासां ने उससे कहा—'तुम जानते हो फ्रेंकोइस, मैंने यह
या किया है? मैंने अपना गला काट दिया है।' निश्चय ही यह
ोपासां के पागल हो जाने का जाज्वल्यमान प्रमाण है। प्रकृतिवादी मोपासां
 एक अंतिम प्रयोग मानव-पशु पर भी कर डाला था; किन्तु यह उसके
योगों का अंत था। डाक्टरों ने पट्टी बाँधकर खून की गति बन्द की।
ातःकाल का समय था। आकाश धूमिल था। लोगों ने उसे समुद्र-तट
र ले जाना ठीक समझा। उन्हें विश्वास था कि अपने परम प्रिय दृश्यों
ो देखकर सम्भवतः वह चैतन्य हो जायगा। मोपासां कुछ देर तक
पनी नौका की ओर देखता रहा। उसकी जिह्वा ठीक ऐसे बालक की
रह चल रही थी जिसने अभी ठीक-ठीक बोलना नहीं सीखा है। उसे
तीत होता था मानो वह घास और सरपत की हरियाली से आगे बढ़ता
आ लहरों से शून्य धारा में अनन्त शान्ति से बहता चला जा रहा है।
ोपासां की आत्मा का यह महाप्रयाण था।

मोपासां की कहानियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के
ात-प्रतिघात के एक से एक उज्ज्वल चित्र विद्यमान हैं। इसी कारण
ोपासां की कहानियाँ सर्वप्रिय बन गई हैं।

बर्नार्ड शा
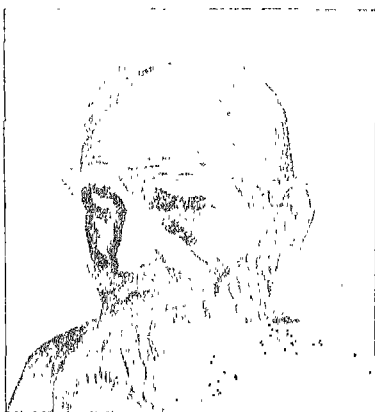
(१८५६–१९५० ई०)

बर्नार्ड शा की आर्थिक स्थिति पर दुःखित होकर एक महिला ने कहा था—एक जूता बनानेवाले को उचित पारिश्रमिक मिल जाता है, किन्तु एक लेखक को नहीं।

वास्तव में शा को अपने आरम्भिक जीवन में घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था। केवल तेरह वर्ष की अवस्था में शा को नौकरी करनी पड़ी थी। उसके परिवार की आर्थिक समस्या बड़ी जटिल थी। उसका पिता शराबी था। घर की व्यवस्था माता के ऊपर ही निर्भर करती थी। शा का पिता डबलिन के न्याय-विभाग में कार्य करता था और बाद में उसे साठ पौंड की वार्षिक 'पेंशन' मिलने लगी, किन्तु इस 'पेंशन' को बेचकर उसने अनाज का व्यवसाय आरम्भ किया। व्यवसाय में अनुभव न होने के कारण उसे घाटा हुआ।

शा की माँ न तो अपने पुत्र की ओर ध्यान देती थी और न अपने पति के प्रति उसका प्रेम था। संगीत की ओर शा की माँ विशेष आकर्षित थी। उसका कंठ बड़ा मधुर था। 'ली' नाम के एक संगीतज्ञ का विशेष प्रभाव उस पर था और उसी के कारण उसके संगीत का ज्ञान बढ़ता गया। दस वर्ष की आयु में शा स्कूल में भर्ती हुआ; किन्तु स्कूल की पढ़ाई उसे रुचिकर नहीं थी। वह गणित से घबरा उठता था। उसकी धारणा थी कि स्कूल तो जेल से भी निकृष्ट है, क्योंकि जेल में शारीरिक यंत्रणा मिलती है, लेकिन स्कूल में मस्तिष्क पर आक्रमण होता है।

शा छः वर्ष की अवस्था में ही शेक्सपीयर के नाटकों को पढ़ता रहा। नाटक और संगीत के प्रति बाल्यकाल से ही उसकी रुचि थी। उसकी कल्पनाओं का निरन्तर विकास होता गया। वह उपन्यास और कहानियों को बड़े ध्यान से पढ़ता रहा। वह स्कूल में अपने सहपाठियों को 'इलियड' और 'ओडेसी' की कथा के अनुसार हास्यपूर्ण विवरण देता था। वह अपने एक कल्पित पात्र द्वारा अपने सहपाठियों का मनोरंजन करता। उसके पात्र की घटनाओं के वर्णन पर वे सभी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।

शा के परिवार के प्राणी अर्थाभाव के कारण दिन पर दिन कष्ट उठा रहे थे। इसलिए तेरह वर्ष की आयु में शा को एक कपड़े के व्यवसायी के यहाँ क्लर्क का कार्य करना पड़ा। वह कुछ युवकों को संगीत की शिक्षा देकर भी कुछ उपार्जित कर लेता था; किन्तु परिवार का खर्च फिर भी ठीक से नहीं चलता था। अन्त में घर का सब सामान बेचकर उसकी माँ लन्दन चली गई। शा अपने पिता के साथ डबलिन में ही रहता था।

उसके पास परिवार का एक पुराना 'पियानो' शेष बचा था। शा इसी पियानो को बजाकर अभ्यास करता। चार वर्ष तक वह खजांची का कार्य करता रहा। छब्बीस वर्ष की आयु में ७ पौंड मासिक उसका वेतन हुआ। शा के भावुक हृदय में एक महान् व्यक्ति बनने की अभिलाषा हुई। डबलिन नगर के जीवन से वह असन्तुष्ट रहा करता था। लन्दन में उसे सफलता की आशा थी, इसलिए वह अपनी नौकरी छोड़कर लन्दन चला गया।

लन्दन आने पर शा को ज्ञात हुआ कि उसकी माँ संगीत की शिक्षा देकर और बहिन गाना गाकर अपनी जीविका उपार्जित कर रही हैं। शा के आ जाने पर स्थिति कुछ सरल नहीं हुई, क्योंकि शा ने अपनी माँ से गाना सीखना आरम्भ किया और अपनी बहिन द्वारा उसने शास्त्रीय संगीत का अध्ययन आरम्भ किया।

कुछ समय बाद शा ने एक टेलिफोन कम्पनी में कार्य किया; किन्तु उसे इस वृत्ति से घृणा थी और अन्त में वह उससे मुक्त हुआ। साहित्य की ओर बाल्यकाल से ही उसकी रुचि थी। अब वह साहित्य-साधना में ही अपना समय व्यतीत करने लगा। १८७६ ई० से १८८५ ई० तक शा ने नौ वर्ष में अपनी लेखनी से कुल १६ पौंड उपार्जित किये थे। इसमें ५ पौंड साहित्यिक रचना से, ५ पौंड दवाओं का विज्ञापन लिखकर और शेष ६ पौंड विज्ञापन के लिए हास्यरस की कविता लिखकर प्राप्त किये थे।

१८७९ से १८८३ ई० तक का काल शा का उपन्यास लिखने में ही व्यतीत हुआ। वह प्रतिदिन नियमित रूप से लिखता रहा और इस तरह उसने पांच उपन्यासों को पूर्ण किया। शा के इन उपन्यासों को तनिक भी सफलता नहीं मिली। उसने अपने इन उपन्यासों को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों के यहाँ भेजा, किन्तु किसी ने उन्हें छापना स्वीकार नहीं किया। इस पर शा निराश नहीं हुआ, उसने साठ पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं के अस्वीकृति के पत्रों को एकत्र कर रखा था। उसके इन उपन्यासों के पार्सल एक स्थान से वापस आने पर दूसरे स्थान को भेजे जाते रहे। शा के सम्मुख ६ पेनी के टिकट की समस्या खड़ी हो जाती थी कि कैसे वह प्राप्त हो और फिर कहीं पार्सल भेजा जाय।

शा ने अपने नाटक 'मैन एंड सुपरमैन' में एक स्थान पर कलाकार की व्याख्या की है—सच्चा कलाकार वही है जो अपनी पत्नी को भूखों तड़पने दे, अपने बच्चों को नंगे पैर भटकने दे और अपनी बूढ़ी माता को निराश्रय छोड़कर कला की साधना में लीन रहे।

शा ने अपने जीवन में परिस्थितियों से कितना द्वन्द्व किया है, यह उसकी सम्पूर्ण जीवनी पढ़ने पर ही ज्ञात हो सकता है। उसने लिखा है—'अन्य किसी पेशे में अच्छी पोशाक का होना आवश्यक है; किन्तु साहित्य की वृत्ति ग्रहण करने में एक लाभ यह भी है कि लेखक फटे-पुराने कपड़े भी यदि पहने तो कोई उससे कुछ कह नहीं सकता।' उपन्यास-लेखन-काल में नौ वर्ष तक शा की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह अपने कपड़ों की ओर ध्यान दे सके। वह अपने फटे जूते पहनकर बाहर निकलता था। उसके पैजामा में छेद हो गया था और काले कोट का रंग उड़ते-उड़ते हरा हो गया था। उसका 'हैट' भी बड़ा और लम्बा था। उस समय की स्मृति में शा को दो घटनाएँ स्मरण थीं। एक बार एक आदमी ने उससे नम्रतापूर्वक कहा—'मेरे पास एक पेनी भी नहीं है।' वह कुछ सहायता चाहता था, किन्तु शा ने उत्तर दिया—और मेरे पास भी नहीं है। दूसरी घटना यह थी कि एक युवती शा के पीछे लगी थी अन्त में शा ने अपना 'पर्स' खोलकर उसके सामने उलट दिया। उसे खाली देखकर वह चुपचाप चली गई।

शा की आर्थिक स्थिति और उसके व्यक्तिगत विचारों ने उसे समाजवादी सिद्धान्तों की ओर प्रवृत्त किया। उस समय उसने कार्लमार्क्स की पुस्तक 'केपिटल' पढ़ी। निश्चय ही इस पुस्तक का उस पर विशेष

प्रभाव पड़ा और उसके अपने विचार और दृढ़ हो गये। वह क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का लेखक बन गया।

शा भाषण देने में भी बड़ा कुशल था। वह सड़क पर खड़ा होकर अपनी वाणी से जनता को आकर्षित कर लेता और लोग बड़े ध्यान से उसकी बातें सुनते थे। वह किसी भी प्रश्न का तत्काल ही उत्तर दे देता था। वह अपने भाषण के लिए एक पैसा भी किसी संस्था से कभी नहीं लेता था। नगर से दूर जाने पर केवल तीसरे दर्जे का टिकट ही उसके लिए पर्याप्त था। भूखी और त्रस्त जनता शा के शब्दों से प्रभावित होकर विद्रोह करने के लिए उत्तेजित हो उठती थी। आपत्तिकाल में शा ने सदैव जनता का पथ-प्रदर्शन किया था। शा ने 'फेब्रियन सोसाइटी' का संगठन किया था और उसने मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार पूँजीवाद के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया था।

१८८५ ई० में शा के पिता का देहान्त हो गया। उस समय शा पत्रों के लिए कला-सम्बन्धी आलोचनाएँ लिखकर कुछ प्राप्त कर लेता था; किन्तु उसकी आय एक सौ रुपया मासिक से अधिक नहीं थी। एक वर्ष बाद मिस पेनी-टाउनशेंड नाम की एक आयरिश महिला से शा ने अपना विवाह किया। इसके पश्चात् शा की ख्याति और आय बढ़ती ही गई। उसके लिखे नाटकों की माँग बढ़ने लगी। उसकी पत्नी भी धनी थी। अतएव अब शा के सम्मुख अर्थाभाव का प्रश्न नहीं था।

शा मांस नहीं खाता था। वह मदिरा और सिगरेट से भी दूर था। उसे किसी भी प्रकार का व्यसन नहीं था। उसका जीवन अत्यन्त सात्त्विक था। वह प्रकृति का उद्दंड और अक्खड़ था। बात-बात में वह ऐसी चुटकियाँ लेता कि लोग मौन होकर उसकी ओर देखते ही रह जाते। वह सत्य का पुजारी था।

१९०३ ई० में शा का श्रेष्ठ नाटक 'मैन एंड सुपरमैन' प्रकाशित हुआ। शा की एक विशेषता यह भी थी कि वह अपने नाटक के अभिनेता और अभिनेत्रियों का पूर्ण रूप से निर्देशन करता था। वह अपनी विशेषताओं के अनुसार रंगमंच की रूप-रेखा प्रस्तुत करता था। शा इबसन के सिद्धान्तों का अनुयायी था।

प्रथम महायुद्ध के बाद शा की ख्याति निरन्तर बढ़ने लगी। समाचार-पत्रों में बराबर उसकी चर्चा रहती थी। शा ने स्वयं लिखा है—लोगों का कथन है कि सदैव मैं अपना विज्ञापन करता हूँ; लेकिन बहुत से मूर्ख

मेरे सम्बन्ध में मूर्खतापूर्ण बातें लिखते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सर्वत्र मेरी चर्चा हुआ करती है; लेकिन मेरी पुस्तकों को कोई पढ़ता नहीं है।

१९२५ ई० में शा को नोबेल पुरस्कार मिला, किन्तु शा ने यह लिखकर अस्वीकार कर दिया कि—'उस तैरनेवाले के लिए उस समय 'रक्षा बेल्ट' फेंका गया है, जो किनारे पर सावधानी से पार लग गया है।' लेकिन अनेक आग्रह पर शा ने उस धन को स्वीडन के साहित्य-विकास के उपयोग में लगाने के लिए अर्पित कर दिया।

१९३१ ई० में शा अपनी मंडली के साथ सोवियत-रूस देखने गया। वहाँ की स्थिति का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा। वह स्टालिन से भी मिला था। दोनों की आपस में बातें हुईं। शा स्टालिन का प्रशंसक था और उसके प्रति उसकी पूर्ण सहानुभूति थी।

१९४३ ई० में शा की पत्नी का देहान्त हुआ, तब से वह बराबर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगा। वह वृद्धावस्था में भी एक बालक की तरह सरल और प्रसन्न रहता था। ९४ वर्ष की अवस्था में वह पत्रों के लिए लेख और एक पुस्तक समाप्त करने में व्यस्त था। वह स्वयं सभी पत्रों का उत्तर देता था।

शा ने विश्व-भ्रमण किया था। वह भारतवर्ष भी आया था। संसार के सभी महान् व्यक्तियों से उसका पत्र-व्यवहार था। जीवन-द्वन्द्व में वह एक विजयी सैनिक की भाँति था।

शा ने नाट्य-साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया है। पुस्तक से अधिक उसकी भूमिका का महत्त्व समझा जाता है। शा ने बड़ी शान्तिपूर्वक अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की। वह अपने युग का एक महान् तपस्वी था।

चेखाव

(१८६०–१९०४ ई०)

यदि कोई मुझसे प्रश्न करे कि एक ऐसे कहानी-लेखक का नाम बतलाओ जो संसार में सब से अधिक प्रसिद्ध और श्रेष्ठ है तो निस्सन्देह मैं चेखाव का नाम ही उपस्थित करूँगा।

चेखाव कहानी-लेखकों का सम्राट् था। उसने कहानी-क्षेत्र की जो सीमा निर्धारित की थी उससे आगे जाने का किसी लेखक को सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। चेखाव रूस ही नहीं, विश्व के कहानी-साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

चेखाव का जन्म दक्षिण रूस में हुआ था। उसका पिता एक बन्धक-दास था; किन्तु अपनी योग्यता और परिश्रम से युवावस्था में ही वह दासता के बन्धन से मुक्त हो गया था। उसने अपने पुत्र को उच्च शिक्षा के लिए अग्रसर किया। चेखाव ने मास्को-विश्वविद्यालय से डाक्टरी का अध्ययन समाप्त किया था। उसने कालेज के दिनों में ही कहानियाँ लिखना आरम्भ किया था। आरम्भ में वह साप्ताहिक पत्रों के लिए हास्यरस के रेखा-चित्र प्रस्तुत करता था। उसकी प्रतिभा विकसित होती गई और उसकी रचनाओं को बड़ा आदर मिला। हास्यरस की रचनाओं के बाद वह छोटी कहानियाँ लिखने लगा, जो गंभीर हुआ करती थीं। उसकी ख्याति बढ़ने लगी। १८८७ ई० में 'साइंस एकेडेमी' ने उसके एक कहानी-संग्रह पर पुश्किन-पुरस्कार प्रदान किया था।

१८८८ ई० में शिक्षा समाप्त करने के बाद चेखाव ने कुछ समय तक चिकित्सक का कार्य किया। उसके जीवन में एक ऐसा समय आया, जब यह प्रश्न उठा कि वह एक डाक्टर का जीवन व्यतीत करे अथवा साहित्यकार बने। अन्त में साहित्य की ही विजय हुई। अपनी आत्म-कहानी में इस सम्बन्ध में आलोचना करते हुए चेखाव ने लिखा है—अपने विषय के चुनाव पर पछताने के लिए मेरे पास अवकाश नहीं था। मेरी डाक्टरी शिक्षा का मेरे साहित्यिक जीवन पर निस्सन्देह बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। इससे मेरे अन्वेषण और पर्यालोचन का क्षेत्र बढ़ा और मेरे ज्ञान की सीमा बहुत विस्तृत हुई। एक लेखक के नाते मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय के ज्ञान से उत्पन्न लाभ को एक दूसरा डाक्टर ही समझ सकता है। इसके अतिरिक्त जीवन और मनुष्य के सम्बन्ध में मेरी दृष्टि को इस डाक्टरी शिक्षा ने प्रभावित किया और मैं इस सम्बन्ध में भूल करने से बचा।

सचमुच चेखाव के इस ज्ञान के कारण मानव-मनोवृत्तियों का भिन्न-भिन्न चित्रण करने में उसे अपूर्व सफलता मिली।

चेखाव की रचनाओं का क्रमिक रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लेखक युवावस्था में सम्पूर्ण उल्लास के साथ हास्यप्रिय था। उसकी अनेक छोटी कहानियाँ केवल तीन-चार पृष्ठों में समाप्त होती हैं। वे शब्द-चित्र के रूप में हैं, किन्तु उनमें व्यंग्य और उपहास अत्यन्त सजीव है। इसके पश्चात् उसी व्यंग्य में मानव-प्रकृति की हृदयहीनता और तुच्छता का दर्शन मिलता है।

चेखाव ने अपने जीवन-काल में एक भी उपन्यास नहीं लिखा। छोटी कहानियों के संसार में वह शासन करता था। वह कभी भी अपने प्रधान पात्र के जन्म से मरण तक का इतिहास प्रस्तुत नहीं करता था। वह अपने पात्र के जीवन के एक चित्र, केवल एक घटना, को लेकर इतनी कुशलता से अंकन करता था कि पाठक उस पात्र को कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

मानव-जीवन में आकांक्षा का अभाव और आत्मा की दुर्बलता ही चेखाव की कहानियों का मूल रहस्य है। इसका एकमात्र कारण यह भी है कि उस युग में रूस की परिस्थितियाँ भी वैसी ही थीं। चेखाव को निराशावादी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अवस्था ढलने पर उसका यह विश्वास अधिक बद्धमूल होता जा रहा था कि इस जीवन को सुन्दर और सुखी बनाया जा सकता है। उसने मनुष्य की रचनात्मक प्रतिभा और

आध्यात्मिक शक्ति में इन शब्दों में विश्वास प्रकट किया है—यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि मनुष्य के लिए केवल छः फुट भूमि ही आवश्यक है; किन्तु यह एक मृत व्यक्ति की आवश्यकता है। एक जीवित व्यक्ति के लिए तीन गज भूमि नहीं, समस्त पृथ्वी, प्रकृति का सम्पूर्ण विस्तार, चाहिए, जिसमें वह अपनी प्रकृति के सभी गुणों और विशेषताओं को उद्घाटित कर सके।

चेखाव विज्ञान की प्रगति में विश्वास करता था और यह उसकी धारणा थी कि उसका पिछड़ा देश कभी एक हरा-भरा बाग बन जायेगा। वह सदैव क्रान्तिकारी संघर्ष से अलग था, इसलिए उसे यह कल्पना न हो सकी कि उसकी जन्म-भूमि इतनी शीघ्रता से परिवर्तित हो जायगी।

चेखाव ने १९वीं शताब्दी की आठवीं और नवीं दशाब्दी के रूसी जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला है। जयशील ग्राम्यता, बुद्धिजीवियों का निराशा-वाद, कुलीन वर्ग का विघटन, निर्धन किसान वर्ग, 'बुर्ज्वाजी' का उत्थान, कुलक वर्ग द्वारा छोटे किसानों का शोषण—यही लेखक की कहानियों का विषय होता था। उसका वास्तविक क्षेत्र बुद्धिजीवियों का संसार था। शिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित रूसी समाज के चित्रण में वह अत्यन्त कुशल था।

टालसटाय ने लिखा था कि कलाकार चेखाव की तुलना पहले के लेखकों से—तुर्गनेव, डोस्टाएव्स्की या मुझसे ही—नहीं की जा सकती। चेखाव की अपनी एक शैली है जैसे प्रभाववादियों की अपनी शैली है। यह ठीक वैसे ही है जैसे हम किसी व्यक्ति को अपनी तूलिका से भिन्न-भिन्न रंग भरते देखें, प्रत्येक बार की तूलिका की रेखा भले ही अगली बार से असम्बद्ध हो, किन्तु बाद में आप परिणाम पर देखें तो आश्चर्य हो और आपके सामने एक पूर्ण चित्र उपस्थित दिखाई पड़े।

१८९० ई० में चेखाव ने साखालीन द्वीप की यात्रा की थी। यह द्वीप दण्डित व्यक्तियों के निर्वासन के लिए एक स्थान था। लेखक वहाँ एक पुस्तक के लिए सामग्री एकत्र करने गया था। उसने इस द्वीप से सम्बद्ध बहुत से ग्रन्थों का अध्ययन किया और कई मास तक वहाँ रहा। उसने वहाँ के निवासियों की जनगणना की और दस हजार कैदियों और प्रवासियों के नामों की सूची प्रस्तुत की। चेखाव की पुस्तक 'साखालीन द्वीप' का रूसी जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। आज साखालीन द्वीप की विशेष उन्नति हुई है और सुखी जीवन के सभी आवश्यक साधन वहाँ प्रस्तुत हैं। यह चेखाव की प्रेरणा का ही परिणाम है।

१८९० ई० में ही चेखाव ने योरोप की यात्रा की थी। उसने वियेना, वेनिस, फ्लोरेन्स, मिलां, जेनोआ, नीस, रोम और पेरिस आदि नगरों को

देखा। १९०० ई० में लेखक 'साइंस एकेडेमी' का सम्मानित सदस्य चुना गया। दो वर्ष बाद उसने जार द्वारा गोर्की की सदस्यता छीन ली जाने के कारण अपनी सदस्यता भी त्याग दी।

नाट्य-क्षेत्र में चेखाव का स्थान एक पृथक् महत्त्व रखता है। उसकी कहानियों की भाँति उसके नाटक भी मनोवैज्ञानिक और गीतात्मक हैं। आज भी रूस की सभी रंगशालाओं में उसके नाटकों के अभिनय होते हैं और विदेशों में भी ये खेले जाते हैं। इस प्रसिद्ध यथार्थवादी कलाकार ने गद्य और नाटक के विकास को एक नई दिशा दी और रूसी साहित्य को प्रभावित करने के साथ ही उसने पश्चिमी देशों, विशेषकर अमेरिकी लेखकों, पर बड़ा प्रभाव डाला।

चेखाव ने अपने नाटकों को गीतात्मक हास्य कहा है। लेखक ने अपने जीवनकाल में तीन नाटकों की रचना की थी। उसका प्रथम नाटक 'इवानोव' का अन्त निराशा में ही होता है और विवाह के दिन इवानोव आत्म-हत्या कर लेता है। इसमें भी बुद्धिजीवी के पतन का चित्रण है।

'अंकल वान्या' का अन्त भी विषादमय है, किन्तु वान्या के हताश जीवन में भी आशा और विश्वास की उज्ज्वल रेखाएं दिखाई पड़ती हैं। वह भाग्य के कुचक्रों के मध्य में परिश्रम और कार्य करने में दृढ़ रहती है।

चेखाव का अन्तिम नाटक 'चेरी ट्री गार्डन' गीतात्मक है। इस नाटक के अन्त में लेखक ने भविष्य की सुन्दर कल्पना की है। एक धनी सामन्त का चेरी के वृक्षों का एक बगीचा था। वृक्षों के पूर्ण विकास में जब कोयल प्यारों और गान करती है, उस समय वह परियों का बगीचा प्रतीत होता है और ऐसे समय में पेड़ सब काट दिये जाते हैं। धन के लोभ में पैसे वाला अपने बाग को उजाड़ देता है; लेकिन लेखक भविष्य पर दृष्टिपात करता है। वह उस स्थान को फिर से विकसित होते देखता है। इस बगीचे के नवीन वातावरण में सबको शान्ति और प्रसन्नता मिलेगी। व्यक्तिगत स्वार्थ वाले ऐसे बाग का कभी निर्माण नहीं कर सकते; किन्तु वान्या और उसके मित्र द्वारा किसी दिन यह कार्य पूर्ण होगा।

चेखाव का जीवन कष्ट में बीता। उसे क्षयी का रोग था। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य क्षीण होता गया। अन्त में चिकित्सकों के आदेशानुसार वह स्विजरलैंड गया। सभी प्रयत्न विफल हुए। अन्त में वहीं, केवल ४४ वर्ष की अवस्था में, उसका देहान्त हुआ। उसका शव मास्को लाया गया और वहीं पर उसका अन्तिम संस्कार हुआ।

रोमां रोलां

(१८६६–१९४४ ई०)

रोमां रोलां एक महान् साहित्यकार था। पचास वर्ष की अवस्था तक निरन्तर परिश्रम करने के बाद उसकी ख्याति विश्वव्यापी हुई। वह कभी भी हताश नहीं हुआ, सदैव अपनी लगन में दृढ़ रहा। वह एक तपस्वी की भाँति एक एकान्त स्थान में साहित्य और संगीत की साधना में लीन रहा। सफलता नहीं, विश्वास ही उसका लक्ष्य था।

रोमां रोलां का जन्म फ्रांस के एक प्रतिष्ठित मध्यमवर्गीय कुल में हुआ था। उसका पिता कानून का विशेषज्ञ था। उसकी माता धार्मिक मनोवृत्ति की महिला थी, जिसका अधिकांश समय अपने पुत्र और पुत्री की देखरेख में ही व्यतीत होता था।

रोलां का पुराना मकान क्लामेसी नाम के एक छोटे से नगर में था। उसके मकान के सामने ही एक नहर बहती थी। शिशुकाल में ही रोलां का संगीत के प्रति आकर्षण था। उसकी माता ने उसे पियानो बजाना सिखलाया था। उसकी आत्मा जब कभी उदासीन हो उठती तब वह केवल संगीत से ही शान्ति प्राप्त करती थी। बचपन में ही मोजार्ट और बीथोवन जैसे संगीत के आचार्यों की स्वर-लिपियों से वह परिचित हो गया था। उनके प्रति उसकी अपार श्रद्धा थी।

उसके बाल्यकाल का आराध्यदेव शेक्सपीयर भी था। वह तन्मय हो-कर शेक्सपीयर के नाटकों को पढ़ता था। उसके जीवन का आरम्भ सुनहले स्वप्नों द्वारा हुआ। रोलां का पिता अपने पुत्र को उच्च शिक्षा देना चाहता था। अतएव वह सपरिवार पेरिस चला गया। आरम्भ में एक हाईस्कूल में शिक्षा ग्रहण करने लगा। फ्रांस का विख्यात कवि पाल क्लाउडेल भी उसका सहपाठी था। रोलां की आकांक्षा कवि

और संगीतज्ञ बनने और वीररस के नाटकों का निर्माण करने की थी। रोलां नार्मल स्कूल में इतिहास और भूगोल का अध्ययन करता रहा। यूनान के प्राचीन दार्शनिक स्पिनोजा के दर्शन का विशेष प्रभाव उसपर पड़ा था। उसकी विचार-धारा पुष्ट और विस्तृत हुई।

रोलां अपने बाल्यकाल से एक महान् आत्मा, एक विश्वव्यापी कलाकार, की खोज में था। टालसटाय के आदर्शमय सिद्धान्तों से वह आकर्षित हुआ। स्कूल के दिन बीत चुके थे। अब जीविका के लिए कुछ कार्य करना आवश्यक था। वह कौन-सी वृत्ति ग्रहण करे, यही प्रश्न था। जीवन के लिए एक व्यवस्थित क्रम होना चाहिए। स्वतन्त्रता के स्थान पर नियम के बन्धन और वृत्ति के लिए अपने उद्देश्यों को भूल जाना होगा। अतएव बाईस वर्ष का युवक रोलां कुछ निश्चित करने में असफल रहा।

उस समय रोमां रोलां, टालसटाय के कलासम्बन्धी विचारों के कारण, भ्रम में पड़ गया। रोलां के लिए कला और संगीत ही जीवन था। वह संगीत को अपने जीवन के लिए रोटी के समान आवश्यक समझता था। टालसटाय का विचार था कि संगीत द्वारा मनुष्य अपने कर्त्तव्य-पालन से विमुख होता है। रोलां ने टालसटाय के पास एक पत्र भेजा, जिसमें उसकी अन्तरात्मा की पुकार थी। कई सप्ताह बाद टालसटाय का उत्तर मिला, जिसमें उसने लिखा था कि 'जो कलाकार अपने विश्वास के लिए त्याग करता है, उसी का महत्त्व है। उसका प्रेम कला के लिए नहीं, समस्त मानवता के प्रति होना चाहिए। इस उद्देश्य को लेकर कोई भी कलाकार अपने कार्य में अग्रसर हो सकता है।' टालसटाय का यह पत्र ३८ पृष्ठों में समाप्त हुआ था।

प्रतिवर्ष नार्मल स्कूल के कुछ विशिष्ट विद्यार्थियों को विदेश में अध्ययन करने के लिए छात्र-वृत्ति मिलती थी। रोलां यह छात्र-वृत्ति लेकर दो वर्ष तक रोम में इतिहास का अध्ययन करता रहा। रोम में मालविडा नाम की एक बूढ़ी जर्मन महिला से उसका परिचय हुआ। रोलां के जीवन में उसकी माता और इस महिला का विशेष प्रभाव पड़ा था। यह जर्मन महिला शिक्षित और उच्च विचार की थी। उसने रोलां को रोमन समाज से परिचित कराया।

रोमां रोलां प्रायः मालविडा के यहाँ जाता। उसे पियानो बजाकर सुनाता। वह उसकी कला पर मुग्ध थी। जीवन के अनेक जटिल प्रश्नों पर वार्तालाप होता। रोलां के विचार अधिक पुष्ट और गम्भीर होते गये।

मालविडा को भी विश्वास था कि किसी दिन यह युवक रोलां विश्व का एक महान् कलाकार माना जायगा। रोमां ने अपने अध्ययन-काल में ही अनेक नाटकों की रूपरेखा प्रस्तुत कर ली थी। वह नवीन दृष्टि-कोण से नाटकों की रचना करने लगा।

रोम में अपना अध्ययन समाप्त कर रोलां पेरिस लौटा। वह पहले नार्मल स्कूल में और बाद में सोर्बोन विश्वविद्यालय में संगीत के इतिहास का अध्यापक नियुक्त हुआ। वह समाज के सम्मुख आया। उसका विवाह हुआ। उसकी पत्नी एक शिक्षित परिवार की थी। उसका पिता एक सम्मा-नित प्रोफेसर था, जिसके कारण रोलां का परिचय समाज में बढ़ने लगा। उसे सभी वर्ग के लोगों के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से देखने का अवसर मिला। मानव जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का उसे ज्ञान हुआ।

रोमां रोलां और उसके कुछ साहित्यिक मित्रों के प्रयत्न से 'कोशियर' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। साहित्य और समाज के भ्रष्टाचार के विरुद्ध इस पत्र ने विशेष कार्य किया। इस पत्र द्वारा फ्रेंच आदर्श और बन्धुत्व का मार्ग प्रदर्शित किया गया। १५ वर्षों तक नियमित रूप से यह पत्र प्रकाशित हुआ। पत्र की ग्राहक-संख्या बहुत अल्प थी। कुछ शिक्षित और कलाकार ही उसे पढ़ते थे। इसी पत्र में रोमां रोलां की सभी प्रमुख रचनाएँ प्रका-शित हुई थीं।

रोमां रोलां की आर्थिक समस्या उतनी सरल नहीं थी, फिर भी अपनी साहित्यिक कृतियों से उसे कोई भी लाभ नहीं हुआ और जनता में उसकी प्रसिद्धि भी नहीं हुई थी। उस समय पूँजीपतियों के आश्रय में ही नाटकों का प्रदर्शन, उनके मनोरंजन के लिए, होता था। रोलां ने सर्वसाधारण के लिए नाटकों की योजना प्रस्तुत की। उसने स्वयं कुछ ऐसे नाटकों का निर्माण किया जो जनता के लिए लिखे गये थे। राजनीतिक कारणों से उन नाटकों को सफलता नहीं मिली।

रोमां रोलां को अपने सभी प्रयोगों में असफलता और निराशा ही मिली, किन्तु वह हताश नहीं हुआ। अपनी आत्मा में उसका अटल विश्वास था। रोलां दुर्दिन की घड़ियों में महापुरुषों और वीर व्यक्तियों की कल्पना करता था। आपत्तिकाल में व्यथा पर विजय प्राप्त कर जीवन को कलामय बनानेवाली महान् आत्माओं का वह स्वप्न देखा करता था। वह स्वयं कभी पराजित नहीं हुआ।

रोलां ने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया। संसार से अलग होकर दस वर्षों

के घोर परिश्रम के पश्चात् उसने अपनी अमर रचना 'जीन क्रिस्टोफे' को विश्व के सम्मुख प्रकट किया।

रोलां ने अपने उपन्यास 'जीन क्रिस्टोफे' में बीथोवन, वागनर आदि महान् संगीतज्ञों के चरित्र और घटनाओं की छाया में ही 'क्रिस्टोफे' के चरित्र का अंकन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन महान् आत्माओं के चरित्र का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा था। ओलिवर के रूप में रोलां ने स्वयं अपना चरित्र उपस्थित किया था। संगीत ही इस उपन्यास की आत्मा है। ओलिवर आध्यात्मिक फ्रांस का प्रतिनिधि है और क्रिस्टोफे जर्मनी की उन्नत प्रतिभा का उदाहरण है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में दोनों कला और जीवन का उच्च आदर्श उपस्थित करते हैं।

विश्व-साहित्य में रोलां का उपन्यास 'जीन क्रिस्टोफे' अपने ढंग की बेजोड़ रचना है। मानव-जीवन के जटिल और गूढ़ प्रश्नों को कथा के सूत्र में बांधकर लेखक ने एक आदर्शमय जीवन की सृष्टि की है। उसने जीवन-द्वन्द्व में मानव को सत्य के पथ में अटल और अविचलित होने का आदेश दिया है। मानव को समझना और उसके प्रति प्रेम रखना यही रोलां का मूल संदेश है।

१९१० ई० में एक दुर्घटना के बाद ही रोलां संसार में विख्यात हुआ। एक दिन अपने घर से निकलकर वह सड़क पर जा रहा था। अचानक एक मोटर के पहियों के नीचे वह आ गया; किन्तु सौभाग्य से उसकी प्राण-रक्षा हुई। उसे गहरी चोट लगी। हड्डियाँ टूट गई थीं। कुछ समय बाद अस्पताल से वह मुक्त हुआ। उसे नया जीवन मिला।

१९१२ ई० तक रोमां रोलां की कीर्ति अज्ञात थी। केवल दो वर्षों में उसकी प्रसिद्धि उच्च शिखर पर पहुँच गई। वह समस्त विश्व की मानवता को एक सूत्र में बँधा देखना चाहता था। उसका बन्धुत्व का संदेश योरोप भर में छा गया। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से युद्ध का विरोध किया।

१९१४ ई० से रोलां का जीवन एक उपदेशक के रूप में परिणत हुआ। अब वह एकान्तवास छोड़कर संसार के सम्मुख आया। उसका द्वार सभी के लिए खुल गया। उसकी वाणी अधिक शक्तिशाली हुई।

१९१९ ई० में रोलां ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से 'विचारों की स्वतन्त्रता' के लिए आन्दोलन खड़ा किया और उसने संसार के प्रमुख लेखकों का समर्थन और सहयोग प्राप्त किया। इस सम्बन्ध में उसने अनेकों लेख लिखे। उसने विरोधियों का खुलकर सामना किया। बारबूसे जैसे विख्यात

फ्रेंच लेखक का मत था कि क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की रक्षा के लिए 'विचार-स्वातन्त्र्य भी बलिदान किया जा सकता है', किन्तु रोलां किसी भी स्थिति में विचार-स्वातन्त्र्य की हत्या नहीं देखना चाहता था।

रोलां मानव-स्वतन्त्रता और सामाजिक क्रान्ति का समर्थन करता था; किन्तु वह रक्तपात का विरोधी था। उसने जर्मनी में रोसा लक्सामबर्ग की हत्या का जोरों से विरोध किया था। चारों ओर से दुःख और निराशा का उस पर आक्रमण हुआ और दो वर्षों तक वह मृत्यु के साथ विचरण करता रहा।

योरोप के लेखकों के दो दल हो गये थे। एक रोमां रोलां के पक्ष का समर्थन करता था और दूसरा क्रान्ति के नाम पर लेखकों की स्वतन्त्रता भी उत्सर्ग करता था। रोलां अहिंसा का समर्थक था। उसने रूस के बोल-शेविकों का भी विरोध किया था, जिनके शासन में लेखकों की स्वतन्त्रता पर भी कड़ा नियंत्रण लगा हुआ था और उस परिस्थिति में गोर्की को भी अपना देश छोड़ना पड़ा था। गोर्की रोलां के विचारों से सहमत था। रोलां से उसकी घनिष्ठ मित्रता थी और उसने अपनी एक पुस्तक भी रोलां को समर्पित की थी।

१९२२ ई० में फ्रांस छोड़कर रोलां स्विजरलैंड में निवास करने लगा। भारतीय दर्शन का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा था। भारत की महान् आत्माओं से उसने अपना सम्बन्ध स्थापित किया। उसने महात्मा गांधी और परमहंस रामकृष्ण का जीवनचरित्र भी लिखा। एक ओर गांधी जी के सिद्धांतों का उस पर प्रभाव पड़ा था दूसरी ओर सोवियत रूस के प्रति उसकी सहानुभूति भी थी। वह चाहता था कि दोनों सिद्धान्तों के अनुयायी मिलकर संसार का कल्याण करें। इस सम्बन्ध में उसने बहुत प्रयत्न किया; किन्तु वह असफल रहा।

उन दिनों हिटलर और मुसोलिनी का फासिस्टवाद उनके देशों में अपना आतंक जमाये था। रोलां उनके प्रयोगों को घातक समझता था। इसके कारण भविष्य में फिर एक भीषण महायुद्ध की सम्भावना उसे दिखाई पड़ती थी। उसने उसका तीव्र विरोध किया। एक बार, १९२६ ई० में, महाकवि रवीन्द्र रोलां से मिलने गये। वह इटली की यात्रा समाप्त कर वहाँ गये थे। मुसोलिनी की बातों का उनके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा था और वह सहानुभूति प्रकट करने लगे। अन्त में रोलां ने सम्पूर्ण स्थिति उनके सम्मुख रखी। रोलां ने फासिस्टवाद का घोर विरोध किया और उसने एक विश्वव्यापी आन्दोलन का रूप खड़ा किया।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने पर रोलां का जीवन निर्वासन में ही व्यतीत हुआ। उसने अपने जीवनकाल में एक बृहत् डायरी प्रस्तुत की थी। अब उसके अनेक खण्डों का प्रकाशन हुआ है। उसे पढ़ने पर रोलां के जीवन और दर्शन का पूर्ण ज्ञान होता है।

द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के पहले ही रोमां रोलां इस संसार से विदा लेकर चला गया।

(१८६८–१९३६ ई०)
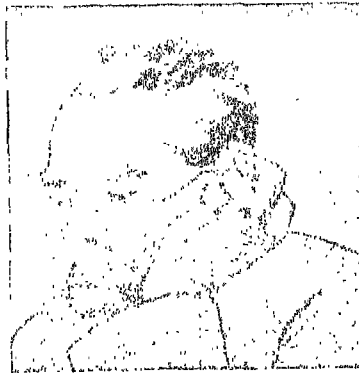
लेखक की वृत्ति ग्रहण कर इस संसार में मैक्सिम गोर्की को जितना सम्मान, कीर्ति और प्रसिद्धि मिली, उतनी शायद ही किसी अन्य लेखक को अपने जीवन में मिली होगी। वह रूस के नवीन युग के लेखकों का भाग्यविधाता था और उसी के आदेश पर आज सोवियत लेखक अपना कार्यक्रम बना रहे हैं।

गोर्की केवल रूस ही नहीं, समस्त विश्व के मानव को परतन्त्रता से मुक्त देखना चाहता था। उसकी दृष्टि सर्वव्यापी थी। वह हमारे भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का भी पक्षपाती था। उसने अपने एक लेख में भारत में अंग्रेजों के दुराचार का विरोध किया था। उसने पेरिस में रहनेवाले भारतीय कृष्णवर्मा का समर्थन और उनकी प्रशंसा की थी। सावरकर के निर्वासन पर उसने नौकरशाही की निन्दा की थी। उस लेख को पढ़ने से विदित होता है कि हमारे यहाँ की स्थिति से गोर्की पूर्ण परिचित था और भारत को वह पूर्ण स्वतन्त्र देखना चाहता था।

गोर्की का पिता एक साधारण व्यवसायी था। उसकी माता एक ग्रामीण महिला थी। नौ वर्ष की अवस्था में गोर्की अनाथ हो गया। उसका बाल्य-काल कष्ट और अभाव में ही व्यतीत हुआ।

एक दिन अपने सम्बन्धियों का घर छोड़कर वह भाग गया। दश वर्ष की अवस्था में उसे अपनी जीविका के लिए वोल्गा पर चलनेवाले एक जहाज पर नौकरी करनी पड़ी। इसके बाद उसने जीवन अवलम्ब के लिए अनेक वृत्तियाँ ग्रहण कीं। उसने नानबाई के यहाँ कार्य किया, कुली का जीवन व्यतीत किया, सड़कों पर फेरी देकर फल बेचता रहा। फिर एक वकील का मुहर्रिर बना।

१८९२ ई० में पैदल चलनेवाले यात्रियों के साथ उसने दक्षिण रूस की यात्रा की थी। गोर्की ने अपने इस भ्रमण-काल में अनेक कहानियाँ लिखी थीं। प्रकाशित होने पर उसकी कहानियाँ पाठकों को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुईं। १९०० ई० में जब इन कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ, उस समय गोर्की को अत्यधिक सम्मान मिला। रूस के प्रथम कोटि के लेखकों में उसका स्थान माना गया। उसकी ख्याति निरन्तर बढ़ती गई और अमेरिका और योरोप की अन्य भाषाओं में भी उसकी कृतियों का अनुवाद प्रकाशित हुआ।

गोर्की की उन कहानियों की प्रसिद्धि और विकास के क्रम का अध्ययन करने के लिए मालवा, चेलकश, दी एक्स मैन और 'ट्वेन्टीसिक्स मेन एण्ड ए गर्ल' शीर्षक कहानियों को पढ़ना आवश्यक है।

गोर्की ने जिन नारी और पुरुषों का वर्णन किया है वे साधारण निराश्रित और निद्रित अवस्था में जीवन व्यतीत करने वाले जीव थे।

गोर्की के उपन्यासों में जीवन के भिन्न-भिन्न चित्र अंकित हैं। उनमें मानव के उलझे और द्वन्द्वमय जीवन की भावनाओं का विश्लेषण है। गोर्की ने अपने नवीन और मौलिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान का अपूर्व प्रदर्शन किया है। उसकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में सर्वत्र प्रकृति का सुन्दर अंकन है।

मालवा नाम की स्त्री जिस मछुवे को प्यार करती है और प्रत्येक रविवार को उसके यहाँ आती है, वह उस मछुवे से अधिक उस स्थान को प्यार करती है। प्रकृति की उपासना और उसका सौन्दर्यमय आकर्षण मानव-जीवन में पूर्ण व्याप्त है। यही इस कहानी का मूल लक्ष्य है।

गोर्की एक महान् कलाकार था। वह कवि भी था। अन्य लेखक यथार्थ-

वाद के नाम पर केवल 'डायरी' की भाँति वास्तविक जीवन का लेखा प्रस्तुत करते थे। जो कुछ जैसा है उसका वर्णन वैसा करना उनका एक-मात्र उद्देश्य था। वे एक इतिहासकार की भाँति घटनाओं को उपस्थित कर देते थे। उस पर अपना मत देना उन्हें उचित नहीं प्रतीत होता था। किन्तु गोर्की के पात्रों के साथ लेखक की सहानुभूति प्रकट होती है, ठीक उसी भाँति जैसे तुर्गनेव के पात्र वाजारोफ, हेलेन और रुडिन के साथ उसकी सहानुभूति थी।

इस अर्थ में गोर्की यथार्थवाद के साथ आदर्शवाद का मेल करता है; लेकिन वह उन पात्रों के द्वारा आदर्श उपस्थित करता है, जो निराश्रित और राजविद्रोही हैं। उसके पात्र समाज से निकाले हुए हैं, वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते रहते हैं। जब तक उनका मन होता है तब तक काम करते हैं। वे नगर के किसी गन्दे भाग में अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

गोर्की के पात्र अपनी दरिद्रता और अभाग्य के प्रति शिकायत नहीं करते। उन पात्रों की धारणा है कि सब ठीक है, जीवन के प्रति असन्तोष और शिकायत की आवश्यकता नहीं, उससे कोई लाभ नहीं होगा। जीवित रहो और सहन करो। जब शक्ति क्षीण हो जायगी तब मृत्यु एक दिन आलिंगन करेगी। उसकी प्रतीक्षा करो। यही सबसे बड़ी बुद्धिमता इस संसार में है।

गोर्की के पात्रों में प्रतिभा और उत्साह की प्रेरणा है। उसके पात्र दरिद्र हैं; लेकिन वे चिन्ता नहीं करते हैं। वे शराब पीते हैं; किन्तु हताश नहीं होते। उसके पात्र का विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्थितियों का स्वयं निर्माण करता है।

गोर्की ने बुद्धिजीवियों की श्रेणी से अपने पात्रों का चुनाव नहीं किया है, क्योंकि वह जानता था कि वे बड़ी सरलता से जीवन के बन्दी बन जाते हैं। गोर्की की वारेन्का ओलेसोवा शीर्षक कहानी में वारेन्का एक पुरुष के प्रति हँसती है जो उससे प्रेम करता है। उसके द्वारा लेखक रूसी उपन्यासों में वर्णित 'हिरो' की परिभाषा उपस्थित करता है। वह कहती है—रूसी 'हिरो' सदैव मूर्ख और दुष्ट होता है। वह किसी न किसी वस्तु में लीन रहता है। वह प्रायः ऐसी बातों के सम्बन्ध में विचार करता रहता है, जो कभी भी नहीं समझी जा सकतीं। वह स्वयं अभागा है। वह बराबर सोचता रहता है, फिर बोलने लगता है। और अपना प्रेम

प्रकट करता है। इसके पश्चात् वह फिर सोचने लगता है, फिर उसका विवाह होता है—और तब! वह अपनी पत्नी से सभी प्रकार की मूर्खता की बातें करेगा। अन्त में वह अपनी पत्नी का परित्याग करेगा।

सचमुच गोर्की ने बहुत ही उपयुक्त विचार यहाँ प्रकट किया है।

गोर्की का अभीष्ट पात्र राजद्रोही श्रेणी का होता है। वह समाज के प्रति पूर्ण रूप से विद्रोह करता है। किन्तु वह शक्तिमान् भी है। लेखक ने स्वयं ऐसे निराश्रित पात्रों के साथ रहकर अपना कुछ समय व्यतीत किया था और यही कारण है कि समाज के इसी स्तर से वह अपने आकर्षक 'हिरो' का निर्माण करता था।

गोर्की के कुछ पात्र दार्शनिक भी हैं। वे मानव-जीवन पर विचार करते हैं और उन्हें उसका तत्त्व ज्ञात होता है। लेखक का विश्वास है कि जीवन-द्वन्द्व में जो पराजित हो जाता है और जो अत्याचारों के भयानक आक्रमणों से उसी घेरे में फँसा है, वह सोपनहर से अधिक दार्शनिक है। क्योंकि कल्पनाएँ कभी ठीक और वास्तविक रूप नहीं धारण कर सकती हैं, किन्तु यंत्रणा से ग्रस्त मानव अपने विचारों को स्वाभाविक रूप में प्रकट करता है।

गोर्की के पात्र प्रकृति के प्रति विशेष उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। उसके पात्र, प्रकृति के विभिन्न क्रीड़ा-स्थलों को मुग्ध होकर देखते हैं और उनमें कवि की भावुकता प्रकट होती है।

गोर्की के पात्र-पात्रियों में चरित्र-बल दिखाई पड़ता है; किन्तु लेखक आदर्श वीर की भाँति उनको नहीं उपस्थित करता है। वह यह संकेत देता है कि उन अभागों के जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं, जब अपने आत्मबल के कारण वे महान् दिखाई पड़ते हैं।

१८९८ ई० में प्रकाशित अपनी एक कहानी 'दी रीडर' में गोर्की अपने आरम्भिक साहित्यिक सिद्धान्तों को व्यक्त करता है। वह जीवन में किसी उच्च आदर्श को महत्त्व देता है। 'प्रतिदिन के जीवन में कुछ ऐसी वस्तु की आवश्यकता है, जो आत्मा को उन्नत करे।' यही विचार लेखक ने अपने एक नाटक 'दी लोअर डेप्पथ' में भी प्रकट किया है।

गोर्की की रचनाओं के क्रम-विकास पर ध्यान देने पर विदित होता है कि आरम्भ में आदर्शवाद की छाया में वह यथार्थवाद के पथ पर चलता रहा। समय के परिवर्तन के साथ लेखक की गति भी बदलती गई। १९०५ ई० की रूसी क्रान्ति में भाग लेने के कारण उसकी रचनाओं में भी नवीन दृष्टिकोण और सिद्धान्त का जन्म हुआ।

फ्रांस के लेखकों का यथार्थवाद केवल वास्तविक स्वरूप उपस्थित करने का पक्षपाती था। लेखक अपनी सहानुभूति और विचारों से अलग रहता था। उसका कोई आदर्श और उद्देश्य नहीं रहता था; किन्तु गोर्की ने निरीह ओर पतित जीवन व्यतीत करनेवाले लोगों को भी उच्च और सुन्दर जीवन बनाने के लिए मार्ग दिखाया। अपनी आत्मा की प्रेरणा से वे कैसे अग्रसर हो सकते हैं? यही उसका उद्देश्य होता था। वे परिस्थितियों से त्रस्त होकर उसी में उलझकर अपना जीवन समाप्त कर दें यह लेखक का लक्ष्य नही रहता था। वह अपने पात्र-पात्रियों को सदैव क्रोध, घृणा, लज्जा की भावना लेकर जीवन-द्वन्द्व में अग्रसर करता रहा। उसका विश्वास था कि ठंडी साँस लेने, विलाप करने और यह कहने पर कि मानव एक मिट्टी का पुतला है और मिट्टी में मिल जायगा, किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। गोर्की ऐसे मानव को महत्त्व देता है, जो लज्जा-जनक वातावरण की निस्तब्धता में अपनी भविष्यवाणी द्वारा जीवित मृतक को भी चैतन्य कर देगा। उसकी वाणी तुच्छ आत्मा को भी कम्पित कर देगी।

गोर्की की एक कहानी में बूढ़ी ईजरगिल डेनको का जो वर्णन करती है, वह मानवता से प्रेम करनेवाला अद्भुत वीर है। डेनको अन्धकार और निराशा में भी जनता का पथ-प्रदर्शन करता है। वह अपने सीने से चीरकर अपना हृदय निकाल देता है, जो प्रकाश और स्वतन्त्रता का मार्ग-प्रदर्शन करता है।

यह 'डेनको' का स्वरूप गोर्की की अनेक कृतियों में भिन्न-भिन्न आकृति में चित्रित होता है। गोर्की ने एक महान् आत्मा, एक श्रेष्ठ मानव की कल्पना की जो जनता को परतन्त्रता से मुक्त करता है; किन्तु नित्जे के महामानव की भाँति वह मनुष्यों पर शासन नहीं करता।

शासन और अत्याचारों के प्रति विद्रोह के आन्दोलन में भाग लेने के कारण गोर्की को जार की सरकार ने रूस छोड़ने के लिए बाध्य किया। गोर्की विदेश में भ्रमण करता रहा। अन्त में 'कैपरी' टापू पर उसने अपना व्यवस्थित जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। गोर्की अपनी साहित्य-साधना में लीन रहा। वह पत्र का सम्पादन करता, अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करता और रूसी क्रान्ति के लिए संगठन और प्रचार करता। 'कैपरी' का टापू क्रान्तिकारियों का एक तीर्थस्थान बन गया था।

१९०५ ई० में लेनिन से गोर्की की भेंट हुई थी; किन्तु दो वर्ष बाद

घनिष्ठता बहुत बढ़ गई। गोर्की एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ था जिसमें भगवान् और अन्धविश्वासों की मान्यता थी। संस्कार का प्रभाव गोर्की पर भी था, किन्तु निरन्तर अपने विचारों के द्वन्द्व ने लेखक को सभी बन्धनों से मुक्त कर दिया था। लेनिन का प्रभाव उस पर विशेष रूप से पड़ा। १९०५ ई० की रूसी राज्यक्रान्ति की असफलता के कारण नवीन कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी दलों में आपस में मतभेद हो गया था। बगडानोव के दल ने कुछ आदर्शमय सिद्धान्त और धर्म का पथ ग्रहण किया था। गोर्की इसी पथ का समर्थन करता था।

लेनिन की आलोचनाओं का ही परिणाम था कि अन्त में गोर्की उसके सिद्धान्तों का अनुयायी बना। १९०६ ई० में गोर्की का 'मदर' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक ने भविष्य में क्रान्तिकारियों की गीता का स्थान ग्रहण किया। लेनिन ने स्वयं इसकी प्रशंसा की और इसी कोटि की रचना करने के लिए गोर्की को उत्साहित किया। लेनिन गोर्की की कृतियों का बड़ा सम्मान करता था। उसकी धारणा थी कि जन-सामान्य की कला का गोर्की सबसे बड़ा लेखक है। गोर्की का विश्वास था कि लेनिन संसार का सबसे बड़ा आदमी है। उसने लेनिन के रूप में ही सर्व-शक्तिमान् मानव को अपनी रचनाओं में अंकित किया है।

गोर्की ने अपने बाल्यकाल से ही मनुष्य के दुर्गुण, पतन और भ्रष्ट आचरण का अध्ययन किया था। उसने अपनी दादी से वीर, देवता, जंगल, पहाड़ और चोर-डाकुओं की कहानी बड़ी उत्सुकता से सुनी थी। बचपन में ही एक अनाथ बालक के प्रति उसकी सहानुभूति हुई थी। उसने अपनी दादी से पूछा कि क्यों अनाथ अवस्था में लोग अपनी सन्तान को छोड़ देते हैं? उसे उत्तर मिला—'दरिद्रता के कारण उन्हें ऐसा करना पड़ता है।' बचपन से ही अभाव और दरिद्रता का प्रश्न गोर्की के मस्तिष्क में जम गया था।

गोर्की का प्रेम मानवता तक ही सीमित नहीं था। पशु-पक्षी और जीव-जन्तुओं सभी के प्रति उसका असीम प्रेम था। अपने पिता के शव-संस्कार के समय उसने देखा था कि शव गाड़ने के लिए जो स्थान खोदा गया था, उस गड्ढे में दो मेढक दलदल में पड़े थे। शव के साथ वे भी दफन हो गये। यह दृश्य जीवन भर गोर्की भुला नहीं सका। अपनी 'चाइल्डहुड' नामक पुस्तक में उसने लिखा है कि जब पिता के देहान्त के बाद सब लोग विलाप कर रहे थे, तब उसकी दादी ने उससे कहा कि तुम क्यों नहीं अश्रुपात कर रहे हो? इस पर उसने कहा—मेरे हृदय में वैसा अनुभव

नहीं हो रहा है। क्या मैं बनावटी विलाप करूँ? इसपर दादी ने कहा---नहीं, वैसा करना आवश्यक नहीं है।

१९१७ ई० की रूसी राज्यक्रान्ति के बाद गोर्की ने लेनिन के सिद्धान्त के अनुसार ही अपने उपन्यासों की रचना की। इस सम्बन्ध में लेनिन से उसकी प्रायः वार्ता हुआ करती और उसी के आदेशानुसार उसने 'डिकेडेन्स' नामक उपन्यास प्रस्तुत किया था। गोर्की ने एक नवीन युग का आरम्भ किया। उसने टाल्सटाय और डौस्टोएईव्स्की की रचनाओं का विरोध किया; क्योंकि क्रान्तिकारियों के लिए ऐसी रचनाएँ घातक थीं। उन्हें पढ़कर जीवन में उत्साह का संचार नहीं होता। यह उदासीनता का दर्शन क्रान्तिकारियों के उपयुक्त नहीं है। गोर्की ने विरोध में आन्दोलन खड़ा किया और उसको लेनिन का पूर्ण समर्थन प्राप्त था।

गोर्की की रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम लेनिन के प्रभाव से पहले की रचनाएँ और दूसरी उसके बाद लिखी गई। गोर्की में प्राचीन और नवीन दोनों का मेल था। समय के परिवर्तन के साथ उसके विचार भी परिवर्तित हुए। वह क्रान्ति का अग्रदूत बना। उसने जनता में जागृति का संदेश दिया। उसने नवीन-साहित्य का निर्माण किया। उसने नवीन लेखकों को उत्साहित किया और उनका पथ-प्रदर्शक बना।

नवीन रूस के निर्माण में गोर्की का उद्योग प्रशंसनीय है। उसकी कृतियों में श्रम को विशेष महत्त्व दिया गया है। उसे श्रम पर पूर्ण विश्वास था। उसने अपने जीवन में अपने श्रम से संसार में इतनी कीर्ति प्राप्त की थी। १९२० ई० में लेनिन के आग्रह से अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए वह विदेश गया। उस समय खाँसने पर वह मुख से खून फेंक रहा था। निरन्तर परिश्रम के कारण गोर्की का स्वास्थ्य क्षीण हो गया था।

विदेश से लौटने पर गोर्की नये रूस के निर्माण में पूर्ण सहयोग देता रहा। उसने रूसी साहित्य और विज्ञान के विकास में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। उसके प्रयत्न से ही लेखकों का जीवन-स्तर उच्च हुआ और वे अनेकों कठिनाइयों से मुक्त हुए।

गोर्की का जीवन-रहस्य समझने के लिए तीन रचनाओं को पढ़ना आवश्यक है---चाइल्डहुड (१९१० ई०), इन दी वर्ल्ड (१९१६ ई०), माई युनिवर्सिटीज (१९२३ ई०)।

गोर्की का अन्तिम बृहत् उपन्यास 'लाइफ आफ क्लिम सामगिन' है। इसमें लेखक ने पूँजीवादी रूस के उत्थान और पतन का लेखा प्रस्तुत किया

है और उस प्रणाली के विकास का क्रम दिया है, जिसके कारण रूस का प्रथम समाजवादी राज्य स्थापित हुआ है। लेखक ने इस उपन्यास को १९२७ ई० में आरम्भ किया था और १९३६ ई० में समाप्त किया। इसी वर्ष अपने उपन्यास के साथ ही गोर्की ने अपने जीवन का भी कार्यक्रम समाप्त किया। कहते हैं कि बीमारी में फासिस्ट एजेंट द्वारा उसे विष दिया गया।

आज अनीश्वरवादी सोवियत रूस में हमारे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भाँति लेनिन, स्टालिन और गोर्की की पूजा होती है।

प्रौस्ट

(१८७१–१९२८)

बीसवीं शताब्दी के संसार में जो महान् उपन्यास-लेखक अवतीर्ण हुए हैं, उनमें प्रौस्ट का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

मार्सेल प्रौस्ट का जन्म पेरिस में हुआ था। उसका पिता एक डाक्टर था और पेरिस में स्वास्थ्य कमिश्नर था। प्रौस्ट की माता एक यहूदी स्त्री थी। वह सुन्दरी, मनोहर और बुद्धिमती थी। बचपन से ही माता और पुत्र के बीच ऐसा अपूर्व वात्सल्य था कि वयस्क होने पर भी प्रौस्ट तब तक सो नहीं सकता था, जब तक उसकी माँ ने उसका चुम्बन नहीं लिया हो और उसे थपथपाया न हो। वह दुर्बल और निर्बल था। उसमें भावुकता इतनी अधिक थी कि वह कभी-कभी सामान्य परिस्थितियों में भी आँसू बहाने लगता। जब उसकी माँ उसको कहानियाँ सुनाती तो वह कहानी के नायक-नायिका की दुःख-कथा सुनकर भावाभिभूत होकर काँपने लगता था।

बचपन में वह अपने सम्बन्धियों के यहाँ देहातों में रहा और पेड़-पत्तों की हरियाली के बीच पला था। उसका विश्वास था कि वृक्षों का भी व्यक्तित्व है, उनमें भी जान है। बाद में उसने अपनी स्मृतियों में उन्हीं दिनों को अपने जीवन के सबसे सुन्दर क्षण बताया है।

प्रौस्ट अपनी आरम्भिक शिक्षा के दिनों में भी अपनी रुचि की पुस्तकें पढ़ना अधिक पसन्द करता था। स्कूल के दिनों में ही उसने बहुत सी

शास्त्रीय और प्रतीकवादी फ्रेंच कविताएँ कण्ठस्थ कर ली थीं। स्नातक होने के बाद वह सैनिक शिक्षण के लिए गया। वहाँ भी अस्वस्थ रहने के कारण वह अपना अधिकांश समय पढ़ने-लिखने और कुछ-कुछ अंग्रेजी सीखने में व्यतीत किया करता था। उन दिनों उसने कुछ शृंगार-रसात्मक वर्णन लिखे और साहित्यिक जीवन की ओर प्रवृत्ति दिखाई।

सैनिक शिक्षण के बाद उसके पिता ने उसे राजदूत के कार्य के लिए तैयार करना चाहा, इसलिए वह सोर्बोन विश्वविद्यालय में राजशास्त्र और कानून पढ़ने के लिए भेज दिया गया। उसे वहाँ का पाठ्यक्रम भाया नहीं। हेनरी बर्गसन का दर्शन, मनोविज्ञान और अध्यात्म अवश्य उसकी रुचि के विषय थे। बर्गसन बाद में उसका घनिष्ठ मित्र हो गया। बर्गसन ने जो अवचेतन मन एवं स्मृति सम्बन्धी सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, उनसे प्रौस्ट को बड़ी प्रेरणा मिली थी। बर्गसन का यह प्रभाव प्रौस्ट पर से तब तक नहीं हटा जब तक कि वह अनातोले फ्रांस के सम्पर्क में नहीं आया। अनातोले फ्रांस ने उसे बताया कि दृश्य जगत् के अतिरिक्त वस्तुओं का निरीक्षण अथवा परीक्षण मनुष्य को निराश बनाता है, या पागल।

प्रौस्ट कानून की डिग्री नहीं प्राप्त कर सका। वह विश्वविद्यालय में रहकर दर्शन और मनोविज्ञान का ही अध्ययन करता रहा। उसने लिखने का प्रयत्न किया और प्रतिभाशाली लेखकों से परिचय प्राप्त करता रहा। प्रौस्ट के स्वभाव की यह एक विचित्रता थी कि मार्ग में यदि कोई राजकुमार, ड्यूक या डचेस मिल जाती तो वह उसी प्रकार उसका अभिवादन करता जैसा कि उसने पुस्तकों में पढ़ा था। स्त्रियाँ उसको कुछ पागल और अशक्त समझती थीं और साथ ही मनोरंजक भी और वे उसके अभिवादन का प्रत्युत्तर भी दे देती थीं। प्रौस्ट के पागलपन को सोचते-सोचते उनका मस्तिष्क कभी-कभी थक उठता था और अन्त में उन्हें यह निर्णय करना कठिन हो जाता था कि इस व्यक्ति को पहले कहाँ देखा है। प्रौस्ट भी यही चाहता था।

युवावस्था में प्रौस्ट ने धनिक वर्ग की जीवन-शैली का अध्ययन किया था। उसने राजकुमारों की वेष-भूषा और उनके रहन-सहन का अध्ययन किया था। यहाँ तक कि वह स्वयं राजकुमारों-जैसी वेष-भूषा धारण कर सैर करने निकलता था। प्रौस्ट की माँ उसे सभी व्यर्थ के कामों में उत्साहित किया करती थी। उसके पिता ने उसकी शिक्षा-दीक्षा का विचार छोड़कर उसे पर्याप्त धन देना आरम्भ किया।

प्रौस्ट का सर्वप्रथम प्रेम एक कुलीन स्त्री के प्रति हुआ। वह उससे अवस्था में बड़ी थी। उससे उसका कोई परिचय नहीं था, केवल मार्ग में उसे देखकर वह उसके पीछे चल पड़ता और उसे घर पहुँचाकर लौट आता था। इसके बाद बहुत सी युवतियों को देखकर वह सब के प्रेम से अभिभूत हो गया और बड़ी कठिनाई से उसने उन लोगों में से एक को चुना। संक्षेप में, प्रौस्ट को किसी का प्यार नहीं मिला। वह जीवन भर अविवाहित ही रहा।

१९०३ ई० में प्रौस्ट के पिता का देहान्त हो गया और प्रौस्ट को बहुत बड़ी सम्पत्ति मिली। वह खुलकर मित्रों को भोज देने लगा। वह नौकरों को इनाम देने में इतना मुक्तहस्त था कि उन्हें कई बार इनाम देने पर भी उसे सन्देह रहता कि कहीं उन्हें कम तो नहीं मिला है। उस समय उसका जीवन अव्यवस्थित हो गया था।

१९०५ ई० में प्रौस्ट की माता की मृत्यु हुई। उसका जीवन अत्यन्त शोकमय हो गया। कुछ समय बाद वह समाज से दूर रहने लगा। वह एक एकान्त मकान में अपनी एक नौकरानी के साथ रहता था। वही नौकरानी ही उसे कपड़ा पहनाती, खिलाती और उसकी सेवा-शुश्रूषा करती थी। उसकी नौकरानी का पति टैक्सी चलाता था और रात दस बजे अपनी मोटर लाकर मकान के पास खड़ी कर देता था। प्रौस्ट उन दिनों ग्यारह बजे रात से पहले घर से बाहर नहीं निकलता था। उसका जीवन अत्यन्त रहस्यमय था। उसकी गतिविधि उसके बहुत से मित्रों के लिए भी गुप्त थी। यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि वह पक्का सट्टेबाज था और मूल्यों के चढ़ने-उतरने का ज्ञान उसे भली भाँति रहता था। इस प्रकार उसने प्रभूत सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। वह मित्रों को भोज देने में पर्याप्त धन व्यय करता था।

प्रौस्ट छः वर्ष तक पलंग पर पड़ा-पड़ा लिखता रहा। उसने अपना उपन्यास 'स्वान्स वे' समाप्त करने के पहले किसी से अपनी रचना के सम्बन्ध म कुछ नहीं कहा था। 'स्वान्स वे' में उसके पिछले दिनों की स्मृति का वर्णन है। प्रौस्ट ने अपने पुराने प्रकाशक के पास अपनी रचना भेजी; किन्तु उसने उसे अस्वीकृत कर दिया। प्रौस्ट के मित्रों ने बड़ा प्रयत्न किया कि वह प्रकाशित हो जाय। एक प्रकाशक ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था कि चाहे जो भी हो, समझ में नहीं आता, तीस पृष्ठों में केवल यह वर्णन करना कि एक व्यक्ति अपनी पलंग पर कैसे करवट बदलता है, क्या महत्त्व रख सकता है ?

'बीते दिनों की स्मृति' में प्रौस्ट ने लिखा है कि जब वह पेरिस के जीवन से परिचित हो गया, तब उसने यह विचार किया---जोला आदि लेखकों द्वारा वर्णित निम्नतम श्रेणी के लोगों तक के चरित्र फ्रेंच उपन्यासों में आ चुके हैं, केवल फ्रांसीसी कुलीनों का निर्बल समाज छूट गया है। उन लोगों के लिए जीवन के मूल्य और सत्य केवल यही थे कि वे अपने घरों से लोगों को बाहर करें। इस समाज के लोगों पर दया आती थी। बाह्य जगत् से अपने को पृथक् रखने के लिए इनको अनेक रीति-रिवाज, कानून और विधान बनाने पड़े। अन्त में इस वर्ग के साथी के रूप में केवल मूर्ख और हत्यारे लोग रह गये। इनके कोई इतिहासकार नहीं रहे। इनके बीच शिक्षा की कोई व्यवस्था न रही। ये सब के सब शिक्षा और प्रतिभा से हीन थे।

प्रौस्ट ने इस वर्ग का विशेष अध्ययन किया। उसने उन लोगों को सभी दृष्टियों से देखा---उनके रंग-ढंग, रीति-रिवाज, सोच-विचार, उनके मिथ्याभिमान, उनके दुर्गुण, उनका चिन्तापूर्ण जीवन और उसके कारणों पर विचार किया। उसने निश्चय किया कि वह उन लोगों का इतिहासकार बने, उनका विश्लेषण करे, उन्हें नैतिक शिक्षा दे, उनपर व्यंग्य करे। उसका विश्वास था कि ऐसे समाज को विनष्ट कर देना चाहिए। प्रौस्ट की रचनाओं में ऐसे समाज का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है।

प्रौस्ट के अनुसार किसी ऐसी वस्तु के वर्णन के लिए, जिसको किसी ने न देखा हो, चाहा हो, यह आवश्यक है कि वह उससे तटस्थ होकर स्मृतियों के बल पर उसके निर्बाध चित्रण का प्रयत्न करे। प्रौस्ट का मत है कि 'कलात्मक रचना में हम स्वतन्त्र नहीं होते, वह पहले से ही बनी रहती है और हमें केवल उसका पता लगाना पड़ता है, जैसे हम किसी गुप्त प्राकृतिक रहस्य का पता लगा रहे हों।'

प्रौस्ट दमा का रोगी था। वह सदैव अपने को ऊनी कपड़ों से ढँके रहता था। वह अपने कमरे को इस प्रकार बन्द किये रहता था कि उसमें वायु का संचार न हो सके। कभी उसका पलंग झाड़ा नहीं जाता था और शीत लगने के भय से वह स्नान भी नहीं करता था। उसका पिता अनुभवी डाक्टर था, किन्तु प्रौस्ट डाक्टरों से घृणा करता था। वह मादक द्रव्यों और काफी का सेवन करता था। वह प्रायः कुछ नहीं खाता और केवल काफी पीकर रात भर जागता रहता था। निमोनिया होने पर उसने डाक्टर को नहीं बुलाया। उसका भाई भी एक कुशल चिकित्सक था।

उसने उसको भी सूचना नहीं दी। डाक्टरों का कथन था कि उसने स्वयं अपने जीवन का अन्त किया था।

प्रौस्ट को जब 'गोंकुर' पुरस्कार प्राप्त हुआ, तभी से उसकी ख्याति बढ़ने लगी। उसने पुरस्कार के पैसों से एक बड़े होटल में मित्रों को भोज दिया और फिर घर लौटकर शेष रचनाओं को पूर्ण करने में व्यस्त हो गया। वह अपनी रुग्णावस्था में घोर परिश्रम करता रहा। अपनी रचना के अन्तिम भाग का संशोधन समाप्त करने पर ही ५० वर्ष की आयु में उसे निमोनिया हो गया। मृत्यु से पूर्व 'लि ज्यों दोनेर' पुरस्कार उसे प्राप्त हुआ था।

प्रौस्ट बड़ी दयालु प्रकृति का पुरुष था। वह स्वयं एक दुर्बल व्यक्ति था और उसने रुग्ण समाज के परीक्षण और आलेखन का काम किया। बाद में तो प्रौस्टवाद ही चल पड़ा; लेनिन की भाँति प्रौस्ट ने भी एक नैतिक न्याय की घोषणा की थी। इसी लिए सोवियत विद्वान् उसकी रचनाओं को पढ़ते हैं।

प्रौस्ट अपनी रचनाओं में पहले-पहल क्रांतिकारी सा जान पड़ता है। इसका कारण यही है कि वह स्वभाव से चंचल रहा और मूल्यों के विषय में उसके अपने व्यक्तिगत विचार थे। प्रौस्ट ने अधिकतर स्थिरता, विरोध आदि पर बल दिया, जिनको कथा-परम्पराओं ने सामान्य सत्य और द्रुत-प्रभाव के अधीन कर दिया है। किसी ने अवचेतन मन, विचारों के धुँधले सम्बन्ध आदि पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना प्रौस्ट ने, परन्तु वह कभी उनमें खो नहीं गया। यद्यपि वह घूम-फिरकर अपने लक्ष्य तक पहुँचता है तथापि उसके पात्रों के चरित्र एक निश्चित उद्देश्य लिये हुए दिखाई पड़ते हैं। इस दृष्टि से वह आजकल के मनोवैज्ञानिकों की भाषा में 'व्यवहारवादी' कहलायेगा, क्योंकि आजकल यह धारणा है कि मानव का उपयुक्त अध्ययन उसकी बाह्य गति-विधि से हो सकता है, उसके अज्ञात मन की गहराई में घुसकर नहीं।

उपन्यास-लेखन के विषय में जितने मत-मतान्तर उत्पन्न हुए हैं, उनमें किसको अच्छा या बुरा कहा जाय, यह निश्चित करना कठिन है; लेकिन यह सत्य है कि संसार के बड़े-बड़े उपन्यासकारों ने समान रूप से अपनी जनता को क्रियमाण दिखाया है। यही कारण है कि अच्छे उपन्यासों में देश-विशेष की जनता का जीवन्त उदाहरण मिलता है। प्रौस्ट इस कला का विशेषज्ञ था। वह भली भाँति जानता था कि जनता की कौन-सी गति-विधि और किन विचारों का उल्लेख करना आवश्यक है।

प्रौस्ट के पाठक विश्वास के साथ उसकी रचना पढ़ते हैं। उसके कुछ उपन्यास नीरस ढग से आरम्भ होते हैं, लेकिन ऐसा ज्ञात होता है कि आरम्भिक पृष्ठों में ही भाग्य का निपटारा हो जानेवाला है। सम्भव है कि वह समय बहुत अन्त में आये, पर आरम्भ में ही पाठकों को ऐसा संकेत मिल जाता है और उसकी प्रतीक्षा में उत्सुकता के साथ वे आगे बढ़ते चले जाते हैं। भाग्य के इस खेल को दिखाने के अनेक ढंग हो सकते हैं, पर उनमें सबसे अच्छा ढंग यही है कि ऐसी घटनाओं को चुनकर रखा जाय, जिनसे पाठकों की कल्पना-शक्ति जागरित हो जाय। पात्रों की क्रिया जैसे स्पष्ट हो जाय।

एक विद्वान् आलोचक ने लिखा है कि प्रौस्ट का व्यंग्य किसी नैतिक आदर्श पर अवलम्बित न होकर उसके मनोवैज्ञानिक परीक्षण का परिणाम सा प्रतीत होता है। उसका कहना है कि केवल एक स्थल पर प्रौस्ट ने अपने एक पात्र बरगोत की मृत्यु के अवसर पर ही नैतिक आदर्श की चर्चा की है। प्रौस्ट इन वाक्यों का उल्लेख करता है---हमारे जीवन की हर एक घटना ऐसी होती है कि मालूम होता है कि हम पिछले जीवन के कुछ कर्त्तव्य लेकर आये हों। हमारे पार्थिव जीवन में कोई ऐसी बात नहीं, जिससे हम समझें कि हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। इसी प्रकार कलाकार का भी यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह बीस बार एक ऐसा वाक्य लिख जाय, जिसके लिए लोग उसके मरने के बाद उसकी प्रशंसा करें। ये सब कर्त्तव्य किसी और लोक के मालूम पड़ते हैं। एक ऐसा लोक जहाँ हम इस पार्थिव जीवन से पहले रहे होंगे और जहाँ जाने के लिए हम इस जीवन में कुछ कर्तव्य निभाते हैं, ऐसे कर्तव्य जिनके संस्कार हम इस पार्थिव जीवन में आने से पहले ग्रहण कर लेते हैं। ये कर्तव्य हमारे बौद्धिक प्रयत्नों के साथ और स्पष्ट हो जाते हैं। ये कर्त्तव्य केवल मूर्खों के लिए अज्ञात रहते हैं।

प्रौस्ट के इस नैतिक आदर्श की स्पष्ट स्वीकृति को संयोगात्मक कहकर नहीं टाला जा सकता। उल्लिखित पंक्तियाँ प्रौस्ट की सबलता और निर्बलता की कुंजी समझी जा सकती हैं। पर इस अन्य लोक से प्राप्त कर्तव्य में प्रौस्ट स्टोइक फिलासफी के 'साहस' का उल्लेख नहीं करता है। वह इस गुण को मानव-क्रिया की आवश्यक प्रेरक शक्ति नहीं समझता। प्रौस्ट मनुष्य को दयावान्, गुणवान्, त्यागी और दूसरे ऐसे रूपों में तो देख सकता है, पर स्वभाव से या प्रयत्नपूर्वक मनुष्य का वीर होना उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता।

प्रौस्ट के नैतिक जगत् पर भय का शासन है। मृत्यु का भय, उत्तर-दायित्व का भय, बीमारी का भय, दुष्कालों का भय, यहाँ तक कि भय का भय, यही उसके जगत् का क्षितिज है। उसके कलाकार-स्वरूप की प्रवृत्ति की सीमा है। यह कहते हुए हम लेखक की प्रतिभा और उसकी शारीरिक शक्तिहीनता के बीच पहुँच जाते हैं; लेकिन यह सब होते हुए भी उसकी रचनाओं की महत्ता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। प्रौस्ट ने किसी विशेष प्रवृत्ति मात्र को नहीं लिया, उसने न तो कोई बौद्धिक रचना की ओर न किसी सिद्धान्त-विशेष पर ही ध्यान दिया; क्योंकि प्रौस्ट के मतानुसार इन्हीं बातों से कभी-कभी लेखक का ध्यान असन्तुलित रचनाओं की ओर आकृष्ट हो जाता है। प्रौस्ट ने अपने अनुभव के बल पर चेतन और अचेतन भावनाओं की गहराइयों तक पहुँचकर उनका वर्णन किया है।

कला में शैलियों का परिवर्तन तो होता ही रहता है, परन्तु जब तक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार सामान्य शैलियों से कुछ ऊपर उठकर एक नवीन शैली का अनुसरण नहीं करता, तब तक उसका अध्ययन महत्त्व नहीं रखता। इस दृष्टि से देखा जाय तो निस्सन्देह प्रौस्ट एक महान् कलाकार है। उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक वर्णन के लिए उसकी कृतियाँ अध्ययन की सामग्री हैं।

—समाप्त—